महाकवि केशव कृत

विज्ञान गीता सटीक

अनुवादक

श्री श्यामसुन्दर द्विवेदी, एम० ए०



हमारी—

महाकवि केशव रचित सटीक पुस्तकें जो बाजार में प्राप्त हैं :—

१. कवि प्रिया — श्री लक्ष्मीनिधि चतुर्वेदी, एम०ए०, 'सा०रत्न'
२. रसिक प्रिया — " " शास्त्री, कविरत्न, प्रभाकर,
३. विज्ञान गीता — श्री श्मामसुन्दर द्विवेदी, एम०ए०, रि० स्कालर

प्रकाशक

मातृ-भाषा-मन्दिर, दारागंज, प्रयाग।

प्रथम बार] २०११

प्रकाशक
हर्षवर्द्धन शुक्ल
व्यवस्थापक
मातृ - भाषा - मन्दिर,
दारागञ्ज, प्रयाग ।

मुद्रक :—
पन्नालाल सोनकर
राष्ट्रीय मुद्रणालय, ३ सम्मेलन मार्ग,
प्रयाग ।

दो शब्द

महाकवि केशव द्वारा रचित 'विज्ञान गीता' की प्रति एक मेव वंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित हुई है। इसके अतिरिक्त भी यदि अन्य किसी ने इसका प्रकाशन कराया हो, तो उसका मुझे ज्ञान नहीं है। यह मुद्रित प्रति भी अन्य प्राचीन प्रकाशित ग्रन्थों की भांति प्राचीन सम्पादन शैली में है। कहने का भाव यह है कि लिपिकार ने जिस ढंग से ग्रन्थ को लिख दिया था, उसी रूप को स्वीकार कर लिया गया है। उससे भी लिपि करने में अशुद्धियां हो सकती हैं, इसकी ओर ऐसा लगता है कि उपेक्षा की गयी है, किन्तु साथ ही प्रसन्नता की बात है कि सम्पादक ने प्राप्त हस्त-लिखित प्रति में स्वतः किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया है, ऐसा मेरा अनुमान है।

इस ग्रन्थ का मैंने वैज्ञानिक संपादन अवश्य नहीं किया है, किन्तु एक प्राप्त हस्तलिखित प्रति के आधार पर मैंने यत्रतत्र संशो-धन अवश्य कर दिया है। कहीं-कहीं पर कल्पना का सहारा भी लिया है, उस कल्पना का आधार मेरा केशव-सम्बन्धी अल्प अध्य-यन ही है। सम्पादन का मूल आधार वंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित विज्ञानगीता है। यह नितान्त सत्य है कि इस ग्रन्थ का यदि वैज्ञानिक सम्पादन हुआ, तो केशव का एक बहुत ही उत्कृष्ट स्व-रूप पाठकों को प्राप्त हो सकेगा।

मैं कोई कुशल टीकाकार नहीं हूँ और न मुझे उतना अधिक ज्ञान ही है। विस्तार भय के कारण अर्थ को अधिक विस्तार नहीं दे सका हूँ। अर्थ सम्बन्धी संकेत ही पाठकों को प्राप्त हो सकेंगे।

साथ ही यह स्वीकार करने में मुझे बिल्कुल संकोच नहीं है कि अनेक स्थलों पर मैं स्वतः भावों को ग्रहण नहीं कर सका हूँ, ऐसे स्थल अधिकांशतः भक्ति से सम्बन्ध रखते हैं। हो सकता है पाठकों के लिए भी वे बोधगम्य न हों। इसके लिए पाठकों से क्षमा चाहता हूँ। फिर भी मुझे आज एक प्रकार के सुख का अनुभव होता है और वह यह है कि केशव के प्रति फैली हुई उपेक्षा को शायद कुछ दूर कर सकने में समर्थ हो सका हूँ।

श्री हर्ष वर्धन जी शुक्ल, प्रकाशक मातृ-भाषा-मन्दिर के प्रति कुछ कहना अपने को अनेक अभारों से मुक्त करना ही होगा। उनके इस विचार ने मुझे अत्यधिक बल दिया कि रीतिकालीन उस साहित्य को प्रकाशित करने की वे चेष्टा करेंगे जो कि आज अप्राप्त है। सचमुच ही यह कार्य अत्यन्त ही प्रशंसनीय है। निकट भविष्य में ही केशव का 'वीरसिंह देव चरित्र' भी पाठकों को उपलब्ध कराने का आपने मुझे अश्वासन दिया है। प्रिय हरिमोहन ने समस्त प्रति मुद्रित प्रति से नकल करके दिया है, क्योंकि कोई भी प्रति स्वतंत्र रूप से प्राप्त नहीं हो सकी थी। उनके लिए कुछ भी शब्द कहना अपने से दूर ले जाना ही होगा।

श्याम सुन्दर द्विवेदी

भूमिका

केशव के प्रति उपेक्षा—आज वासना में लीन चतुर व्यक्ति अपने पक्ष का समर्थन—

"केशव केशनि असि करी, असि अरिहू न कराहि।
चन्द्र बदनि मुख लोचनी, कि बाबा कहि कहि जायँ॥

—करता है। यदि वृद्ध केशव के हृदय में एक टीस और वेदना हो सकती है, फिर हम युवकों की भर्त्सना क्यों? सच तो यह है कि "केशव केशनि असि करी" के केशव की भर्त्सना तो अधिक हुई, किन्तु उसके हृदय को आज तक किसी ने खोल कर देखने को चेष्टा तक नहीं की। हां इस ओर श्री चन्द्रबली पाण्डेय का कार्य अवश्य सराहनीय है।

केशव कालीन वातावरण—मोरी के कीड़े की भांति लगभग सम्पूर्ण समाज वासना के गर्त में पड़ा बिल-बिला रहा था। संयम एवं नियम की आधारशिला पर आधारित बौद्ध-धर्म का बौद्ध-भिक्षु भी इसी रङ्ग में रङ्गा हुआ था।

"हम दिव्य दृष्टि विलोकहीं सुख मुक्ति भुक्ति समान।
जग मध्य हैं यति सिद्धि शुद्ध सुनो सु शिष्य प्रमान॥
कबहूँ न रोकहु भिक्षुकै रमणीन सो रममान।
निज चित्त कोमल ईरषा तजि दूरि ताहि सुजान॥
कहि कौन को उपदेश है, सर्वज्ञ सिद्धिहि जानु।
सर्वज्ञ बुद्ध कहा कहै, बहु ग्रन्थ ग्रन्थनि मानु॥

(विज्ञान गीता)

कपालिकों की भक्ति का आधार भी संयोग बन चुका था।

"वेदमिश्रित माँस हो मत अग्नि में बहु भाँति सों।
शुद्ध ब्रह्म कपाल शोणित को पियो दिन राति सों॥
विप्र बालक जाल लै बलि देत हैं हिये लजों।
देव सिद्ध प्रसिद्ध कन्यनि सों रमों भव को भाजों॥

(विज्ञान गीता)

इतना ही नहीं तो सन्यासियों की सिद्धि भी सामने आ चुकी थी।

"सीखै सबै मिलि धातु, कर्मनि द्रव्य बाढ़तु जाइ।
आकर्षणादि उचाट मारण वशीकारण उपाइ॥
देहौ अदृष्ट ति नैन अंगन बंधन नीर।
शिक्षा कहीं परकाय मध्य प्रवेश की धरि धीर॥

(विज्ञान गीता)

साधना की जब यह दुर्गति हो रही थी, तब ऐसे अवसर पर इहलोक का प्रेमी केशव यदि कुछ संयमी बन गया, तो आश्चर्य क्या? केशव ने भोग की सीमायें बांधने की चेष्टा की। यही कारण है कि केशव ने संभोग की उपेक्षा अपने लगभग समस्त साहित्य में की है। आसन लीला में केशव का कोई अनुराग नहीं है। केशव का स्पष्ट कथन है:—

"कौन वेद मध्य देव, श्याम-वन्दना कही।
वेद को प्रमाण पूज, हौं न मानिहौं सही॥
राधिका कुमारि काहि, नित्य श्याम वन्दही।
तत्र कुंड मृत्तिका सु, स्याम वन्दना सही॥"

(विज्ञान गीता)

अपने समय में केशव को स्पष्ट दिखाई दिया कि समाज ही नहीं तो साहित्यक भी संयोग और आसन लीला के पास में कसता ज जा रहा है। अन्य की कौन कहे? सूरदास को तो देखिए—

"गिरिधर नारि अबल अति कीन्हीं।
सबज भुजा धरि अंकम भरि भरि चापि कठिन कुच ऊपर लीन्हीं
काक अनागत कीडा पर रुचि दूर करत तनु सारी।
कमल करनि कुच गहत लहत पदु देखो वह छवि न्यारी॥
बार बार ललचात साध करि सकुचति पुनि पुनि बात।
सूर श्याम यह काम करौ जनि धनि धनि यह मदन गोपाल॥

केशव की महानता—किन्तु क्या कभी केशव ने ऐसा किया ? रसिक प्रिया में राधाकृष्ण के प्रसंग में भी ऐसा उस महान कवि ने नहीं किया और जो कुछ भी नायिका भेद में उसने कहा, उसके लिए उसने अविकल क्षमा मांग ली ।

"राधा राधारमण के, कहे यथा विधि हाव ।
ढिठई केशवदास की, क्षमियों कवि कवि राय ॥"

(विज्ञान गीता)

आधार:—विज्ञानगीता की रचना राम चरित मानस के ढङ्ग पर हुई है, किन्तु उसका ढांचा संस्कृत का प्रसिद्ध रूपक प्रबोध चन्द्रोदय है। ग्रन्थ का आरम्भ मानस के ढङ्ग से हुआ है। मानस में भरद्वाजका समाधान करने के लिए याज्ञवल्क्य प्रसङ्ग छेड़ देते हैं और विज्ञानगीता में केशव वीरसिंह का समाधान करने के लिए शिव और पार्वती का प्रसङ्ग लाते हैं। दोनों में संवाद भी लगभग एक ही ढङ्ग के हैं। यह सब होते हुये भी दोनों में एक महान अन्तर है। मानस के संवादों में प्रवाह है और विज्ञान गीता के संवाद स्फुट हैं। इस विषय में केशव ने दृश्य काव्य के ढङ्ग को अपनाया है।

लक्ष्य:—सम्पूर्ण ग्रंथ में केशव ने विचार पर अधिक ध्यान दिया है। वस्तु के प्रति केशव उदासीन रहे हैं, ऐसा ज्ञात होता है। विवेक और प्रबोध उनका लक्ष्य है। प्रबोध के उदय से मोह का अन्धकार नष्ट हो जाता है। इसका प्रतिपादन उन्होंने ग्रन्थ में अनेक ढङ्ग से किया है।

स्वरूप:—राम चन्द्रिका की भांति केशव ने प्रत्येक प्रभाव का उसके आरम्भ में ही सार दे दिया है। इससे पाठक को प्रतिपाद्य विषय की पूर्व सूचना प्राप्त हो जाती है। प्रभाव के अन्त में वर्णन नाम दियाँ गया है।

सामान्यत: प्रभावों के नाम की तालिका यह है :—

(१) श्री शिव पार्वती सवाद (२) कलह रति काम सम्वाद (३) अहंकार दंभ सम्वाद (४) सप्तदीप वर्णन (५) मिथ्या दृष्टि और महामोह

मंत्रणा (६) मिथ्या दृष्टि महामोह सम्वाद (७) चार्वक महामोह और कालिदम्भ मंत्र (८) पाषण्ड और धर्म वर्णन (६) विवेक, धर्म और उद्यम मंत्र (१०) वर्षा और शरद वर्णन (११) विश्वनाथ, विन्दु माधव और गंगा स्तुति (१२) विवेक जय वर्णन (१२) गाधि का माया देखना (१४) मन शान्ति वर्णन (१५) विवेक जीव सम्वाद (१६) शिखी ध्वज की संसार विजय (१७) अज्ञान और ज्ञान की चौदह भूमिकायें (१८) प्रहलाद चरित्र (१६) बलि चरित्र (२०) योग की सात भूमिकायें (२१) महामोह परिहार।

वर्णन—विज्ञानगीता का नेता महामोह है। सम्पूर्ण कथा उसी के आश्रित है। इसका विनाश ही इसका उद्योग है। फलागम प्रतिकूल है, किन्तु सामाजिकों का कल्याण इसी में है।

केशव की दृष्टि काव्य पर भी रही है। इसीलिये उन्होंने शरद और वर्षा ऋतु के वर्णन किये हैं। इन वर्णनों में केशव की कल्पना ने उनका खूब साथ दिया है। शरद के सजीव और सरस वर्णन पाकर बरबस ही यह स्वीकार करना पड़ता है कि केशव प्रकृति के पारखी थे।

देखिये:—

जहाँ तहाँ दुर्गापीठ पढ़त प्रवीण द्विज।
धाम धाम धूम धर मलिन आकाश सो॥
राज राज सिंहासन संयुत चँवर युत छत्र।
बाजत निशान गज गाजत हुलास सो॥
ठौर ठौर ज्वाला मुखी दीसै दीपमालिका सो!
शोभित शृंगार हार कुसुम सुवास सो॥
केशवदास आस पास लसत परमहंस।
देवी को सदन किधौं शरद प्रकाश सो॥

प्रासङ्गिकों के मेल ने ग्रन्थ में रोचकता बढ़ा दी है। इनके कारण से ग्रन्थ पाठकों के लिये बोधगम्य हो गया है। केशव के अनुसार दिल्ली

दम्भपुरी है और मथुरा पाखण्डपुरी । काशी एकमात्र विवेक का स्थान है।

केशव ने सात द्वीपों का भी वर्णन किया है और उन सातों द्वीपों का सविस्तार वर्णन होते हुये भी संकेत मात्र ही है । यह विषय लोगों के लिये एक स्वतन्त्र खोज का विषय हो सकता है ।

भक्त केशव—केशव का परिचय रीतिकालीन आचार्य के रूप में सभी को है, किन्तु वे भक्त भी थे या भक्ति के ज्ञान का दम्भ भी कर सकते थे, इसका ज्ञान कम ही लोगों को है। विज्ञानगीता के आधार पर निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि केशव की भक्ति अन्य किसी से कम नहीं थी । उन्हें विज्ञानगीता की रचना पर गर्व था । उन्होंने उसमें संसार के समस्त वैभवों को प्राप्त करा सकने की क्षमता की घोषणा भी की है ।

लहै सम्पदा आपदा को नसावै ।
सदा पुत्र पौत्रादि की वृद्धि पावै ॥
बढ़ै बुद्धि वैराग्यकारी अभीता ।
सुनावै सुनै नित्य विज्ञानगीता ॥

केशव की यह छोषणा उनकी प्रबल आत्म भक्ति का प्रतिपादन करती हैं ।

हरि भक्ति—विज्ञानगीता का मुख्य प्रतिपाद्य विषय हरिभक्ति है। केशव की इस हरि भक्ति का यदि ज्ञान ठीक नहीं रहेगा, तो शायद हम केशव के मूल्य को आने में भी समर्थक न हो सकेंगे । विज्ञानगीता के अधिकारी और फल श्रुति को देखकर हरिभक्ति के अध्ययन की एक जिज्ञासा अन्तःकरण में जाग्रत होती ही है । केशव ने हरिभक्ति के आधार पर ही तो यह घोषणा की है कि :—

निशि वासर वस्तु विचार करै मुख सांचु हिये करुणा धन है ।
अघ निग्रह संग्रह धर्मकथानि परिग्रह साधुन को गनु है ॥
कहि केशव भीतर योग जगै अति बाहिर भोगनु सो तनु है ।
मन हाथ सदा जिनके तिनके बन ही घर है घर बनु है ॥

केशव मोह के विनाश के लिये हरिभक्ति को ही उपयुक्त पाते हैं। हरिभक्ति के अतिरिक्त ऐसा कोई नहीं है जो कि मोह का विनाश कर सकें।

केशव ने अज्ञान की सातों भूमिकायें भी बतायी हैं।

जीव जु जाग्रत एक अरु दूजो जाग्रत जानु।
महाजु जाग्रत तीसरी, जाग्रत स्वप्न बखानु॥
स्वप्न पाँचई है समुझि, स्वप्न जाग्रत षष्ठ।
प्रभा सुषुप्ता सातई, सुनो सदा मतिनिश्ठ॥

इसके अनुसार जीव जाग्रत, जाग्रत, महाजाग्रत, जाग्रत स्वप्न, स्वप्न, स्वप्न जाग्रत और सुषुप्त हैं।

इसी प्रकार ज्ञान की सप्त भूमिकायें भी केशव ने बताई हैं।

प्रथम शुभेच्छा जानवी, पुनि सुविचार न आन।
तीजी है तन मानसा, केशव राव प्रमान॥
चौथी सत्वापति पुनि, आसंसक्ति को जान।
छठी अर्थ आभावना, सप्त तूर्य को मान।

इसके अनुसार शुभेच्छा, सविचार, तन मानसा, सत्वापति, असंसक्ति, अर्थआभावना और तूर्य हैं।

इसी भूमिका का हरिभक्ति से सीधा सम्बन्ध है। उपरोक्त सप्त भूमिकाओं को पाकर व्यक्ति विदेह की रीति से राज्य कर सकता है।

राम नाम का महत्त्व—केशव ने व्यक्ति के उद्धार के लिये अनेक रीतियों को बताया है। यदि वे सभी रीतियों को अपना सकना व्यक्ति के लिये कठिन है तो राम नाम ही केशव के अनुसार उसके उद्धार के लिये पर्याप्त है।

कहै नाम आधो सो आधो नसावै।
कहै नाम पूरो सो बैकुण्ठ पावै॥
सुधारै दुहू लोक को वर्ण दोऊ।
हिये छद्म छांड़ै कहै वर्ण कोऊ॥

केशव की इस नारी, चूडाला की कृपा से ही शिखोध्वज को निरंजन ओक की भी प्राप्ति हुई। शिखीध्वज ने मुक्तकण्ठ से चूडाला की प्रशंसा की है।

उधारि नई लोक तें सुधारि, दिव्य लोक तैं दियो।
अलभ्य लाभ मोहिये, अदृष्ट दृष्ट देखियो॥
अशेष भाव सों विशेष, देवि सेव तैं करी।
भई न हैं न होइगी, न तो समान सुन्दरी॥

भारत की भावना—केशव ने चूडाला नारी के द्वारा उन अनेक को दूर कर दिया है जो समय समय पर विचार किया करते हैं केशव ने वर्णाश्रम का झगडा खड़ा किया और उसके द्वारा उन्होंने प्रत्यक्ष दिखा दिया—कि भारत अभी भी भारत बना हुआ है। उसे द्विज के यज्ञोपवीत के साथ देखा भी जा सकता है।

शोभति सोभा जाके छिपैं, तुंगारण्य तिलक सो दिए।
ब्रह्मारत दुति लेखियै, भारत खण्ड द्विज सो देखियो॥

केशव ने बेतवा को ब्रह्मसूत बताकर अपनी जिस उत्कट राष्ट्रभक्ति का परिचय दे दिया है, उसे कोई देशभक्त ही समझ सकता है।

चित्तवृत्तियों का चित्रण—केशव ने चित्त वृत्तियों, मोह, लोभ, काम विवेकादि का चित्रण बड़ाही सजीव किया है। प्रत्येक चित्र अपने सारे भावों को प्रकट करने में पूरा समर्थ हैं। महामोह के परिवार का परिचय ही काफी होगा।

राखत लोभ भण्डार भरेई, जौ लग काज कहा न कोई।
मातु पिता सुत सोदर छोड़ै, कौन पै शत्रु न अँजल छोड़ै॥
शोक दरिद्र अहंकृत देखो, आलस रोग भले भर लेखौ।
है भ्रम भेद बसीठ सयाने, प्राकृत काम न भेद बखाने॥
काम महाइक सोदर मेरे, युवती जीति कर्यो जगचेरो।
या जग में जन रंगरांचे, गोविंद गोपिन के संग नाचे॥
है व्यभिचार बड़ो सुत जाको, इन्द्र भगोभगवन्त भो ताको।
पुत्र कलंक भलो तेहि जायो, सोम की शीसु सिंहासन पायो।
नाम कृतघ्न पिता भिय तेरो, ता कह जानि सदा गुरु मेरो॥

नारी और योग—सूर की ललित लीला का केशव साथी नहीं है। केशव का निरंजन ज्योति से अनुराग है। वे नारी के लिये इसे असंभव नहीं मानते हैं। 'युवतिन योग कहाँ धौ' पर केशव विश्वास नहीं करते। उनकी नारी में पुरुष को भी भोग द्वारा—ऊपर उठाने की क्षमता है। उसमें सीखने की लगन है देखिये—मुनि कन्यनि संग सीखियो,

> मुनि कन्यनि संग सीखियो, तिहि सब प्राणायाम।
> ताते पाई सिद्ध सब, पूरण काम अकाम॥
> नृपति शिखीध्वज की भई, रानी रूप समान।
> तिनि सो मिलि तिन भोगिए, भूतल भोग विधान॥

अलंकार एवं रस योजना—श्लेषक दिखाने के लिये केशव ने एक पूरा प्रभाव ही ले लिया है और प्रभाव के प्रारम्भ में ही उन्होंने अपनी इस मनोवृत्ति की सूचना दे दी है। किन्तु यह सत्य है कि केशव ने जहां कहीं भी सरस रचना करने का संकल्प किया है, वहां अलंकारों के चक्कर में नहीं पड़े हैं। जहां उन्होंने अलंकारों का विधान किया है। वहां रस शून्यता का आभास पाठक को मिल हीं जाता। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि केशव की दृष्टि रस पर नहीं थी। सच तो यह है कि उनकी शिक्षा ने रस से दूर ले जाकर कवि कर्म के क्षेत्र में लाकर पटक दिया। केशव में रस है और उसके सम्बन्ध में केशव का मत है।

> अकल अविद्या रहित हैं, श्रद्धायुत हरिभक्ति।
> साधो नवधा हरिभक्ति सो, तजि सबसो आसक्ति॥
> नवरस मिश्रित साधि नृप, नवधा भक्ति प्रमानु।
> दानव मानव देवगण, भक्त कमल हरि भानु॥
> जीतहु अद्भुत श्रवण सो, सुमिरण करुणा जानि।
> सहित जुगुप्सा दासता, पाद भजन भय मानि॥
> वन्दन वीर शृंगार सो, अचन सख्य सहास।
> रौद्र कीर्तन सम सहित, आतमनिवेद प्रकाश॥

विज्ञान गीता

प्रथम प्रभाव

छप्पय—ज्योति[1] अनादि[2] अनन्त[3] अमित[4] अद्भुत अरूप[5] गुनि।
परमानन्द पावन प्रसिद्ध पूरण प्रकाश पुनि[6] ॥
नित्य नवीन निरीह[7] निपट[8] निर्वाण[9] निरञ्जन[10] ।
सम[11] सर्व्वग[12] सर्व्वज्ञ चिन्त चिन्तत विद्वज्जन ॥
वरणी न जाय देखी सुनी नेति नेति[13] भाषत निगम[14] ।
ताको प्रणाम केशव करत अनुदिन[15] करि संयम नियम ॥

(१) प्रकाश (२) आदि रहित (३) असीम (४) अत्याधिक (५) आकृतिहीन (६) बार-बार, सदैव (७) विरक्त (८) नितान्त (९) शान्त (१०) ज्ञानवान (११) निष्पक्ष (१२) सर्वव्यापक (१३) अंत रहित (१४) वेद (१५) प्रतिदिन ।

इस छप्पय में केशव ने निर्गुण ब्रह्म के स्वरूप को अंकित किया है। ग्रन्थारम्भ में केशव ने उस ज्योति को प्रणाम किया है, जिसे वे प्रति दिन संयम तथा नियम से स्मरण किया करते हैं। वह ज्योति अनादि, अनन्त अमित, अद्भुत, अरूप, गुणों से पूर्ण है। वह सदैव प्रकाश से पूर्ण, पावन प्रसिद्ध और अत्यधिक आनन्द देने वाली है। वह नवीन, निरीह, नितान्त शान्त एवं ज्ञान से पूर्ण है। वह समान रूप से सर्वव्यापक है। विद्वान सदैव उसका चिन्तन किया करते हैं। अनादिकाल से वेद उसका वर्णन करते आ रहे हैं, किन्तु न उसका वर्णन किया जा सकता है और न देखा ही जा सकता है और न सुना।

सवैया—संग सोहति हैं कमला[1] विमला[2] अमलामति[3] हेतु तिहूँपुर[4] को।
भवभूष[5] दुरन्तरन्त हते दुख मोह मनोज[6] महाजुर[7] को॥
कहि केशव क्योंहू बने न निवारत[8] जारत जोरनिहू[9] उरको।
अति प्रेम सो नित्य प्रणाम करै परमेश्वर को हरको[10] गुरको[11]॥

(१) लक्ष्मी (२) सरस्वती (३) लक्ष्मी की इच्छा (४) तीनों लोक (५) शिवका भूषण राख आदि (६) कामदेव (७) कामज्वर (८) हटाते (९) शक्तिपूर्वक (१०) शिव (११) गुरु।

साथ में कमला तथा विमला शोभायमान हैं। अमला की मति ही तीनों लोकों में व्याप्त है। यह सत्य है कि राख आदि को धारण करने वाले शंकर ने अत्यधिक दुखदाई कामदेव के काम ज्वर को नष्ट कर दिया था, किन्तु केशव का कहना है कि वह किसी प्रकार हटाये नहीं हटता है। नित्यप्रति शक्तिपूर्वक हृदय को जलाता रहता है। इसके निवारणार्थ ही केशव नित्यप्रति प्रेमपूर्वक परमेश्वर को, शिव को और गुरु को प्रणाम किया करते हैं।

दोहा—केशव तुंगारण्य[1] में, नदी बेतवै तीर।
जहाँगीर पुर बहु बसै, पण्डित मण्डित भीर॥३॥

१ ओड़छा के समीप तुङ्गारण्य बेतवा के किनारे का एक तीर्थ है। यहाँ अब तक जंगल है और मेला लगता है।

नदी बेतवा के निकट ही तुंगारण्य तीर्थ है। उसी तीर्थ के निकट जहाँगीरपुर है, जहाँ पर अनेक पण्डित निवास करते हैं।

सवैया—ओड़छै तीर तरंगिणि[1] बेतवै, ताहि तरै नर केशव को है।
अर्जुनबाहु[2] प्रवाह प्रबोधित, रेवा[3] ज्यों राजनकी रज मोहै॥
ज्योति[4] जगै यमुना सो लगै जग, लाल विलोचन पाप विपोहै[5]।
सूरसुता[6] शुभसंगम तुंग, तरंग तरंगिणि गंग सी सोहै॥४॥

(१) नदी (२) करण के पुत्र (करण वीरसिंह के पुत्र) (३) नर्मदा नदी का क्षेत्र रीवाँ (४) आत्मा (५) संहार करना (६) यमुना (७) ऊँची।

इस सम्पूर्ण पद में बेतवा नदी के महात्म्य पर केशव ने प्रकाश डाला है। ओड़छा के निकट बेतवा नदी है उसे पार करने वाला कोई नहीं, क्योंकि सम्पूर्ण रीवाँ प्रदेश पर अर्जुन ने अपना आधिपत्य जमा रखा है। यद्यपि यह सत्य है कि रीवाँ प्रदेश सभी राजाओं के आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है। ज्योति के जगने पर बेतवा नदी यमुना के समान लगती है। जिस स्थान पर बेतवा और यमुना दोनों आपस में मिलती हैं, वहाँ पर उसकी ऊँची-ऊँची लहरें गंगा के समान दिखाई देती हैं।

नराच—तहाँ प्रकाश सो निवास मिश्र कृष्णदत्त को।
अशेष[1] पंडिता गुणी सुदास विप्रभक्ति को॥
सुकाशिनाथ तस्यपुत्र विज्ञकाशिनाथ[2] को।
सनाढ्य कुंभवार अंश वंश वेदव्यास को॥५॥

(१) अपार, (२) शिव को जानने वाला।

इस पद में केशव ने अपने वंश का परिचय दे दिया है। केशव के आदि पुरुष वेद व्यास थे। कुंभवार सनाढ्य वंश के केशव थे, इतना इस पद से स्पष्ट हो जाता है।

बेतवा नदी के किनारे ओड़छा नगर में कृष्णदत्त मिश्र निवास करते थे, जहाँ पर अनेक गुणी पंडित रहते थे। कृष्णदत्त मिश्र की वृत्ति पुराण थी। उनके पुत्र काशीनाथ हुए, जो कि शिव के अत्यधिक भक्त थे।

दोहा—तिनके केशवदास सुत, भाषा कवि मतिमन्द।
करि ज्ञानगीता प्रगट, श्री परमानन्द कन्द[1]॥६॥
देव देव भाषा करी, नाग नाग भाषाणि।
नर हो नरभाषा करी, गीता ज्ञान प्रमाणि॥७॥
मूढ़ लहै जो गूढ़मतु, अमित[2] अनंत[3] अगाधु।
भाषाकरि ताते कहौं, क्षमियो बुध अपराध॥८॥

(१) आगार (२) अत्यधिक, (३) असीम

काशीनाथ के पुत्र भाषा-कवि मंदमति केशवदास हुए, जिन्होंने उत्तम, आनन्द की आगार ज्ञानगीता की रचना की ॥६॥

देवलोगो ने संस्कृत भाषा को अपनाया। नागजनों (प्राकृतजनों) ने नाग (प्राकृत) भाषा को अपनाया। केशव का कहना है कि मैं मनुष्य था, अतएव नर-भाषा (हिन्दी) में ज्ञानगीता की रचना की। इस पद से ऐसा ज्ञात होता है कि केशव के मन में एक प्रकार की ग्लानि हिन्दी में रचना करते समय हो रही थी, उसी के परिहार के लिए उन्होंने उपरोक्त तथ्य को ढूंढ़ निकाला है।

दण्डक—काम क्रोध लोभ मोह दंभादिक केशोराइ।
पाखण्ड अखण्ड[१] झूठ जीतिबे की रुचि जाहि ॥
पाप के प्रताप ताके भोग रोग सोग।
जाके शोध्यो चाहै आधि व्याधि भावना अशेष दाहि॥
जीत्यौ चाहै इन्द्रिगण भाँति भाँति माय मनु लोपिकै।
अनेक भाव देख्यो चाहै एक ताहि ॥
जीत्यौ चाहै काल इहु देहु चाहै रह्यो गेहु।
सोई तौ सुनावै सुनै गुनै ज्ञान गीति काहि ॥६॥

(१) सम्पूर्ण,

इस पद में महाकवि केशव ने विज्ञान गीता के महात्म्य पर प्रकाश डाला है। संसार की अनेक भव बाधाओं से मुक्ति का साधन विज्ञान गीता को केशव ने बताया है।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, दंभ, पाखण्ड, झूठ को जीतने की जिसके मन में अभिलाषा है, पापों के परिणाम स्वरूप प्राप्त भोग, रोग, शोक, अनेक आधिव्याधियों को दमन करने की जिसकी भावनायें हैं, अनेक प्रकार की आसक्तियों में लिप्त इन्द्रियों को जीतकर एक रूप में देखने की जिसकी उत्कट इच्छा है, इस कलियुग को जीतकर इस संसार में रहने की जिसकी इच्छा है, उसे विज्ञानगीता को सुनना और सुनाना चाहिये।

दोहा—परमारथ स्वारथ दुश्रों, साधन की आशक्ति[१]।
पढ़ौ ज्ञानगीताहि तौ, जो चाहो हरिभक्ति ॥१०॥

(१) आसक्ति

यदि किसी की इस संसार में परमार्थ तथा स्वार्थ दोनों को प्राप्त करने को आसक्ति है और साथ ही हरिभक्ति को प्राप्त करने की भी उत्कट अभिलाषा है, तो उसे विज्ञानगीता का अध्ययन करना चाहिये।

सुनौ ज्ञानगीता विमति[१], छोड़ि देहु सब युक्ति।
रत्नाकर विज्ञान या मुक्तामणि[२] की सुक्ति[३] ॥११॥

(१) मूर्ख, (२) मोती, (३) सीपी।

संसार को सम्बोधित कर केशव कहते हैं कि हे मूर्खो! आनन्द को प्राप्त करने की अनेकानेक युक्तियों को छोड़ दो। विज्ञान गीता का ध्यान पूर्वक श्रवण करो। यह विज्ञान गीता रत्नों का घर और मोती की सीप है।

वेद देखि ज्यों सुमृतिभव, सुमृतिनि देखि पुरान।
देखि पुराणनि त्यों करी, गीतज्ञान प्रमान ॥१२॥

केशव ने इस दोहे में ग्रन्थों की एक परम्परा दिखाई है और उस परम्परा में विज्ञान गीता का स्थान कहाँ पर है, इसे बताया है।

वेदों को देखकर स्मृतियों की रचना हुयी थी। स्मृतियों के आधार पर पुराणों की रचना हुई। केशव ने पुराणों के आधार पर विज्ञान गीता को रचना की।

सोरह सै बीते बरष, विमल सतसठा पाइ।
भइ ज्ञानगीत प्रगट, सबही को सुखदाइ ॥१३॥

इस दोहे में विज्ञान गीता का रचना काल दिया हुआ है। विज्ञानगीता की रचना संबत् १६६७ में हुई, जिसकी रचना सभी को सुखदायक सिद्ध हुई। इस दोहे के 'सबही को सुखदाय' से ऐसा आभास मिलता है कि केशव

का जीवन संवत् १६६७ के पूर्व कुछ संकट में था। इसकी रचना के उपरान्त सुख प्राप्त हुआ है। संभव है कि इस अवसर पर ही इन्द्रजीत के स्थान पर वीरसिंह का आश्रय मिल गया हो और परिणाम स्वरूप पुरानी पदवी और वृत्ति भी मिल गई हो।

केशव ज्ञान समुद्र को; मुनिजन लही न थाह।
मैं तामें पैरन लग्यो, क्षमियो कविजन नाह॥१४॥

इस दोहे में केशव के विनम्र स्वभाव के दर्शन होते हैं। केशव को अपनी विद्वत्ता का अभिमान नहीं है। इसीलिये तो केशव कहते हैं कि ज्ञान के जिस अथाह समुद्र की थाह मुनियों को भी न मिल सकी, उसी में मैं तैरने लगा हूँ। अतएव कवियों से प्रार्थना है कि वे क्षमा करें।

विदित ओड़छे नगर, राजा मधुकर शाहि।
गहरवार काशी शर्राव, कुलभूषण यश जाहि॥१५॥

ओड़छा नगर के राजा मधुकर शाह को सभी जानते हैं। जगत विख्यात गहरवार वंश में उत्पन्न मधुकर शाह की ख्याति कुलभूषण के रूप में हुई।

विजय—देव कुदेवनि के चरणोदक[1] बोरयो सबै कलि[2] को कुलमानी।
दारिद दुःख बहाइ दये दिन दीरघ[3] दान कृपान[4] के पानी॥
लोकहि में परलोक रची धरि देह विदेहनि[5] की राजधानी।
राजा मधूकरशाहि से और न राजा न और गणेशदे रानी॥

(१) चरणामृत, (२) कलह, (३) बड़ा, (४) तलवार, (५) दैहिक चिंताओं से रहित।

कुलमानी मधुकर शाह ने देव, कुदेवों के चरणामृत में सभी प्रकार की कलह को डुबा दिया। फैले हुए दारिद्रय और दुख का विनाश अनेक बड़े-बड़े दानों और कृपाण की धार से कर दिया। इस संसार में अपनी राजधानी में परलोक की रचना की। यद्यपि यह सत्य है कि सभी लोग

शरीर धारण किए हुए हैं, किन्तु वे सभी दैहिक चिन्ताओं से मुक्त अवश्य हैं। केशव का कहना है कि राजा मधुकर शाह के समान न तो कोई राजा है न गणेश देवी के समान कोई दूसरी रानी है।

वापी[1] बघेल को राज सुखायगो तोंबर छुद्र पठानी[2] नठानी।
केशव तौर तरंगिनि पोखरि सूखि गई सिगरी बहुबानी॥
शाहि अकबर अंकउदे मिटि मेघ महीपति की रजधानी।
उजागर सागर ज्यों मधुशाही की तेग बढ्यो दिन ही दिन पानी।१६।

(१) अत्यधिक बोलने वाले (२) पठान का स्वभाव।

इस छंद में केशव ने अतिशयोक्ति पूर्ण मधुकरशाह की कृपाण का वर्णन किया है। जैसे-जैसे नित्यप्रति मधुकर शाह की कृपाण पर पानी बढ़ता जा रहा है अर्थात् उनके कृपाण चलाने के कौशल की ख्याति हो रही है, वैसे-वैसे ही अत्यधिक बोलने वाले बघेल का राज्य समाप्त हो रहा है, छुद्र तोंबरों का पठानी स्वभाव भी समाप्त हो रहा है। केशव का कहना है कि अनेक नदियाँ और तालाब, जो कि पानी से भरे रहते थे, वे सभी सूख गये। राजधानी पर अकबर बादशाह के कारण आपत्तियों के जो भी बादल मंडरा रहे थे वे भी नष्ट हो गये।

दोहा—दोऊ दीन पुकारहीं, जग में जय की कीर्ति।
कृष्णदत्त मिश्रहिदई, जिन पुराण की वृत्ति॥१८॥

कृष्णदत्त मिश्र और केशव, दोनों दीन संसार में सदैव जय की कीर्ति उनकी गाया करेंगे, जिन्होंने पुराण की वृत्ति दी है।

तिनके वीरसिंह देव सुत, प्रगट भयो रणरुद्र।
राजश्री जिन मथिलई[1], समर अनेक समुद्र[2]॥१९॥

(१) आलोड़न करना (२) बड़ा।

मधुकर शाह के पुत्र वीरसिंह हुए जो युद्धस्थल में रुद्र के समान थे। वीरसिंह ने अनेक बड़े-बड़े युद्धों में राजश्री को मथ लिया था अर्थात् उसका भली प्रकार आलोड़न कर लिया था।

विजय–जौन[१]ज्यों पुंज पँवार[२]पुवार[३]से तोंबर तूल[४]के तूल उड़ाए।
सिंह ज्यों बाघ ज्यों कच्छप बाहु हते गज ज्यो युवराज ढहाए
केशवदास प्रकाश अगस्त्य[५]ज्यों शे क अलोक समुद्र सुखाए।
वीर नरेश के खङ्गखुमान के विक्रम व्याल अनेक विलाए।२०।

(१) यवन (२) परमार (३) पयाल (४) समूह (५) अगस्ति ऋषि।

राजा वीरसिंह की कृपाण का वर्णन है। वीरसिंह की कृपाण के सम्मुख यवन, परमार, तोंबर आदि के समूह के समूह पयाल की भाँति उड़ गये। उनकी कृपाण सिंह, बाघ, कच्छप, हाथी को मारने में समर्थ है। जिस प्रकार से अगस्त्य ऋषि ने समुद्र को पी लिया था, उसी प्रकार वीरसिंह ने दुख के समुद्र को सुखा दिया है। अनेक बार वीर नरेशों और खङ्गखुमान का विक्रम नष्ट हो गया।

दोहा—वीरसिंह नृप की भुजा, केशव यद्यपि तूल[१]।
एक शाहि को शूल सी, एक शाह को फूल ॥२१॥

(१) लम्बी।

राजा वीरसिंह की भुजा यद्यपि बहुत लम्बी है अर्थात बहुत दूर तक शत्रुओं की खबर लेने वाली है। वह भुजा एक राजा के लिए शूल के समान है और दूसरे के लिए फूल के समान।

दण्डक—दानिन में बलि से विराजमान जिनिपाँहि।
भागिबे को है गतित विक्रम तनक से ॥
सेवत जगत प्रमुदितनि की मंडली में।
देखियत केशौदास सौनक[१] शनक[२] से ॥
जोधनि में भरथ भगीरथ सुरथ पृथु।
विक्रम में विक्रम नरेश के बनक से ॥
राजा मधुकर शाह सुत राजा वीरसिंह।
राजन की मण्डली में राजत जनक से ॥२२॥

(१) एक ऋषि का नाम (२) ब्रह्मा के चार मानस पुत्रों मे एक।

वीरसिंह देव किस प्रकार के राजा हैं, इसका वर्णन इस दण्डक छन्द में केशव ने किया है। राजावीरसिंह दानियों में राजा बलि के समान हैं। भागने के नाम पर राजा वीरसिंह के पास गतित विक्रम मात्र ही है। इस संसार में राजा वीरसिंह सौनक ऋषि की भाँति और ब्रह्मा के चार मानस पुत्रों में से एक, शनक की भाँति सम्पूर्ण जगत की सेवा-कार्य में रत दिखाई देते हैं। योद्धाओं में भरथ, भगीरथ, सुरथ, और पृथु के समान हैं। विक्रम में राजा वीरसिंह देव विक्रमादित्य की भाँति हैं। राजा मधुकर शाह का पुत्र वीरसिंह राजाओं की मण्डली में जनक की भाँति शोभायमान है।

दोहा—द्विजन दिए सुखदान, दानवेश निःकाम ।
अभयदान देतुन खलक, निपरत्रिया रसकाम ।।२३।।

ब्राह्मणों को सदैव सुखी रहने का दान दे दिया है और वीरसिंह ने सभी दान निष्काम होकर दिये हैं। समस्त जगत को अभयदान दिया है। यद्यपि यह सत्य है कि वीरसिंह स्त्री की काम क्रीड़ा में लगा रहता है।

कुलबल विक्रम दानवश, यश गुण गनत अलेष ।
चतुर पंचषटसहस[१] मुख, कहि न जाइ सविशेष ।।२४।।

वीरसिंह के वंश का बल, विक्रम, दान, यश, गुण को न तो गिना जा सकता है और न लिखा ही जा सकता है। यदि ब्रह्मा अपने चार मुखों से, शिवजी अपने पाँच मुखों से, कार्तिकेय छै मुखों से और शेष नाग अपने हजार मुखों से भी कहना चाहें तो कह न सकेंगे।

भूषण सूरजवंश को, दूषण[१] कलि को मानु ।
दास एक द्विज जाति को, सबही को प्रभु जान ।।२५।।

(१) संहारक ।

राजा वीरसिंह सूर्यवंश का भूषण और कलियुग का संहारक है।

यदि वीरसिंह किसी का दास है तो केवल ब्राह्मण जाति का है अन्यथा वह सभी का स्वामी ही है।

दण्डक–केशो राइ राजा वीरसिंह के नामहि ते।
अरि गजराजनि के मद मुरझात हैं।।
सजल जलद ऐसे दूरि ते विलोकियत।
परदल दिलबल दलकेशे पात हैं।।
झरीके से भूत भट जग घट प्रतिभट।
घट घट देखे बल विक्रम बिलात हैं।।
पीरी पीरी पेखत पताका पीरे होत मुख।
कारी कारी ढालें देखे कोरेई ह्वै जात हैं।।२६।।

केशवदास का कहना है कि वीरसिंह का नाम लेने मात्र से ही शत्रुओं के हाथियों का मद मुर्झा जाता है। सजल बादलों को देखकर जिस प्रकार से दलकेश के पत्ते मुर्झा जाते हैं अर्थात गिरने लगते हैं, उसी प्रकार वीरसिंह की सेना को देखकर प्रतिपक्षी दलके सैनिकों के दिल बैठने लगते हैं। वीरसिंह की सेना को प्रतिपक्षी जब झरीखे से ही देख लेता है तो उसका बल विक्रम नष्ट हो जाता है। उसके दल की पीरी पतकाओं को देखने मात्र से ही शत्रुओं के मुख पीले पड़ जाते हैं और काली-काली ढालों को देखने से कोरेई हो जाते हैं।

सोरठा—एक समैनृपनाथ, सभामध्य बैठे सुमति[1]।
बूझी उत्तम गाथ, कविनृप केशवदास से ।।२६।।

(१) बहुत चतुर।

एक बार वीरसिंह देव ने चतुर सभासदों के बीच में कवि केशव से उत्तम गाथा पूछी।

नृपवीरसिंह;

कुण्डलिया–गंगादिक तीरथ जिते, गो दानादिकदानै।
सुनीय यामति देवकी, महिमा वेद पुरान।।

महिमा वेद पुराण सबै बहुभांति बखानत।
यथाशक्ति सब करत सहित श्रद्धा गुण गानत॥
यथाशक्ति सब करत भक्ति हरि मन वच अंगा।
चित्त न तजत विकार न्हात नर यद्यपि गंगा॥२८॥

नृप वीरसिंह ने केशवदास से प्रश्न किया है। ऐसा नहीं कि प्रश्न सीधा सादा कर दिया हो, उसके पूर्व भूमिका भी बाँध दी है। गंगा आदि नदियाँ, अनेक तीर्थ, गोदान, देव, वेद और पुराणों की महिमा का गान सभी अनेक प्रकार से करते हैं। सभी उपासना और आराधना भी करते हैं और श्रद्धा के साथ गुणों का गान करते हैं। यथाशक्ति सभी लोग हरि-भक्ति को अंगीकार भी करते हैं। किन्तु यह सब होने के बाद भी व्यक्ति अपने मनके विकारों को नहीं छोड़ता है। यद्यपि वह गंगा में स्नान भी करता है। यह प्रश्न है जिसे वीरसिंह ने उपरोक्त भूमिका बाँधने के उपरान्त उठाया है।

केशव

दोहा—वीर नरेश[१] धनेश[२] तुम, मोंहि जु बुझी गाथ।
सोई श्रीशिव को शिवा, बूझी हे नृपनाथ॥२६॥

(१) कुबेर।

केशवदास ने उत्तर दिया कि हे वीरसिंह! आप नरेश और धनेश दोनों ही हैं। आज जिस बात को आपने मुझसे पूछा है, उसी बात को शंकर जी से पार्वती जी ने पूछा था।

श्री शिव उवाच

तारक छन्द— सुनि शैलसुता[१] सब धर्म्म ते साँचे।
बहुवेद पुराणनि के रस राँचे[२]॥
मदक्रोध मनोज महातम छण्डे।
जबहीं करियै तबहीं फलु मण्डे॥३०॥

(१) पार्वती, (२) रस अनुरक्तता।

शंकर भगवान ने पार्वती से कहा कि हे पार्वती ! अनेक वेद और पुराणों की अनुरक्तता ही सब धर्मों में सत्य है। इस कथन के पीछे एक ही उद्देश्य है कि व्यक्ति की वेद और पुराणों पर जब अनुरक्तता होगी तब वह स्वतः उसी के अनुरूप व्यवहार करेगा। किन्तु फल की प्राप्ति मद, क्रोध काम आदि की प्रभाव को नष्ट करने के उपरान्त ही होगी।

श्री पार्वती उवाच

सुनियै सुरनायक नायक भर्ता।
तुमहो कर्ता परिपालक हर्त्ता॥
कहियै किहि भाँति विकार नशावै।
जिव जीवतहीं परमानँद पावै॥३१॥

पार्वती ने पुनः शिवजी को सम्बोधित करते हुए कहा कि हे सुर-नायक ! तुम्हीं पुरुषों का भरण-पोषक करने वाले हो और तुम्हीं कर्ता और तुम्हीं भरण-पोषण को हरने वाले भी हो अर्थात आदि और अन्त दोनों ही तुम हो। इसीलिए तो पार्वती जी ने शंकर भगवान से प्रश्न किया है कि विकारों को किस प्रकार नष्ट किया जाय और इसी जीवन में परमा-नंद की प्राप्ति कैसे हो ?

श्री शिव उवाच

दोहा—जब विवेक हति मोह को, होई प्रबोध[1] संयुक्त।
तबहीं जानो जीव को, जग में जीवनमुक्त॥३२॥

(१) यथार्थ ज्ञान।

इस दोहे में विज्ञान गीता के प्रतिपाद्य विषय की ओर संकेत कर दिया गया है। इस विषय का ही प्रतिपादन नाना प्रकार से विज्ञान गीता में किया गया है। जब विवेक मोह को समाप्त कर प्रबोध (यथार्थ ज्ञान) से संयुक्त हो जाता है तब जीव इस संसार में रहता हुआ भी इस जीवन से मुक्त हो जाता है अर्थात् सांसारिक वस्तुयें उसके जीवन कोसुखी अथवा दुखी नहीं बना सकतीं।

श्री पार्वती उवाच

तोमर—तुम सर्वदा सर्व्वज्ञ ।
नर कहा जानहि अज्ञ ॥
कहँ होत प्रगट प्रबोध ।
प्रभु देहु जीव निसोध[1] ॥३३॥

(१) चेतना ।

पार्वती को यद्यपि शंकर जी ने सैद्धान्तिक रूप तो समझा दिया, किन्तु वह व्यवहारिक उन्हें नहीं दिखाई पड़ा । इसीलिए उन्होंने कहा कि हे शंकर जी ! आप तो सदैव सवज्ञ हैं अर्थात आप जानते हैं कि अज्ञानी मनुष्य यह सब नहीं जानता कि प्रबोध कहां प्रकट होता है । अतएव हे प्रभु ! आप जीव को चेतना युक्त करें ।

श्री शिव उवाच

सुनि प्रिये प्रेम निधान, तुम विज्ञ विविध विधान ।
वाराणशी सुप्रमान, वह है प्रबोध निधान ॥३४॥

इस दोहे में केशव ने काशी का महिमा पर प्रकाश डाला है और वह भी शिव जी के मुख से । शिव जी ने पार्वती जी से कहा कि हे पार्वती ! तुम सब प्रकार से विज्ञ हो और विविध विधानों का तुम्हें ज्ञान है । वाराणशी (बनारस) स्थान पर सब प्रकार के साधन उपलब्ध हैं । इसीलिए शंकर जी ने वाराणशी को प्रबोध का निधान कहा है ।

वीरसिंह उवाच

दोहा—केशव हमहि विवेक को, महामोह[1] को युद्ध ।
वरणि सुनावहु होइ ज्यों, जीव हमारो शुद्ध ॥३५॥

(१) विषय वासना रूप अज्ञान ।

जिस जिज्ञासा को पार्वती जी ने शिव जी के सम्मुख रखा था, उसी जिज्ञासा को वीरसिंह देव ने केशव के सम्मुख रखा । विवेक के द्वारा महा मोह को किस प्रकार पराजित किया जा सकता है, इसे वीरसिंह ने केशव

से पूछा। साथ ही वीरसिंह ने और भी कहा कि वर्णन इस ढंग से केशव करो जिससे कि उनका मन शुद्ध हो जाय। कितनी तगड़ी शर्त वीरसिंह ने रख दी है। वह वर्णन मात्र नहीं चाहते। वे ऐसा वर्णन चाहते हैं जिससे जीव शुद्ध हो ही जाय।

इति श्री चिदानंदमग्नायां विज्ञानगीतायां श्रीशिव
पार्वत्यु प्रश्न वर्णनं नाम प्रथमः प्रभावः ॥१॥

द्वितीय प्रभाव

दोहा—विशद द्वितीय प्रकाश में, यह वर्णिबो प्रकाश।
कलह काम रतिको रुचिर, मंत्र विनोद[1] विलास ॥१॥

(१) एक प्रकार का आलिंगन विशेष, (२) प्रणयक्रीड़ा।

केशब ने द्वितीय प्रभाव की कथावस्तु का परिचय दिया है। इस प्रभाव में कलह, काम, रति को अत्यधिक रुचिकर लगने वाले मंत्रविनोद और विलास का वर्णन किया गया है।

महादेव की बात सब, कही सुनी कलिकाल ॥
केशवदास प्रकाश[1] वश, उपजे शूल[2] विशाल ॥२॥

(१) स्पष्ट, (२) व्यथा।

केशवदास का कहना है कि स्पष्टता के कारण अत्यधिक व्यथा उत्पन्न होती है। इस व्यथा के विनाश के लिए ही तो कलयुग में महादेव की कथा को केशव ने कहा और सुना भी।

बात कही कलिकाल सब, कलह चल्यो उठिधाम।
महामोह पै बीच ही, आवत देख्यो काम ॥३॥

महादेव की कथा कहने के परिणाम स्वरूप कलह तो उठकर अपने घर चला गया, किन्तु महा मोह और काम की भेंट बीच में ही हो गयी।

सवैया—भूषण भूलनि के अंग अंग,
शरासन[1] फूलनि को अंग सो है॥
पंकज चारु बिलोचन चूमत,
मोहमयी मदिरा रुचि रोहै॥
बाहुलता[2] रति कण्ठ विराजन,
केशव रूप को रूपक जोहै॥
सुन्दर श्याम स्वरूप सने जगमोहन।
ज्यों जग के मन मोहै॥४॥

(१) धनुष, (२) लता जैसी बांह।

केशव ने काम के शरीर का वर्णन किया है। काम का सम्पूर्ण अंग पुष्पों से सुसज्जित है। काम के कमल सदृश नेत्र मोहमयी मदिरा का पान करते हैं। काम की लम्बी-लम्बी भुजायें रति के कण्ठ में शोभा पाती रहती हैं। केशव का कथन है कि काम का रूप रूपक ढूंढ़ रहा है अर्थात् अपने रूप का प्रतिद्वन्दी ढूँढ़ रहा है। केशव की कल्पना अनुसार काम कृष्ण के स्वरूप से सराबोर है और कृष्ण की भांति ही समस्त संसार को अपनी ओर आकर्षित कर रहा है।

दोहा—कलह कह्यो कलि को, करि प्रणाम अवदात।
काशी उदो प्रबोध को, सुनियतु है मन तात॥५॥

कलि को आदर पूर्वक प्रणाम करके कलह ने कहा कि ऐसा सुना है कि काशी में प्रबोध का उदय हो गया है।

काम उवाच

हरिछंद-देव दनुज सिद्ध मनुज संयम व्रत धारहीं।
वेदविहित धर्म सकल करि करि मन हारहीं॥

मोहिं प्रगट तोहिं निकट तोहिं प्रगट बंधु अरु विरोध को ।
शुद्ध सदय उदय हृदय होइ क्यों प्रबोध को ॥

देव, दनुज, सिद्ध मनुष्य संयम और व्रत को धारण करते हैं। वेदानुमोदित सब प्रकार के धर्म-कर्म भी करते हैं, किन्तु इस सब को करने के बाद भी बार-बार हार खा जाते हैं। जो बातें मुझे प्रकट है वे तेरे निकट हैं। तुझे बन्धु विरोध का रहस्य भी प्रगट हैं। काम का कहना है कि इस सब के होते हुये भी शुद्ध, सदय हृदयों में प्रबोध का उदय कैसे हो सकता है ?

रति उवाच

दोहा—प्राणनाथ सुनि प्रेम को, जग जन कहत अनेक।
महामोह नृपनाथ को, सुनियत बड़ो विवेक ॥ ७ ॥

रति ने प्रेम को सम्बोधित करके कहा कि हे प्राणनाथ ! संसार के अनेक लोग प्रेम को सुनकर कहते हैं कि महामोह नृपनाथ (शंकर) में बहुत अधिक विवेक हैं।

काम उवाच

भुजंग प्रयात—सजौं फूल के हैं धनुब्बाण मेरे।
करौं शोधि कै जीव संसार चेरे ॥
गनै को बली वीर वज्री विकारी।
भय वश्य शूली हली चक्रधारी ॥ ॥

रति की उपरोक्त बातों को सुनकर काम तमक उठा और कहा कि आज मैं अपने पुष्प के धनुष बाण को सजाऊँगा और उसी से संसारी जीवों का हनन करूँगा। बली, वीर, वज्री, विकारी लोगों की गिनती ही क्या ? शूली, हली और चक्रधारी तक तो मेरे बाणों के वश में हो गये हैं।

रति उवाच

दोहा—सब विधि यद्यपि सर्वदा, सुनियत पिय यह गाथ।
बहु सहाय सम्पन्न अरि, शंकनीय है नाथ॥ ९॥

हे प्रिय! मैं सदैव सभी लोगों से यही सुनती आई हूँ कि शंकर भगवान सब प्रकार से सम्पन्न हैं। ऐसा कह कर रति ने काम की सफलता में शङ्का पैदा कर दी। उपरोक्त बात कहकर ही रति नहीं रुकी, तो उसने स्वतः कह दिया कि शंकर शंका योग्य हैं अर्थात् उनको डिगाने में काम को सफलता मिलेगी अथवा नहीं, शंका का विषय है।

काम उवाच

विजय—शील विलात सबै सुमिरे अवलोकत छूटत धीरज भारो।
हासहि केशवदास उदास सबै व्रत संयम नेम निहारो।
भाषण ज्ञान विज्ञान छिपे क्षिति को बपुरा सो विवेक विचारो।
या सिगरे जग जीतन को युवतीमय अद्भुत अस्त्र हमारो॥ १०॥

काम ने गर्व पूर्वक कहा कि मेरे स्मरण मात्र से शील नष्ट हो जाता है और कोई प्रत्यक्ष दर्शन करे तो धैर्य भी नष्ट हो जाता है। यदि कहीं मैं मुसकरा दूँ तो लोगों के व्रत, संयम, नियम आदि सभी में मन ही नहीं लगेगा अर्थात् इन सब की ओर से उसका मन उचट जायेगा। भाषण, ज्ञान, विज्ञान तो मेरे भय के कारण क्षिति में छिपे रहते हैं। बेचारा विवेक क्या करेगा? इस सम्पूर्ण संसार को जीतने के लिये युवतीमय अस्त्र मेरा पर्याप्त है।

रति उवाच

दोहा—संतत मोह विवेक को, सुनियत एकै वंश।
वंश कहा गजगामिनी, एकै पिता प्रशंश॥ ११॥

रति ने काम से कहा कि सुना है कि मोह और रति का वंश एक ही है । इस पर काम ने उत्तर दिया है कि हे गजगामिनी रति ! वंश की कौन कहे ? दोनों का पिता भी एक ही है ।

काम उवाच

रूपमाला छंद—ईशमाय[1] विलोकि के उपजायो मन पूत ।
सुंदरी तिहि द्वै करी तिहि ते त्रिलोक अभूत[2] ।
एक नाम निवृति है जग एक प्रवृत्ति सुजान ।
वंश द्वै ताते भयो यह लोक मनि प्रमान ॥ १२ ॥

१ माया, २ मिथ्या ।

माया को देखकर ईश्वर ने मन को जन्म दिया । इस मन ने दो सुन्दरियों का वरण किया, जिससे तीनों लोक अभूत हैं । इन सुन्दरियों में एक का नाम निवृत्ति है और दूसरी का प्रवृत्ति । इस कारण से ही संसार में दो वंश हो गये हैं ।

योगवशिष्ठयथा श्लोक—चित्तंचेतोमनोमाया प्राकृति श्वेतनामपि ।
परस्मात्कारणादेव मनः प्रथमच्युते ॥ १३॥

चित्त, चेतना, मनोमाया, प्राकृति आदि सभी मन के विभिन्न रूप हैं । इसीलिये उसका प्रथम स्थान है ।

दोहा—महामोह दे आदि हम, जाए जगत प्रवृत्ति ।
सुमुखि विवेकि आनि दै, प्रगटत भई निवृत्ति ॥१४॥

महामोह आदि को लेकर इस संसार में प्रवृत्ति आई और विवेक आदि से पूर्ण होकर निवृत्ति इस संसार में प्रकट हुई ।

रति उवाच

दोधक—ज्यौं कुल एकरु एकपिता ज्यों ।
तौ अति प्रीतम प्रेम निशायों ।
आपुस माँझ सहोदर साँचे ।
क्यों तुम वीर विरोधनि राँचे ॥१५॥

रति ने अत्यन्त ही स्वाभाविक प्रश्न काम से कर दिया जो कि सभी के

हृदय में समान रूप से उठाता ही। जब कि एक ही कुल और एक ही पिता है, तो हे प्रीतम! दोनों में प्रेम का विनाश कैसे हुआ अर्थात् एक दूसरे के विरोध का क्या कारण है? तुम दोनों सच्चे सहोदर हो। फिर भी तुम दोनों विरोधी क्यों है।

काम उवाच

वैर विमातनि में चलि आयो।
आजु नयो हमहीं न उपायो।
देव अदेव बड़े अरु बारे।
जूझत पन्नग पच्छि विचारे ॥१६॥

काम ने रति के प्रश्न का उत्तर दिया कि दोनों (प्रवृत्ति और निवृत्ति) में वैर का होना कुछ अस्वाभाविक नहीं है, क्योंकि विमाताओं का वैर तो बहुत समय से चला आ रहा है। कुछ आज मैंने ही उसे नया नहीं पैदा किया है। देवता और राक्षस सभी, वे छोटे हों या बड़े, सर्पों और पक्षियों की भांति बेचारे लड़-लड़ कर मरते रहते हैं।

मातु पितै सबही हम भावैं।
वैकलि मध्य प्रवेश न पावैं।
है उनसो जग काज न काहू।
ताते वे चाहत मार्यो पिताहू ॥१७॥

माता-पिता को हम प्रिय हैं। परन्तु उनका कलियुग में प्रवेश ही नहीं हो पाता है, क्योंकि संसार को उनसे कुछ काम नहीं है अर्थात् संसार के प्रयोजनों में उनके द्वारा कुछ सिद्धि नहीं मिलती। इसी कारण से सभी मेरे पिता को मारना चाहते हैं।

रति उवाच

दोहा—ऐसे ही पिय कहत हौ, कै पायो कछु भेद।
करिहै कौन उपाइ करि, तुव कुल को उच्छेद[१] ॥१८॥

(१) उन्मूलन।

रति ने कहा कि हे प्रिय ! कुछ भेद भी मिला है या यों ही कह रहे हो । किस प्रकार से कोई तुम्हारे वंश का उन्मूलन करेगा ?

काम उवाच

एक मंत्र अति गूढ़ है, मोसो कहिये कन्त ।
कहिये कैसे त्रियन सों, दारुण कर्म दुरन्त ॥१९॥

काम ने कहा—एक मत्र अत्यधिक गूढ़ है । रति ने कहा—हे कन्त ! उसे मुझसे कहिए । इस पर काम ने कहा—दारुण और कठिन कर्मों को स्त्रियों से कैसे कहा जाय ।

रति उवाच

सोरठा—यद्यपि ऐसी बात, तदपि कहो पिय करि कृपा ।
महाराज मन जात, तुम सर्वत्र सर्वज्ञ हौ ॥२०॥

यद्यपि यह बात सत्य है फिर भी हे प्रिय ! कृपा करके कहो, क्योंकि तुम सब कुछ जानने वाले हो ।

काम उवाच

रूपमाला छन्द—भामिनी भव भावना तिहि भूलि चित्त न राँचु ।
किं प्रवृत्तिनि को गनै वह झूँठ होय कि सांचु ।
रति किं दशा वह किंच दन्ति कहो है एकहि अंश ।
मृत्यु मूरति राक्षसी इक होइगी मम वंश ॥२१॥

काम रति को सम्बोधित करके कहता है कि हे भामिनी ! इन सांसारिक भावनाओं में अपने चित्त को भूल कर भी अनुरक्त मत करो । प्रवृत्तियों पर अधिक विश्वास नहीं करना चाहिए । क्या पता कि वे झूठ हों या सच ? रति की विशिष्ट अवस्था को देखकर काम ने कहा कि मेरे वंश में मृत्यु नामक एक राक्षसी होगी ।

रति उवाच

नगस्वरूपणी छन्द—प्रसिद्ध पाप चारिणी ।
अशेष वंश हारिणी ॥

विवेक सम्मता भई।
किधौं असम्मत भई ॥२२॥

रति ने पूछा कि क्या यह वही मृत्यु नाम की राक्षसी होगी जो कि प्रसिद्ध पापचारिणी है और अशेष वंश का विनाश करने वाली है ? उपरोक्त प्रश्न के अतिरिक्त दूसरा प्रश्न किया कि उसका जन्म विवेक की सम्मति से होगा अथवा असम्मति से

काम उवाच

दोहा—करै विनाश जु और को. ताको नित्य विनाश।
केशवदास प्रकाश जग, ज्यो यदुवंश विनाश ॥२३॥

काम ने रति के उपरोक्त प्रश्न का उत्तर अत्यधिक नीतिपूर्ण ढंग से इस दोहे में दिया है। जो नित्य प्रति दूसरे के विनाश में लीन रहता है उसका विनाश भी अवश्य ही होगा। सभी को यदुवशियों का विनाश ज्ञात ही है। कृष्ण और यदुवंशी दूसरे के विनाश में सदैव ही लगे रहे। अतएव उनके वंश का भी विनाश हो गया।

केशव उवाच

दोहा—काम कह्यो तब कलह सों, दिल्ली नगरी जाय।
दंभहि दे उपदेश तब, देखहि प्रभु को पांय ॥२४॥

काम ने कलह से कहा कि अब दिल्ली नगर में जाकर दंभ को उपदेश देकर प्रभु के चरणों का दर्शन करूँगा।

इति श्री चिदानंदमग्नयां विज्ञानगीतायां कलह रतिकाम सम्वाद बर्णनं नाम द्वितीयः प्रभावः ॥२॥

—:०•:—

तृतीय प्रभाव

दोहा—या तीसरे प्रभाव में, दीह दंभ आकारु।
अहंकार अरु दंभ को, कहिबो मिलन विचारु ॥१॥

इस तीसरे प्रभाव में दंभ के विशाल रूप और अहंकार तथा दंभ के मिलन की कथा पर विचार प्रकट करूँगा।

दंभ विलोक्यो कलह जो, दिल्ली नगरी जाइ।
वंचतु जग जैसो फिरत, मोपै वर्णि न जाय ॥२॥

दंभ ने कलह को दिल्ली नगरी में जाकर देखा। कलह दिल्ली में इस प्रकार घूम रहा था जैसे कोई वचक संसार में घूम रहा हो। कलह के उस घूमने के ढङ्ग का वर्णन नहीं किया जा सकता।

मरहट्टा–काम कुतूहल में विलसै निशवार बधू मन मानहरे।
प्रात अन्हाइ बनाइ दै टीकनि उज्ज्वल अम्बर अंग धरे।
ऐसे तपोतप ऐसे जपोजप ऐसे पढ़ो श्रुति शारुशरे।
ऐसे योग जपो ऐसे यज्ञ भयो बहुलोगनि को उपदेश करे।

काम कौतूहल में ही रात-दिन विलास करता है और बंधुओं के मन के मान को हरता रहता है। वह प्रातःकाल स्नान करता है फिर टीका लगाकर उज्ज्वल वस्त्र धारण करता है। तप, जप, श्रुति-अध्ययन, योग यज्ञ आदि विभिन्न साधनों के विधानों पर लोगों को उपदेश देता है।

दोहा—कलह कह्यो कलि को कह्यो, सबै दंभ सो जाइ।
दंभ तबही नृपनाथ सों, जाइ कह्यो अकुलाई ॥४॥

कलह ने कलि का कहा हुआ सब कुछ दंभ से जाकर कहा। दंभ ने उसी समय आकुल होकर नृप नाथ से जाकर कहा।

कलह गए तब वे गही, बासर के आरंभ।
कालिन्दी सरिताहि को, उतरत देख्यो दंभ ॥५॥

कलह के चले जाने पर उसने प्रातःकाल देखा की यमुना को दंभ पार हा है।

जरत मनौ अभिमान तै, ग्रसत मनो संसार।
निन्दत है त्रै लोक को, हँसत विबुध परिवार ॥६॥

यमुना को पार करते समय दंभ का स्वरूप क्या था, इसी का वर्णन हे में है। अभिमान से दंभ जल रहा था और ऐसा लगता था कि सारे संसार को ग्रस लेने वाला है। तीनों लोकों पर हँस रहा है, देखकर अनेक परिवार हँस रहे हैं।

रूपमालाछन्द–कबहूँ न सुन्यो कहूँ गुरु को कह्यो उपदेशु।
अज्ञ यज्ञ न भेद जानत धर्म्म कर्म्म न लेशु।
स्नान दान सयान संयम योग याग संयोग।
ईशना तनु गूढ़ जानत मूढ़ माथुर लोग ।७।

इस छन्द में केशव ने माथुर लोगों पर व्यंग्य किया हैं। माथुर लोगों तो कभी कहीं गुरु का उपदेश ही सुना और न अज्ञ तथा यज्ञ का जानते हैं और न उनमें किसी प्रकार का धर्म कर्म ही है। स्नान, संयम, योग आदि की क्रियाये तो संयोग वश उनमें हैं। इसीलिये में व्यंग्य के साथ केशव ने कहा कि मूढ़ माथुर लोग और ईश्वर का त्व? अर्थात माथुर लोग ईश्वर के गूढ़ तत्व को कभी भी नहीं सकते।

वेद भेद कछू न जानत घोष करत कराल।
अर्थ को न समर्थ पाठ पढ़ै मनौ शुकबाल।
मेखला मृग चर्म संयुत अछत माल विशाल।
शीश पै बहुबार धारण भस्म अंगन डाल।
ठौर ठौर विराजहि मठपाल युक्त कुतर्क।
घोष[1] एक कहा रहो जा संग ते बहु नर्क ॥८॥

(१) अहीरों की बस्ती।

इन माथुर लोगों को यद्यपि वेद के भेद का कुछ भी ज्ञान नहीं है फिर भी प्रलाप अधिक करते हैं। यह सत्य है कि इन्हें पाठों का अर्थ ज्ञात नहीं है फिर भी तोता के बच्चे की भाँति पढ़ते रहते हैं। वेश कैसा माथुर लोगों का है ? मेखला और मृग चर्म को तो धारण करते हैं। गले में बड़ी सी माला पहनते हैं। शीश पर तो बहुत बार भस्म छोड़ते हैं और साथ ही शरीर में उसे लगाते हैं। स्थान-स्थान पर मठपाल के रूप में विराजमान हैं जो कुतर्क से युक्त है। एक घोष अर्थात अहीरों की बस्ती थी जिसमें रहने मात्र से नर्क मिलता था।

दोहा—शुद्रनि सों मुद्रित करै, उर उदार भुजदण्ड।
शीश कर्ण कटि पानि कुश, दंभ परस्रोव प्रचण्ड ॥९॥

शुद्रों से तो अपने उदार उर और भुजदण्डों को मुद्रित करता है। किन्तु अब शीश, कर्ण, कटि, हाथ सभी पर दंभ प्रचण्ड हो गया हैं।

केशव उवाच

बोधक—दंभहि देखि गयो जब नेरे।
हूँ कृत सो बरज्यो मतिवीरे।
दूरि रहो द्विज धीरज धारो।
पाँइ पखारि इहाँ पगुधारों ॥१०॥

दंभ को जब निकट से देखा तब उसे कर्तव्य वश रोका। हे द्विज ! दूर रहो और धैर्य धारण करो। पैरों को धोकर यहां पर आओ।

दंभ उवाच

दोहा—जानत हौं दिल्लीपुरी, तुरुक बसत सब ठाँइ।
अतिथिनि को दीजतु न यह, आसन अर्घ सुभाइ ॥११॥

यह मैं जानता हूँ कि दिल्ली नगर में मुसलमान ही सब स्थानों पर निवास करते हैं। इस कारण से अतिथियों को स्वभावतः यह आसन और अर्घ नहीं देता हूँ।

शिष्य उवाच

तारक छंद—कुलशील न कोविद जानियै जाको ।
काहि क्यों करि अर्च्चन आवत ताको ।
सुधि मूढ़ सयान सुन्यो सबु तेरयो ।
तुम कानन हूँ न सुन्यो यश मेरयो ॥१२॥

जिसका कुल शील कुछ भी ज्ञात न हो, उसकी अर्च्चना के लिये क्योंकर लोग आते हैं । इसपर दंभ ने उत्तर दिया—

हे मूर्ख ! तेरी चालाकी से भरी हुई सभी बातें मैंने सुनी । क्या तूने कभी भी कानों से मेरे यश को नहीं सुना ?

सरस्वती छंद—मायापुरी इक पावनी जग गौड़ देश प्रसिद्ध ।
माता पिता मम धर्म संयुत लोक लोक प्रसिद्ध ।
जाए सुपुत्र अनेक मैं तिनमहि सुविघ्नहि युक्त ।
विश्वंभरदयाल देव दक्षिण जानि जीवन मुक्त ॥१३॥

अत्यधिक पवित्र एक मायापुरी है, उसी में एक प्रसिद्ध गौड़ देश है । मेरे पिता धर्म से युक्त हैं और जो सभी लोकों में प्रसिद्ध हैं । उनके अनेक पुत्र हैं उन्हीं में से मैं भी एक विघ्नों से युक्त हूँ । दक्षिण की ओर विश्वम्भर दयाल देव रहते हैं जो जीवन को मुक्ति प्रदान करने वाले हैं ।

दोहा—पाँय पखारि यहीं भयो, अहंकार अनुकूल ।
बैठि दूरि द्विज जनि छुवो गुरु को आसनमूल ॥१४॥

पैरों को धोकर यहीं पर अहंकार अनुकूल हो गया । दंभ ने ब्राह्मण को दूर बैठने का संकेत किया और साथ ही न छूने का भी संकेत किया, क्योंकि वह गुरु का आसन है ।

सोरठा—परसि तुम्हारो गात, पथिक विलोकि प्रस्वेद कण ।
जगस्वामी को गात, ज्यों न छुवो त्यों बैठिये ॥१५॥

दंभ ने कहा—इस कारण से यहां एक दिन रहिये। प्रभु देव सभा से आ रहे हैं।

अहंकार उवाच

तारक—किहि कारण आवत हैं सुधि पाई।
सुविवेक कथा न सुनौ दुखदाई।
कहि पुत्र विवेक कथा वह कैसी।
कहिबे की नहीं कहि मेरी सों तैसी ॥ २२ ॥

अहंकार ने पूछा—प्रभु किस कारण से आ रहे हैं।

दंभ ने कहा—तुम्हारी सुध पाकर आ रहे हैं। क्या विवेक की दुखदाई कथा अभी तक नहीं सुनी है।

अहंकार ने पूछा—हे पुत्र! विवेक की वह कथा क्या है?

दंभ ने कहा—कहने योग्य नहीं है।

अहंकार ने कहा—तू कह अवश्य। तुझे मेरी सौगन्ध।

दंभ उवाच

सरस्वती छंद—वाराणशी सुनियै बढ्यौ बहुधा विवेक विचार।
विज्ञान को तिनते कहैं सब होइगो अवतार ॥
सोई प्रवृत्ति अनेक वंश विनाश हेत सुभाउ।
ताके अशेष विलोपु कारज आइहै इहि गाउँ ॥२३॥

वाराणशी (बनारस) में सुना है कि विवेक के विचारों का प्रसार हो रहा है। सब लोगों का यही कथन है कि उससे विज्ञान का अवतार होगा। स्वाभाविक रीति से ही प्रवृत्ति का विनाश हो जायगा। उसे नष्ट करने के निमित्त ही वह इस ग्राम में भी आएगा।

अहंकार उवाच

सवैया-भागीरथी जहं ऐसिहै केशव साधुन के जहँ पुंज लसैं रे।
सन्तत एक विवेक सो वेद विचारन सो जहँ जीव कसैं रे ॥

तारक मंत्र के दाइक लाइक आपु जहाँ जगदीश बसैं रे।
साधन शुद्ध समाधि जहाँ तँह प्रबोध उदोत नसैं रे ।२४।

दंभ और अहंकार को चिन्ता होती है कि कहीं प्रबोध के उदय से हमारा विनाश न हो जाय। अतएव अहंकार दंभ से प्रश्न करता है। जहाँ पर भगीरथी का प्रवाह है और साधुओं के पुंज के पुज निवास करते हैं, विवेक से वेदों पर बिचार करने के लिए जहाँ पर जीव सतत लीन रहते हैं, जहाँ पर स्वतः तारने वाले अर्थात भवसागर से पार करने वाले और मंत्रों को देने वाले भगवान रहते हैं और समाधि के शुद्ध साधन भी हैं, वहाँ पर प्रबोध के उदय को कैसे नाश किया जा सकता है अर्थात कैसे रोका जा सकता है।

दंभ उवाच

सवैया–शोक गिरावत हैं अति क्रोध गुमान गहैं कहि आवै न हाँजू।
लोभ लए दश हूँ दिशि डोलत है अपमान प्रहार तहाँजू ॥
झूठ की ईठइ नर्क के नीरधि बूड़त न अवलम्ब जहाँ जू।
काम करैं बहुभाँति फजीहति शोधनि को अवकाश कहाँजू २५

अहंकार की शंका का दंभ समाधान करता है। दंभ का कहना है कि शोक के कारण क्रोध नष्ट होता है और गर्व के कारण किसी भी काम को करने की इच्छा नहीं होती। चारों ओर व्यक्ति लोभ के वशीभूत होकर घूमता है और उस पर भी अपमान के प्रहार होते हैं। झूठ की प्रीति का वहाँ पर समुद्र है अर्थात झूठ का ही बोलबाला है। उसी समुद्र में सभी बिना किसी अवलम्ब के बूड़ते रहते हैं। और जहाँ पर काम सदैव अनेक प्रकार से लोगों की फजिहत किया करता है, वहाँ शोध के लिये अवकाश कहाँ है ?

दोहा—को बरजै प्रभु को प्रगट, बरजे होय अनर्थ।
बोध उदै के लोप को, एकै पेट समर्थ ॥२६॥

प्रभु के प्रकाश को कौन रोके ? उसके रोकने से तो अनर्थ ही हो

जायगा। बोध के उदै को रोकने में अर्थात उसे लुप्त करने में एक पेट ही समर्थ है।

कवित्त–केशव क्यौंहूँ भरयो न परै अरु जोर भरे भय की अधिकाई।
रीतत तौरि तयो न घरी कहुँ रीति गए अति आरत ताई॥
रीतो भलो न भरो भलों कैसहूँ रीते भरे बिनु कैसे रहाई।
पाइयै क्यों परमेश्वर की गति पेटन की गति जानि न जाई२७

केशव ने पेट की महिमा का बड़ा ही स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत किया है। केशव का कहना है कि पेट को किसी प्रकार भर भी नहीं मिलता अर्थात उसको सन्तुष्ट भी नहीं कर पाते हैं। यदि किसी प्रकार प्रयत्न करके उसे भर भी लें, तो भय उत्पन्न हो जाता। यदि पेट को खाली रखा जाय तो भी अत्यधिक दुःखदायी होता है। न तो खाली ही अच्छा और न भरा हुआ ही अच्छा है। खाली पेट को भरे बिना भी नहीं रहा जा सकता। पेट की इस अवस्था के कारण से परमेश्वर की अराधना कैसे की जाय। केशव का कहना है कि जब पेट खाली रहता है अर्थात व्यक्ति भूखा रहता है, तब तो उसे भगवान की आराधना करने की सूझती है किन्तु पेट खाली रहने से उसमें मन नहीं लगता, किन्तु जब पेट भरा रहता है तब ईश्वर की अराधना की ओर मन ही नहीं जाता।

सवैया–पेटनि पेटनि ही भटक्यो बहु पेटनि की पदवी ननक्योंजू।
पेट तें पेट लियो निकस्यों फिर के पुनि पेट ही सों अटक्योंजू॥
पेट को चेरो सबै जग काहू के पेटन पेट समात तक्यो जू।
पेट के पंथन पावहु केशव पेटहि पोषत पेट पक्योजू॥२८॥

व्यक्ति पेट के चक्कर में ही घूमता रहता है और पेट सम्बन्धी उसे अनेक पदवियाँ भी मिल जाती हैं। व्यक्ति पेट से ही निकलता है अर्थात उसका पेट से ही तो जन्म होता है और संसार में आकर भी वह पेट के ही चक्कर में पड़ जाता है। सारा संसार पेट का ही दास हो रहा है,

किन्तु किसी को भी पेट के पेट में समाते नहीं देखा। केशव कहते हैं कि सभी को पेट के भरने के रास्ते पर ही देखता हूँ, किन्तु इस पेट का पालन-पोषण करते-करते पेट पक जाता है।

दोहा—तृषा बड़ी बड़वानली, छुधा तिमिंगिलि[१] छुद्र।
ऐसो को निकसै जु परि, उदर उदार समुद्र ॥२९॥

(१) एक समुद्री जन्तु जो बड़े आकार की समुद्री मछली को भी निगल सकता है।

व्यक्ति की तृष्णा बड़वाग्नि है और उसकी क्षुधा तिमिंगिल है। ऐसा कौन व्यक्ति है जो उस समुद्र के बाहर निकल सके अर्थात् उसके बाहर निकलने का सामर्थ्य किसी में भी नहीं है।

मन वच कर्म्म जु कपट तजि, सेइ रहे नर कोइ।
केशव तीरथ वास को, ताहि को फलु होय ॥३०॥

मनसा, वाचा कर्मणा जो व्यक्ति तीर्थ वास कर सेवा करता है उसी को मनोवाँछित फल की प्राप्ति होती है।

अगस्त्यसंहितायां यथा श्लोक—यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतं। विद्यातपश्च कोर्तिश्च सतीर्थ फलमश्नुते ॥३१॥

हाथ, पैर, मन, विद्या, कीर्ति आदि पर संयम रखने से ही तीर्थों का फल मिलता है।

इति श्री चिदानंदमग्ना विज्ञानगीतायां अहंकार दंभ संवाद वर्णनं नाम तृतीयः प्रभाव ॥

—:०:—

चतुर्थ प्रभाव

दोहा—महामोह को वर्णिबो, चौथे मांझ प्रयानु ।
सागर सरिता वर्णासुर, सातो द्वीप प्रमानु ।।१।।

चौथे प्रभाव में महामोह के प्रस्थान, सागर सरिता, वर्णासुर और सातों द्वीपों का प्रमाण देकर वर्णन करूँगा ।

महामोह विहरत हुते, पर्वत लोका लोक ।
कलह विलोके जाइ तहँ, ब्रह्मदोषयुत शोक ।।२।।

महामोह पर्वतीय प्रदेश में विहार कर रहा था । वहीं पर जाकर कलह ने ब्रह्माहत्या से युक्त शोक को जाकर देखा ।

तोमरछन्द—कलह की सुनि बात ।
उठि चले मन के तात ।।
बाहु उठे दुंदभि बाजि ।
तहँ विविध सेना साजि ।।३।।

कलह की बात को सुनकर मन का तात चल दिया । उसके चलते ही विविध प्रकार की सेना दुंदभी बजाकर साजी गई ।

चामर छन्द—धर्म कर्म शर्म के सुशर्म यज्ञ दोषवन्त ।
तात मात भ्रात दोष दीन दोष जे अनंत ।।
मित्र दोष मंत्रि दोष मंत्र दोष के जु नाथ ।
देव दोष ब्रह्मदोष ले चले अनेक साथ ।।४।।

धर्म, कर्म, शर्म, यज्ञ के दोषों से पूर्ण तथा माता-पिता, भाई ने जो अनेक दोष दिए और मित्र, मंत्रि, मंत्र, दोष एवं देवदोष, ब्रह्म दोष आदि अनेक दोषों को साथ लेकर चले ।

दोहा—महामोह अति कोह कै, दोषनि के अवनीप ।
कीनो प्रथम मिलानु महि, मोहन पुष्कर द्वीप ।।५।।

दोषों का राजा महामोह अति क्रोधित होकर सर्वप्रथम पृथ्वी पर मोहन पुष्कर द्वीपमें भेंट की ।

चामर छन्द—चारि लाख योजन प्रमाण मान नाखिये ।
शुद्ध नीर को जहाँ प्रसिद्ध सिंधु भाषिये ।।
ब्रह्मरूप को जहाँ अशेष जन्तु सेवहीं ।
मान तत्व को गिरीश खंड द्वै विराजहीं ।।६।।

चार लाख योजन की कल्पना करके पुष्कर द्वीप को पार करिए । इसे पार करने पर शुद्ध जल का समुद्र मिलेगा । वहाँ पर अनेक जीव ब्रह्म-रूप की सेवा में लीन होंगें । आत्म सम्मानी शिव वहां पर विराजमान हैं ।

मल्लिका छन्द—योजन प्रमाण दीश ।
द्वीप लक्ष हैं बतीश ।।
सात खण्ड हैं सुदेश ।
सातऊ नदी सुवेश ।।७।।

योजन को प्रमाण मानकर बत्तीस लक्ष द्वीप हैं । सात खण्ड देश हैं और सात सुन्दर नदियां हैं ।

दोहा—एक सुधुम्नानी कहै, और मनोजव जानु ।
चित्ररेफ है तीसरो, चौथो गणि पवमानु[1] ।।८।।

(१) सोमदेवता ।

सुधुम्नानी, मनोजव, चित्ररेफ, गणि नाम के चार खण्ड सोमदेवता (वेद) के आधार पर हैं ।

पंचम जानि पुरोज वहि, छठो विमल बहु रूप ।
विश्व धातु है सात जो, यह खंडिन को रूप ।।९।।

पुरोज, विमल, विश्वधातु नाम के तीन खण्ड और हैं ।

उपसृष्टि अपराजिता, आयुर्दा अन वासु ।
निजधृति नदी सहस्र घृति, पंच नदी सुप्रकाशु ।।१०।।

उपसृष्टि अपराजिता है और प्रकृति अत्यधिक समय तक हरी भरी रहने वाली है। स्थैर्य के साथ वहां पर बहने वाली पांच नदियां हैं।

सब जन शाका द्वीप को, प्राणायामनि साधि।
वायुरूप जगदीश को, सेवत सहित समाधि ॥११॥

शाका द्वीप में सभी लोग प्राणायाम से समाधि लगाकर वायुरूप जगदीश की आराधना करते हैं।

केशव शाकाद्वीप को, समुझै सकल सुजानि।
सागर क्षीर समुद्र तहँ, श्रीपति[१] को सुखदानि ॥१२॥

(१) विष्णु।

शाका द्वीप से सभी सुजान व्यक्ति परिचित हैं, क्योंकि वहां पर क्षीर सागर और समुद्र है और सभी को सुख देने वाले विष्णु जी भी वहीं रहते हैं।

उचक्यो शाका दीपते महामोह अकुलाइ।
मेल्यो क्रौंचहि दीप जहँ, दधि सागर सुखदाइ ॥१३॥

अत्यधिक व्याकुल होकर महामोह शाकाद्वीप से कूदा और क्रौंच द्वीप में जाकर गिरा, जहाँ पर अत्यधिक सुख देनेवाला दधि सागर था।

जलरूपी जगदीश को सेवत सकल सुजान।
केशव योजन जानि सो सोरह लाख प्रमान ॥१४॥

सभी सुजान जलरूपी जगदीश की सेवा करते हैं। केशव की समझ में उसका अस्तित्व सोलह लाख योजन की दूरी पर है।

मेघ वृष्टि प्राविष्ट्य पुनि, प्राणायाम सुधाम।
लोहितानु तहँ शोभियै, खण्ड वनस्पति नाम ॥१५॥

जो मेघ वृष्टि के प्रवेश का और प्राणायाम (योग की चौथी क्रिया) का सुन्दर घर है। यहाँ पर लोहितानु (लोहित्य) समुद्र सुशोभित हैं और इस खण्ड का नाम वनस्पति है।

शुक्ला, अभया, अज्ञका, अरु पवित्रवति नाम ।
तीर्थवती अरु रूपवती, अमृतैनधा सुखधाम ॥१७॥

शुक्ला, अभया, अज्ञका, पवित्रवती, तीर्थवती, रूपवती, अमृैताधा, सुख की आगार हैं।

तोमर छन्द—कुशद्वीप मे लिय आइ ।
घृत के समुद्रहि पाइ ॥
तहँ अग्निरूप अशोक ।
जगदीश पूजत लोक ॥१७॥

शुक्ला, अभया, अज्ञका आदि ने कुशद्वीप में जाकर जन्म लिया। वहाँ पर घृत का समुद्र है जहाँ पर अग्निरूप अशोक वास करता है। उस द्वीप पर सभी जगदीश की आराधना करते हैं।

दोहा—सत्यव्रत शुचि भक्ति भट, रुचिव केशव दान ।
नाभि गुप्त मम देव तहँ, सातो होत प्रमान ॥ १८ ॥

जहां पर सभी सत्यव्रती, पवित्र भक्त और प्रजापति निवास करते हैं, वहीं पर मेरे नाभिगुप्त देव रहते हैं जिसके सातों प्रमाण हैं।

रसकुल्या[१] मंत्रावली, मधुकुल्या श्रुतिबिंद ।
घृत कुल्या शुचि गामिनी, नदि सहिता मृतबिंद ॥१९॥

१६ नदी।

रसकुल्या, मंत्रावली, मधुकुल्या, श्रुतिबिंद और पवित्र सहनशील मंदगति से चलने वाली घृत कुल्या मृतबिन्द हैं।

आठ लाख योजन सबै, कुशद्वीप सुखदाइ ।
सोतजि शाल्मलि, द्वीप मैं मेल्यो जग सुखदाइ ॥२०॥

अत्यधिक सुख देने वाले कुशद्वीप का विस्तार आठ लाख योजन का है। उसे छोड़कर महामोह शाल्मलि द्वीप में जाकर पहुँचा। वह द्वीप संसार भर को सुख देने वाला है।

चामर—चारि लाख योजन प्रमाण दीप जनियै।
मध्य को समुद्र देखि देखि सुख मानियै॥
सात खण्ड सात ही तरंगनी बहैं जहीं।
सोम रूप ईश को अशेष जन्तु सेवहीं॥ २१॥

शाल्मलि द्वीप का चार लाख योजन का विस्तार है। उसके मध्य में समुद्र को बहता हुआ देखकर हृदय को अत्यधिक सुख होता है। उस द्वीप के सात खण्ड हैं और उसमें सात ही नदियां बहती हैं। ईश्वर के सोमरूप की सभी जन्तु वहां पर सेवा करते हैं।

दोहा—पारिभाद्र सा मनस अरू, अविज्ञात सुखर्ष।
रमणक अप्याजन सहित, ऐड सुरोवन हर्ष॥ २२॥

मन पारिभाद्र के सदृश है किन्तु सुखर्ष अज्ञात है। रमणक अप्याजन के सहित सुरोवन की प्रसन्नता है।

सिनी बाली रजनी कुहू मंदा राकाजानु।
सरस्वती उस अनुमती सातो नदी बखानु॥ २३॥

सिनी बाली, रजनी, कुहू, मंदा, राका, सरस्वती और अनुमती शाल्मलि द्वीप की सात नदियां हैं।

नाराच छन्द—लक्षदोइ योजन पलक्ष दीप जानियै।
तरंगणी समेत सात सात खण्ड मानियै॥
दिनेश रूप देव को अशेष जंतु सेवहीं।
नृदेव देव शत्रु मोहि आनि मेलि जोवहीं॥ २४॥

दो लाख योजन का विस्तार पलक्ष द्वीप का है। पलक्ष द्वीप में सात नदियां और सात खण्ड हैं। दिनेश के रूप की सभी जीव आराधना करते हैं। नृदेव और राक्षसी सभी मेरी दुहाई देकर मेरी बाट जोहा करते हैं।

दोहा—सात क्षेम समुद्र शिव जय यशवर्णि प्रमान।
अमृत अभय इहि नाम युत सातो खण्ड प्रमान॥ २५॥

क्षेम, शिव, जय, यशवर्णि, अमृत, अभया इहि नाम के सात समुद्र हैं जिसका प्रमाण सातो खण्ड हैं।

अरुना नमना संभवा, बत्सरता अवदात।
सावित्री अरु सुप्रभा, सुरसा सरिता सात ॥ २६ ॥

अरुना, नमना, संभवा, बत्सरता, सावित्री, सुप्रभा सुरसा सात नदियां हैं।

रस सागर अवलोकियो महामोह तिहिठौर।
केशवदास विलास जहँ करत देव शिर मौर ॥ २७॥

उस स्थान पर महामोह ने रस सागर को देखा, जिसमें देवताओं के शिरमौर विलास कर रहे थे।

आयो जम्बू द्वीप मैं, महामोह रण रुद्र।
योजन लक्ष प्रमाण तहँ, देख्यो क्षार समुद्र ॥ २८ ॥

गत द्वीप से महामोह जम्बू द्वीप में अत्यधिक क्रोधित होकर आया। इस जम्बू द्वीप का एक लाख योजन का विस्तार है और जिसमें क्षार समुद्र है।

मधु छन्द—हैं नौ खण्ड बिराजत जाके।
मानहुँ सुन्दर रूपक ताके॥
एक इलावृत खंड कहावै।
मंदरते अति शोभहिं पावै ॥ २९ ॥

जम्बू द्वीप में अत्यधिक सुन्दर नव खण्ड शोभा पाते हैं। इन नव खण्डों में एक इलावृत खण्ड भी है जो पर्वतों के कारण अत्यधिक शोभा पाता है।

ताते चली सरिता बहुमोदा।
नाम कहावति है अरुणोदा॥
चारि तहां शुभ बाग विराजैं।
नित्य नये फल फूलनि साजैं॥ ३० ॥

अनेक प्रकार के आनन्द देने वाली उसमें सरितायें प्रवाहित होती हैं जा क सभी अरुणोदा कही जाती हैं। उसमें चार शुभ बाग हैं जिनमें नित्यप्रति नये नये फल-फूल लगते हैं।

दोहा—चित्ररथ अरु चारु तहँ, वैभ्राजकु इहि नाम।
और सर्वतो भद्र पुनि, नन्दन सब सुख धाम॥ ३१॥

उपरोक्त चारों बागों के नाम ये हैं—

१ चित्ररथ २ वैभ्राजकु ३ सर्वतोभद्र ४ नन्दन, ये चारों ही बाग अत्यधिक सुन्दर और सुख प्रदान करने वाले हैं।

सुन्दरी छन्द—भूत लहैं शिव के वन को जहँ।
पारबती पति केलि करैं तहँ॥
भूलि जो कोऊ जहां तनु आवै।
सो तब ही तरुनी पद पावै॥ ३२॥

शिव वन को भूत देखा करते हैं और पार्वती जहां पर केलि किया करती हैं। यदि भूल करके भी कोई वहां पर पहुँच जाय तो वही तुरन्त ही तरुणी बन जायेगा।

दोहा—भद्राश्व नाम धमसुत, सो भद्राश्वक खण्ड।
हयग्रींव जगदीश को, सेवत जीव अखण्ड॥ ३३॥

धर्म के पुत्र का नाम भद्राश्व है। भद्राश्व जिस स्थान पर निवास करता है वही भद्राश्वक खण्ड है। हयग्रीव उस खण्ड में सदैव जगदीश की उपासना किया करता है।

हरि गीतिका छंद-हरिवर्ष खण्ड नृसिंह को प्रहलाद सेवत साधु।
शुभ केत माल रमारमेशहिं काम कर्म करालु॥
शुभता हिरण्मय खण्ड मण्डित यत्र कूरमवेष।
पितृनाथ सेवत अर्जमा मनकाय वाक विशेष॥ ३४॥

नृसिंह का हरिवर्ष खण्ड है, जिसमें साधु प्रहलाद आराधना करता है। इस शुभ हरिवर्ष खण्ड में लक्ष्मी और विष्णु दोनों ही विराजमान है

यहां पर क्राम का कर्म अत्यधिक कठिन है। हिरण्मय खण्ड में शुभता कूरम बेश में विराजमान है, जहां पर मनसा वाचा कर्मणा अर्जमा पितृनाथ की सेवा करता है।

दोहा—मत्स्यरूप भगवंत को, सेवत बुद्धि अखण्ड।
मनसा वाचा कर्मणा, मनुनृप रम्यक खण्ड ॥ ३५ ॥

रम्यक खण्ड में मनुराजा मनसा, वाचा, कर्मणा अखण्ड रूप में भगवान् के मत्स्यरूप की आराधना करता है।

महामोह की पुरुष लखि, भाग्यो सेन संयुक्त।
केशवदास प्रकाश मुख, हँसे देव मुनि मुक्त ॥ ३६ ॥

महामोह पुरुष को देखकर ससैन्य भाग खड़ा हुआ। इस अवसर पर सभी देव तथा मुनि आनन्दित होकर हंस पड़े।

रूप माला छंद—आदि ब्रह्म अनन्त नित्य अमेय श्री रघुबीर।
सावधान अशेष भाव निसंग लक्ष्मण धीर ॥
शुद्ध बुद्धि प्रबोध युक्त विदेहया अतिसाधु।
सर्वदा हनुमंत सेवत नित्य प्रेम अगाधु ॥३७॥

श्री रघुबीर नित्य अमेय है। उनके पास अशेष भाव से निषंग लेकर धीर वीर लक्ष्मण रहते हैं। शुद्ध बुद्धि वाली, प्रबोध से युक्त, अत्यन्त ही साधु सीता भी रघुबीर के पास रहती हैं। सदैव हनुमान जी अत्यन्त ही प्रेम के साथ उनकी सेवा किया करते हैं।

दोहा—भरत खण्ड मे आनिकै कीनो मोह मिलान।
नारायण को भजन तहँ नारद बुद्धि निधान ॥ ३८ ॥

भरत खण्ड में महामोह आया और यहां पर उसे नारायण का भजन सुनाई दिया और बुद्धि के विधान नारद मिले।

आयो तब पाखण्ड पुर, देश अशेषनि जीति।
कीनों तहां मिलान कछु, बासर बाढ़ी प्रीति ॥ ३६ ॥

महामोह अशेष देशों को जीतकर पाषण्डपुर आया और यहां पर सभी खण्डों का मिलान किया जिसके कारण उसके हृदय में प्रीति बढ़ गई।

सवैया—काम कुमार से नन्द कुमार की केलि थली जहँ नित्य नई है।
वानकी पावन तातन लागत पापिनि हूँ कहँ मुक्ति मई है॥
पुष्प शरासन हा घर ही बरही रति कीरति जीति लई है।
पुष्प शरासन श्री मथुराभव भान भवा गुण भोर भई है॥४०॥

नित्य ही अपना नवीन रूप धारण किये रहती हैं। जंगलों की वायु वहां पर गरम नहीं मालूम होती। इतना ही नहीं तो पापियों को मुक्ति भी प्रदान करने वाली है। वहां पर घर घर में पुष्पों के शरासन हैं जिसके कारण लोगों ने बल पूर्वक रति की कीर्ति को जीत लिया है। पुष्पों के शरासन ही मथुरा के भाव है जहां पर सुर्योदय होने पर अनेक गुणों से सम्पन्न प्रातः आ जाता है।

इति श्री चिदानन्दमग्नायाँ विज्ञानगीतायां
सप्त द्वीप वर्णनं नाम चतुर्थ प्रभावः॥ ४॥

पंचम प्रभाव

दोहा—पांचे प्रगट प्रभाव में, कहिबो मिथ्या मंत्र।
संतत मिथ्या दृष्टिसों, महा मोह को तंत्र॥ १॥

इस पांचवें प्रभाव में मिथ्या मंत्र का वर्णन करूँगा। महामोह के तंत्र का भी मिथ्या दृष्टि से विस्तार पूर्वक वर्णन करूँगा।

महामोह उवाच

कुण्डलिया—देही[1] न्यारो देहते[2] कहते सयाने लोग।
दुसह दुःख ह्यां देखि पर, लोक करहिंगे भोग॥
लोक करहिंगे भोग योग संयम ब्रत साधें।
भूले जहँ तहँ भ्रमत सकल शोभा सुख बांधें।
भूले जहँ तहँ भ्रमत होत तन सो न सनेही।
जो झूठो है देह ततो अति झूठो देही॥ २॥

१ जीव, २ शरीर।

सभी चतुर लोग कहते हैं कि शरीर से जीव न्यारा है अर्थात अलग है। यहां पर अत्यधिक दुख देखकर लोग भोग में प्रवृत्त होंगे। लोग भोग, संयम और ब्रत की साधना करने के बाद भी भोग करेंगे। जहां तहां सारे लोग सुख और शोभा को बांधकर भूले-भूले से घूमेंगे। इधर उधर भूले-भूले घूमते हैं किन्तु अपने शरीर से स्नेह नहीं करते हैं। यदि शरीर झूठा है तो जीव भी झूठा ही है।

मधु—तीरथवासी यहै सब जानै।
देह ते देहि को भिन्न बखानै॥
देह को देखत ज्यों सब कोऊ।
त्यों किन देही को देखत सोऊ॥ ३॥

तीर्थों में वास करने वाले सभी यही जानते हैं और यही कहते हैं कि शरीर से जीव भिन्न है। यदि ऐसा है तो शरीर को सभी देख सकते हैं, तो जीव को क्यों नहीं देख सकते?

सांचो जो जीव सदा अविकारी।
क्यों वह होत पुमान ते नारी॥
जो नर नारी समान कै जानै।
तौ क्यों पर नारि को दोष न मानै॥ ४॥

यदि सचमुच जीव सदैव अविकारी है तो पुरुष से नारी क्यों होता है ? यदि नर और नारी दोनों समान हैं तो दूसरी नारी के दोषों को क्यों नहीं मानते ।

गौतम देही अवर्ण[1] कै लेखौ ।
देह धरे बहुवर्णनि[2] देखौ ॥
देही को मानत हो अविनाशी ।
पातकी होत क्यों देह विनाशी ॥५॥

(१) बिनारंग का (२) अनेक रंग का ।

यदि जीव को अवर्ण मानते हैं तो शरीर धारण करने पर अनेक रंग कैसे दिखाई देते हैं ? इसी प्रकार यदि जीव अविनाशी है तो पातकी शरीर का विनाश क्यों होता है ।

जौ तुम देह अनित्य[1] बखानो ।
नित्य निरंजन[2] देही को मानो ॥
आपनी बात जनावहु काहू ।
काहे को गंगहि हाड़ ले जाहू ॥६॥

(१) नश्वर (२) निर्दोष

यदि शरीर को नश्वर मानते हो और जीव को नित्य ही निर्दोष मानते हो, तो अपनी इस बात को सभी को बताओ । इसके बताने का ढंग यह भी हो सकता है कि मृत-व्यक्ति की हड्डियों को गंगा में न ले जाया जाय क्योंकि जीव जब निर्दोष है तब उसे किस बात से मुक्ति चाहिए ।

भुजंग प्रयात छन्द :— वहै शास्त्र ताते सदा सत्य लेखो ।
प्रभा सिद्धिता मध्य प्रत्यक्ष देखो ॥
धरातेज बाताम्बु है तत्व चारयो ।
सदा इष्टतो अर्थ काम्ये विचारयो ॥७॥

शास्त्रों के आधार पर ही सदैव सत्य को तौल कर देखा गया है । सिद्धि के बीच में सदैव प्रत्यक्ष प्रभा का दर्शन हुआ है । बाताम्बु और

चारो तत्व ही पृथ्वी का तेज हैं। अर्थ और काम के लिए ही तो सदा इष्ट का विचार किया जाता है।

वहै लोक तो लोक है मुक्त विद्यै।
सदा चर्य चर्वाक ते औरु निन्द्ये॥
विलोपो जहाँ धर्म धर्माधिकारी।
विलोपो सदावेद विद्या विचारी॥८॥

यदि यह वही लोक है जहां पर मुक्त-विद्या थी, तो यहीं पर सदाचारी चर्वाक ने मुक्त-विद्या की निन्दा की थी। धर्म और धर्माधिकारियों का नाश हुआ। वेद और विद्या का भी विनाश हो गया।

दोहा—देखि सबै पाषण्ड पुर अपनी सिगरी सृष्टि।
रावर[1] मांझ गए जहाँ, रानी मिथ्या दृष्टि॥९॥

१ अन्तःपुर

सम्पूर्ण पाषण्ड पुर और अपनी सृष्टि को देखकर अन्तःपुर के बीच गए जहां मिथ्या रानी दिखाई पड़ी।

भुजंग प्रपात—दुराशा जहाँ तृष्णिका देह धारै।
दुहूँ ओर दोऊ भले चौंर ढारै॥
बड़ी आरसी चारु चिन्ता दिखावै।
गुमानी धरे पान निन्दा खवावै॥१०॥

इस छन्द में केशव ने मिथ्या के स्वभाव का चित्रण किया है। अन्तःपुर में मिथ्या पर दुराशा तृष्णा का रूप धारण कर चौंर ढाल रही थी। चारु चिन्ता एक बड़े शीशे को दिखा रही थी। घमण्डी लोग निन्दा रूपी पान मिथ्या को खिला रहे हैं।

पिपासा क्षुधा क्षुद्र बीना बजावैं।
अलच्छी अलज्जी दुओ गीत गावैं॥
लिये अन्न शंका असाभानि राचैं।
नए नृत्य नाना असंतुष्ट नाचैं॥११॥

पिपासा और क्षुधा क्षुद्र वीणा को बजाते थे। अलच्छी और अलज्जी दोनों ही गीत को गा रहे थे। अन्न शंका लेकर अशोभन कार्यों में अनुरक्त था। असन्तुष्ट अनेक प्रकार के नये नृत्य करता था।

दोहा—अँचवाती मदिरा अरुचि कुमतिन कथा विधान।
हिंसासो हँसि जाति सुनि. रतिके बचन पिछान[1] ॥१२॥

(१) पहचान

पीने योग्य मदिरा अरुचिकर है और कुमतियों के लिए कथा का विधान किया है। रति के बचनों को पहचान हिंसावश हँसकर सुन जाते हैं।

राजा

अनकूल—आय कहू देखति दुचिताई।
लोकनि मैं यद्यपि प्रभुताई ॥
शासन मेरो सबै जग पारै।
एक विवेक सुमोमन सारै ॥१३॥

महामोह ने आकर कुछ दुचिताई को देखा और मिथ्या रानी से कहा कि यद्यपि सारे लोकों में मेरा ही प्रभुत्व फैला हुआ है और मेरा ही शासन चल रहा है किन्तु केवल एक विवेक है जो मेरे मन को मार रहा है।

कौन भांति वह जीतन पाउँ।
मंत्र देहि चित ताहि लगाऊँ ॥
बूझि बूझि देखे हम मंत्री।
पुत्र मित्रजन सोदर तंत्री ॥१४॥

विवेक को जीतने का ढँग इस छंद में महामोह ने मिथ्या रानी से पूछा है। महामोह कहता है कि हे विवेक की रानी ! जिस ढंग से मैं जीत सकूं उसी युक्ति को तू बता दे। मैंने उसे जीतने की विधि अपने मंत्री, पुत्र, भ्राता और मित्र सभी से पूछी है।

रानी

तोमर—सुनि राज राज विचारु ।
वह शत्रु दीहनि हारु ॥
सहसा न दीजै दांउ ।
यह राजनीति प्रभाउ ॥१५॥

मिथ्या रानीने महामोहको समझाया कि हे राजा ! बार बार इस विषय पर बिचार कर लो । वह शत्रु सब कुछ हरण करने वाला है । अतएव राजनीति के विचार से उस पर सहसा दांव न लगावो ।

भुजंगप्रयात—जु वाराणशी मैं जिते जीव देखो ।
सुकाहू न शङ्कै महा साधु लेखो ॥
जुताको तजो नाम जी मोहिलाजा ।
सुबंदे सबै लोक लोकेश राजा ॥१६॥

वाराणशी में जितने भी जीवों को आपने देखा था, क्या उनमें शंका का कहीं लेश भी था ? अर्थात सभी शंका रहित थे । यदि तुम उसके नाम को छोड़ देते हो तो मुझे लज्जा का अनुभव होता है, क्योंकि सभी लोकों के राजाओं ने उसकी वंदना की है ।

दोहा—गंगा अरु वाराणसी, महादेवतिहि ठौर ।
पांउ न धरिये पंथ तिहि, सुनो रसिक सिरमौर ॥१७॥

गंगा, वाराणशी और महादेव जिस स्थान पर वास करते हैं, हे रसिक शिरमौर ! उस स्थान पर पैर तक न रखिएगा ।

राजोवाच

भुजंङ्गप्रयात—कहा कामिनी तैं कही बात मोंसों ।
छमी प्रेम नाते कहो बात तोसों ॥
वहै ग्राम होतौ सुलेही रह्योहों ।
सदासर्वदा लोक लोकेश होहों ॥१८॥

मिथ्या रानी के उपरोक्त कथन से महामोहने तपककर कहा कि हे कामिनी ! तूने मुझसे क्या बात कही है ? प्रेम के नाते मैंने तुझे क्षमा कर

दिया। तुझ से कह रहा हूं कि यह वही ग्राम है जहां मैं रह चुका हूं। मैं तो सदा ही उस लोक का स्वामी रहा हूँ।

तहां लोग मेरे रहे वेषधारी।
जटी दण्ड मुण्डी यती ब्रह्मचारी॥
पढ़ैं शास्त्र को वेद विद्या विरोधी।
महाखण्ड पाषण्ड धर्म्मोऽविरोधी॥१६॥

जटी, दण्डी, मुन्डो, यती, ब्रह्मचारी का रूप धारणकर मेरे लोग वहां पर रह रहे हैं। यद्यपि वे वेद शास्त्रों का अध्ययन करते हैं किन्तु फिर भी वे सब विद्या के विरोधी हैं। वे लोग अत्यधिक पाषण्डी हैं और धर्म को क्षति पहुँचाने वाले हैं।

विजय—मारत राह उछाहनोसों,
पुरदाहतमाह अन्हात उचारैं।
बार विलासिनि सों मिल पीवत,
मद्य अनोदिक के प्रति पारैं॥
चोरी करैं विभिचार करैं पुनि,
केशव वस्तु विचारि विचारैं।
जो निशिवासरकाशीपुरी महँ,
मेरेई लोग अनेक विहारैं॥२०॥

अत्यधिक उत्साह से प्रथाओं का विनाश करते हैं। स्नान करते समय जो मंत्रों का उच्चारण करते हैं वही काशीपुरी को नष्ट करने का ढंग है। वे सभी वेश्यायों से मिलकर मदिरापान करते हैं और वही अनोदिक की रक्षा करने वाले हैं। वे ही लोग चोरी और व्यभिचार करते हैं और बाद को अनेक विषयों पर विचार करते हैं। रात दिन मेरे ही अनेक लोग काशी में विहार किया करते हैं।

रानी

तोरक छन्द—यह बात सुनी जबहीं तबहीं।
हँसि बोलि उठो सू सुनी सबही ॥
जिनि भूलहु भर्म मृषानि अबै।
हमपै सुनिये पुर धर्म्म सबै ॥२१॥

रानी ने महामोह को राजनीति के आधार पर समझाया था, किन्तु महामोह ने यह कह कर कि काशी में भी उसके गण जम चुके हैं अपना रोब रानी पर जमा दिया। किन्तु रानी को सन्तोष नहीं हुआ। इसीलिए उसने फिर समझाया।

महामोह की उपरोक्त बातों को जब रानी ने सुना तब वह हंस पड़ी। रानी ने कहा कि व्यर्थ के भ्रमों में मत भूलो। उस पुर (काशी) के सब धर्मों को मुझसे सुनिये।

इक यज्ञ यजैं तपसानि करैं।
इक श्री हरि श्री हरि नाम ररैं ॥
इक वेद विचारनि चित्त हरैं।
इक न्हान विधाननि पाप तरैं ॥२२॥

काशी में कोई यज्ञ करता है और कोई तपस्या। कोई केवल "श्री हरि श्री हरि" ही रटा करता है। कोई केवल वेदों पर विचार करके ही चित्तों को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। कोई केवल स्नान के विधानों द्वारा ही पापों का विनाश करता है।

इक नीर अहारनि वायु धरैं।
इक साधि समाधि न आधि हरैं ॥
इक शुद्ध सदा भगवंत भये।
जगजीवन मुक्त शरीर सये ॥२३॥

काशी में कुछ लोग तो केवल जल का ही आहार करते हैं और कुछ का तो केवल वायु ही आधार है। कुछ लोग समाधि धारण कर अनेक

आदि व्याधियों का विनाश करते हैं। उसमें कुछ तो सदैव के लिए इस सांसारिक जीवन से मुक्त होकर भगवान का ही शुद्ध रूप हो गए।

सुन्दरी छन्द–सुंदरि की यह बात सुनी जब।
रोष कर्यो कलिनाथ कछू तब॥
जानत नाहि न मोबल तू शठ।
मैं जग वश्य करौं हठ ही हठ॥

रानी की उपरोक्त बात सुनकर महामोह क्रोधित हो गया। उसने कहा कि हे रानी ! तू मेरी शक्ति को नहीं जानती। मैंने सम्पूर्ण संसार का अपने हठ के कारण ही वश में कर लिया है।

इति श्री विज्ञानगीतायाँ चिदानंदमग्नायाँ मिथ्या दृष्टि महामोह मंत्रिवर्णनं नाम पंचम प्रभावः ॥५॥

—:००:—

षष्ठ प्रभाव

दोहा—छठे माँझ तीरथ नदी, महामोह दल भाउ।
गंगा शिव वाराणशी, मणि कर्णिका प्रभाउ ॥१॥

छठे प्रभाव में तीर्थ, नदी और महामोह की सेना (दल) के भावों का वर्णन है। गंगाजी, शिवजी, वाराणशी और मणि कर्णिका घाट के महात्म्य का भी वर्णन है।

राजोवाच

दोहा—मैं जितने तीरथ लए, तितने कहौं बखानि।
त्यों लैहौं वाराणशी सुनु, सुंदरि सुखदानि ॥२॥

महामोह ने रानी मिथ्या को सम्बोधित करके कहा कि हे सुन्दरी !

मैंने जितने तीर्थों को लिया है उनको कहूँगा और उसी प्रकार वाराणशी को भी ले लूंगा ।

मातापुर मायापुरी महाकाल अघहर्ण ।
मलिका अर्ज्जुन मैं लियो मिश्र कुमहि गोकर्ण ॥३॥

मातापुर और मायापुरी को जीता जो कि बड़े-बड़े पापों का भी विनाश करने वाले हैं। मलिका अर्ज्जुन और मिश्र कुमहि गोकर्ण को भी जीता ।

महिटंतरु महि केशरी चडी सुर केदार ।
कारिनूकू नख वश करयो कुरुपोत कपदु अपार ॥४॥

महिटतरु, महि केशरी, चंडीसुर केदार, कारिननूकूख, कुरुक्षेत्र और कपदु को भी वश में किया ।

काहिल कोलापुर लयो, कालिंजर पलु एक ।
काँवरु कन्यनिकी पुरी, कार्तिकेय करिटेक ॥५॥

काहिल, कोल्हापुर और कालिंजर को तो एक ही पल में जीत लिया । काँवरू, कन्यनिकी, कार्तिकेय को भी वश में कर लिया ।

गया गयापुर गोमती गोदावरी विशेषि ।
विश्वनाथ अरु विश्व जिति, ब्रह्मावर्तहि लेख ॥६॥

गया, गोमती, गोदावरी, विश्वनाथ, विश्वजिति और ब्रह्मावर्त को भी वश में कर लिया ।

विरूपाक्ष त्र्यम्बक लयों कुशावर्त्त अनयाश ।
जयन नृसिंह पुरी लई, नागेश्वरी प्रकाश ॥७॥

विरुपाक्ष, त्र्यम्वक को जीता और कुशावर्त को बिना किसी प्रयास के ही जीत लिया । जयन, नृसिंहपुर और नागेश्वरी को भी जीत लिया ।

अवध पुरी पुर योगिनी, जालंधर सुनबाल ।
मान सरोवर मानिनी जगन्नाथ सविशाल ॥८॥

हे रानी ! अवधुपुरी, योगिनीपुर, जालंधर, मानसरोवर, जगन्नाथ को भी जीत लिया।

बद्रोवर द्वारावती, अमरावती प्रमान ।
जम्बूकाश्रम मैं लयो तब कुछ नहिं सुजान ॥६॥

बद्रीनाथ, द्वारावती, अमरावती, जम्बूकाश्रम को भी जीत लिया फिर भी हे रानी ! तेरे लिए कुछ भी नहीं है।

सोमनाथ त्रिरंत हुँ आल नाथ एकंग ।
हरिक्षेत्र नैमिष सदा, अंशतीशु चित्रंग ॥१०॥

सोमनाथ, त्रिरंत, आलनाथ, एकंग, हरिक्षेत्र, नैमिषारण्य, अंशतीशु और चित्रंग को भी जीत लिया।

प्रगट प्रभासु सुरेनुका, हर्म्य जापु उज्जैनि ।
शंकर पूर्रान पुष्करु अरु प्रयाग मृगनैनि ॥११॥

प्रभासु, सुरेनुका, हर्म्यजापु, उज्जैन, पुष्कर और प्रयाग को भी हे मृगनैनी ! जीत लिया।

वृन्दावन मथुरा लई कान्तिका कहँ जीति ।
को बपुरी वाराणशी, जाकी मानति भीति ॥१२॥

वृन्दाबन, मथुरा और कान्तिका को भी जीत लिया बेचारी वाराणशी का क्या डर मानती है।

करतोया चर्म्मानला, चर्मन्वती सुनि चारु ।
वप्रद्वन्त मंदाकिनी, विदिशा कृष्ण चारु ॥१३॥

चर्म्मानला, चर्मन्वती, वप्रद्वन्त, दिविशा, कृष्णा सुन्दर नदियाँ हैं।

चित्रोत्पला पिशाचिका, बषचा बध्या जानि ।
तपसा सेनी मंजुला, शुक्ति मती उर आनि ॥१४॥

चित्रोत्पला, पिशाचिका, बषचा, बध्या, तपसा, सेनी, मंजुला, शुक्तिमती नदियाँ हैं।

लूती तापी अंगुली अभया हिरन दशान।
लिखि धावती सुबाहिनी बिमला बेना जान ॥१५॥

लूती, तापी अंगुली, अभया. हिरन, लिखिधावती, सुबाहिनी, बम बेना नदियाँ हैं।

उत्पलावती इच्छुला, भमरथी शुभचारु।
वैतरणी अरु शुक्तिमा, बैलासिनी निहारु ॥१६॥

उत्पलावती, इच्छुला, भमरथी, वैतरणी, शुक्तिमा, बैलासिनी नदियाँ हैं।

मंदवाहिनी मदंगा कोवरीहि बखानि।
त्रिदिबाता प्रपन्निका, कुमुद वतीहि सुमानु ॥१७॥

मंदगति से बहने वाली मंदगा कावेरी, त्रिदिबात प्रपन्निका, कुसुदवती नदियाँ हैं।

कृतमाला कालांगुली बंश करारि विकाहि।
महेन्द्राल तपती सर्वशा पुन्या कोचित चाहि ॥१८॥

कृतमाला, कालांगुली, करारिविका, महेन्द्राल, तपती. सर्वशा पुन्या नदियां चित्त को भली लगती हैं।

भुजंग प्रयात छन्द—शिवाधूत पापा शतद्रू विपासा।
वितस्ता पयस्वी सदा कर्म नासा॥
गणी गण्डकी कौशिकी चन्द्र भ्राता।
बड़ी सिंधु ऐरावती पारिजाता ॥१९॥

शिवाधूत, पापा, शतद्रू, विपासा, वितस्ता, पयस्वी, कर्मनासा, गणी, गण्डकी, कौशिकी, चन्द्रभ्राता, बड़ी सिंधु, ऐरावती, पारिजाता नदियां हैं।

महो सिंधु गोदावरी गोमती सी।
इलाबाहु दापामणि देवकी सी॥

कुमारी कृपा पाप पुंजै नसावै ।
कलौ वेत्रवर्ती सुगंगा कहावै ॥२०॥

मही सिंधु, गोदावरी गोमती के समान हैं। इलाबाहु, दापा-मणि देवकी के समान है। कुमारी कृपा पाप के ढेर के ढेर को नष्ट कर देती है। कलावेत्रवर्ती गंगा कही जाती है।

नराच छंद—अशेष शर्मदा विशेष जीति नर्मदा लई।
जग प्रभास्म कीशुना कृतांत सोदरी जई॥
सरस्वती पतिव्रता चिन्हा उजोर आपने।
लई जुजन्हु एक हों जुरू अँचैसु को गने॥२१॥

अशेष शर्मदा तो नर्मदा से भी बढ़कर हो गई है। प्रभास (तीर्थ स्थान) से कीशुना और कृतान्त सोदरी निकली हैं। सरस्वती, चिन्हा उजोर, जुजन्हु में आकर अनेक छोटी-छोटी नदियां मिली हैं, उनको कौन गने।

दोहा—पावन सरिता सबलई, भरत खण्ड की बाम।
औरो नदी अपार को, वरणौ तिनके नाम॥२२॥

भारत खण्ड की समस्त पवित्र नदियों को गिना दिया है और भी अनेक नदियाँ हैं उनके भी नाम गिना दिए हैं।

तोरक छन्द—बहुदान अनाथिनि दे जु डरै।
द्विज गाइनि के दिन पांइ परै॥
पर नारि विलोकि हिये हहरै।
कहिमोसों क्यो दीन विवेकु लरै॥२३॥

अनेक अनाथों को जो बहुत से दान देता है और गाय ब्राह्मण के नित्यप्रति पैरों पर पड़ता है किन्तु वे सभी दूसरों की नारियों को देख कर अट्टहास करते हैं। ऐसी अवस्था में विवेक मुझसे क्या लड़ेगा?

दोहा—मेरे कुल के सर्वदा प्रोहित हैं पाखण्ड।
जाको चाहत सर्वदा, इहि सिगरे ब्रह्मण्ड॥२४॥

मेरे कुल का पुरोहित पाखण्ड है, जिसको यह ब्रह्मण्ड सदैव चाहा करता है अर्थात पाखण्ड सभी को प्रिय है।

मधु छन्द—नित्य तपीनि जपीनि जुभावै।
जापक पूजक सो मनुलावै ॥
तंत्रनि मंत्रनि के उर सोहै।
जोधनि बोधनि के मन मोहै ॥२५॥

नित्यप्रति तपस्वियों तथा जप करने वालों को वह अच्छा लगता है और पूजा करने वाले उसमें (पाषण्ड) रुचि रखते हैं। तंत्र और मंत्र के तो उर में ही बसा रहता है। योद्धा और विद्वानों के मन को तो आकर्षित ही करता है।

शान्तनि रातनि लै उरधारै।
भागि चलै हरि भक्त बिचारै ॥
जाहि उरैं रसभाव शभानो।
को यह एकु विवेकु अयानो ॥२६॥

शान्ति के मार्गों को हृदय में धारण करता है। बेचारे हरिभक्ति तो उसके सामने से भाग खड़े होते हैं। आवश्यकता इतनी ही है कि वह (पाषण्ड) अपने भावों को जागृत मात्र कर दे। ऐसा होने पर बेचारा विवेक क्या कर सकता है? अर्थात उसकी कुछ भी नहीं चल सकती है।

दे दुख रोग बड़ो सुत जाको।
बंदि परे सिगरे जग ताको ॥
आनँद रूप विरूप करे हैं।
चित्त अनेक विवेक टरे हैं ॥ २७ ॥

दुख और रोग जिसका बड़ा पुत्र है, जिनकी वन्दना सारा जग करता है। उसने आनन्द के रूप को ही विकृत कर दिया है। फलस्वरूप लोगों के हृदय में उत्पन्न होने वाला विवेक नष्ट हो गया है।

बंधु विरोधु बड़ो मम मंत्री।
वश्य करै सिगरेजन यंत्री ॥
वानर वालि वली जिहिं मारयो।
रावण को सिगरो कुल जारयो ॥ २८ ॥

मेरा सबसे बड़ा मंत्री बंधु-विरोध है, जिसने सारे संसार को अपने वश में कर लिया है, जिसने बालि वानर को मार डाला। रावण के सम्पूर्ण वंश का विनाश कर दिया।

प्रेम डरै हिय मैं सुनि जाको।
एक विवेक कहा रिपु ताको।
वर्त्तत झूठ प्रधान हमारे।
लोक चतुर्दश जाकहँ हारे ॥

जिसे सुनकर प्रेम भी अपने हृदय में डरता है। यदि एक शत्रु विवेक रहा भी तो उसका क्या कर सकता है। हमारा प्रधान झूठ है, जिससे चारों दिशाओं के लोग पराजित हो चुके हैं।

जाइ जहाँ तहाँ देश नशावै।
नित्य नरेशनि भीख मगावै ॥
सत्य डराव हिए अति भारो।
को बपुरा सुविवेक विचारो ॥ ३० ॥

जिस देश में भी चला जाता है उसी का विनाश कर देता है। राजाओं को नित्य ही भीख मंगाता रहता है। सत्य के हृदय में जिसने भय पैदा कर दिया है। यह सब होने पर बेचारा विवेक क्या कर सकता है? अर्थात् वह कुछ नहीं कर सकता है।

क्रोध बड़ो दलपत्ति है मेरे।
जो जिय मांझ वसै सब केरे ॥
अस्त्र धर अपमान हमारे।
देवनिके पति रंक कै डारै ॥ ३१ ॥

क्रोध में मेरा सबसे बड़ा दलपती है जो सभी के हृदयों में वास करता है । अपमान मेरे अस्त्र हैं जो कि देवों के स्वामी को भी रंक कर डालता है ।

दोहा—अग्रेसर कलि कहत है, अपने चित्त विचार ।
दुरद विनोदन को जहाँ है केहरि अनुहार ॥ ३२ ॥

कलि का अग्रेसर अपने चित्त में विचार कर कहता हैं कि जहाँ पर लोग दुरद के साथ क्रीड़ा करते हैं वहां पर लोग केहरि का अनुकरण करेंगे अर्थात नहीं ।

मधुछंद—राखत लोभ भडाँर भरेई ।
जौ लगि काज कहा न करेई ॥
मातु पिता सुत सोदर छोडै ।
कौन पैशात्रुन अंचल ओडै ॥ ३३ ॥

जहां पर लोग लोभ को अपने भंडार में भरकर रखते हैं वहां पर कोई काम कैसे हो सकता है । माता-पिता भाई को भी छोड़ देते हैं । फिर वहां पर शत्रु अपना अंचल क्यों न पसारेगा अर्थात पसारेगा ही ।

शोक दरिद्र अहंकृत देखो ।
आलस रोग भले भर लेखो ॥
है भ्रम भेद वशीठ सयाने ।
प्राकृत काम न भेद बखाने ॥ ३४ ॥

शोक, दरिद्र, अहंकार, आलस्य, रोग आदि योद्धाओं को देखो । भ्रम भेद चतुर वसीठ है, जो कि प्राकृत काम में कोई भेद नहीं करता है ।

काम महा इक सोदर मेरे ।
युवतीनि जीति करयो जग चेरे ॥
या जग में जन रंगन रांचे ।
गोविन्द गोपिन के सँग नाचे ॥ ३५ ॥

हम स्त्री जाति की हैं। हमारी बुद्धि मूढ़ ही सही। इसीलिये बात खूब बनाकर कही है। हे प्रिय ! मंत्रणा मंत्रियों से करिये। सुख में जीव को किया जाय ?

राजोवाच

कहु मोसहुं तोसहुँ अंतर नाहीं।
कहि मंत्र दुयो किहि बूझन जाहीं॥
हितकी हितसों दुख देन कहे जो।
यश सों मिलि कै सब काज नसे तो॥४३॥

महामोह ने कहा कि हे रानी ! तेरे और मेरे में कुछ भी अन्तर नहीं है। मंत्रणा मैं और किससे करने के लिए जाऊँ। हित की बात कहने के कारण तुमने दुख देने के लिए कहा और यश के वशीभूत होकर सारे कार्य ही नष्ट कर दिये।

रानी

सरस्वती छन्द—गंगा नहीं नदी कहैं निज आदि ब्रह्म अरूप।
संसार तारन को रच्यो अवतार है द्रव्य रूप॥
विद्या बिना तपसा बिना बिनु विष्णु भक्ति विधान
ब्रह्माण्डभेदत ब्रह्मघातक पातकी इक न्हान॥४४॥

रानी ने गंगा के महात्म्य पर प्रकाश डाला है। कुछ निर्गुणवादियों का कहना है कि गंगा एक साधारण नदी है, किन्तु संसार को तारने के लिए ही गंगा जी ने द्रव रूप धारण किया है। बिना तपस्या के विद्या की प्राप्ति असम्भव है। विष्णु की भक्ति भी उनके साकार रूप के प्रभाव में असम्भव है। उच्च से उच्च ब्रह्म-स्थिति को प्राप्त करने वाले और निकृष्ट से निकृष्ट ब्राह्मण हत्या करने वाले पातकी इस गंगा में मुक्ति हेतु स्नान करते हैं।

राजोवाच

मधु छन्द—वामन को चरणोदक गंगा।
निर्गुण होत क्यों सागर संगा॥

चित्त विचारि सुलोचनि भाखो ।
द्वै गज गामिनि पर्वत नाखो ॥४५॥

गंगा वामन का चरणामृत मात्र है। यदि ऐसा है तो वह सागर में मिलने पर निगु ण (अदृश्य) क्यों हो जाती है। हे सुन्दर नेत्रों वाली ! अपने चित विचार कर कहो और फिर हे गजगामिनी ! ऊँची स्थितियों पर विचार करना ।

दोहा—जन्हु अँचै करि काढ़ियो, बाहिर जंघा फारि ।
क्यों अपवित्र न मानियों, मुनि गणयोंपै बारि ॥ ६॥

जान्ही का आचमन किया और जंघा को फाड़ कर तो उसे बाहर निकाला फिर भी मुनियों ने सरस्वती को अपवित्र नहीं माना ।

रानी

मधु—वामन के पद को पिय पानी ।
जो तुम भगीरथी भवमानी ॥
पाइ जहां बलिराज पखारे ।
ते जल क्यों न त्रिलोक सिधारे ॥४७॥

हे प्रिय ! जिस जल को तुम भागीरथ का मानते हो, वह वामन के पद का चरणोदक है। यदि पानी, पानी में कोई अन्तर नहीं है तो बलि राजा ने जिस जल से अपने पैर धोये थे, वह त्रिलोक क्यों नहीं पहुँच गया ।

वामन को चरणोदकै ऐसो ।
माधव माधव वतनु कैसो ॥
ताते सबै जग झूठहि जानो ।
साँचिसदा शिव गंगहि मानो ॥४४

वामन के चरणोंदक का अपना प्रभाव ही विशिष्ट है। माधव और उनके स्वरूपों में वर्तन कैसा ? इसी कारण से संसार सारा असार है। सदैव सत्य शिव और गंगा को ही मानो ।

बृहन्नारदीद पुराणे—यथा श्लोक ।
तस्माच्छृणुध्वंविप्रेन्द्रा गंगाया महिमोत्तमा ।
ब्रह्म विष्णु शिवैश्चापि पारं गन्तुं न शक्यते ॥४९॥

गगा में सभी प्रकार के जीवन में आये हुए अन्धकारों को विनाश करने की शक्ति है । ब्रह्मा, विष्णु, और महेश में मुक्ति देने का सामर्थ्य है, इसमें किसी प्रकार की शंका नहीं है ।

दोहा—इक विवेक सतसंग जहँ, अरुगंग तट बासु ।
सपनेहूँ पिय होइ नहिं, तुम पे तो ताको नासु ॥५०॥

हे प्रिय ! यदि विवेक का सतसंग हो और गंगा तट पर कोई वास करता हो, तो स्वप्न में भी तुम उसका नाश नहीं कर सकते हो ।

मधु—रुद्र समुद्र सदा तपसा के ।
देव अदेव सबै जन जाके ॥
इन्द्रहु की प्रभुता हरि लेहीं ।
चौदहलोक पलीक में देहीं ॥ ५१ ॥

शंकर जी सदा तपस्या में ही लीन रहते हैं । देव और अदेव सभी लोग उनके हैं । उनमें इन्द्र की प्रभुता को हर लेने की शक्ति और चौदहो भुवन देने का उनमें सामर्थ्य भी है ।

रूपमाला छंद-बहुसिद्धि शुद्ध समेत सेवत रोमरोम प्रबोध ।
पल एक मध्य अनन्त केशव फोरिडारहिं क्रोध ॥
छिन्न[1]की समाधि विकल्प[2]कल्प[3] अनल्प[4] होतवितीत ।
इहि भाँति न्यो बहुधा पितामह विष्णु गावत गीत ॥२५॥

१ खण्डित २ चिन्तन ३ समय ४ अधिक ।

अनेक सिद्धियों समेत रोम रोम से प्रबोध की सेवा करते हैं । एक पल में क्रोध को नष्ट करने का उनमें सामर्थ्य है । खण्डित समाधि के चिन्तन ही में उनका अधिकाधिक समय व्यतीत होता है । इस प्रकार से अधिकतर पितामह विष्णु गीत गाया करते हैं ।

**दोहा—तिनके शरण विवेक है, कैसे जीतहु कन्त ।
तन जरि जैहौ काम ज्यों तब समुझौगे अंत ॥ ५३ ॥**

हे कन्त ! ऐसे व्यक्ति की शरण में विवेक है। उनसे तुम कैसे जीतोगे। जब काम की भांति तुम भी जल जाओगे—तब सब समझ में आयेगा।

**सिगेर तीरथ सब पुरी, जितने मुनिगण देव।
सब सेवत वाराणशी अपने अपने भेव ॥ ५४ ॥**

सारे तीर्थ, पुरियां, मुनिगण, देव सभी अपने अपने भेष में वाराणशी की सेवा करते हैं।

**सरस्वती छन्द—वाराणशी अरु विन्दु माधव विश्वनाथ बाखानु ।
भागीरथी मणिकर्णिका यह दिव्य पंचकु जानु ॥
वैकुंठ भूतल मध्य अद्भुत भांति नित्य प्रकाश ।
संसार नशाहि करत हैं तिनको न कबहूँ नाश ॥५५॥**

वाराणशी, विन्दु माधव, विश्वनाथ, भागीरथी, मणिकर्णिका यह पांच दिव्य विभूतियां इस भूतल पर आकर अद्भुत भांति से नित्य ही प्रकाश करते है जिनमें संसार को नाश का सामर्थ्य है, उनका कभी भी नाश नहीं हो सकता है।

राजोवाच

**दोहा—कहि देवी मणिकर्णिका, नाम भयो केहि भेव ।
काशी मैं केहि देवता, प्रगट करी केहि देव ॥ ५६ ॥**

महामोह ने अपनी मिथ्या रानी से फिर पूछा कि हे देवी। मणिकर्णिका का क्या भेद है ? किस देव ने इसे काशी में प्रकट किया है।

रानी उवाच

**रूपमाला छन्द–वाराणशी मैं विष्णु एक समै कर्यो तप आनि ।
जैसो कियो अत्युग्र सो हमपै न जात बखानि ॥**

तिनके तपोबल शंभु को शर कंपियो भुवपाल।
भूमिगिरि प्रियकर्ण ते मणिकर्णिका तिहिकाल॥५७॥

एक बार विष्णु ने वाराणशी में आकर घोर तपस्या की। वह तपस्या इतनी उग्र थी कि उसे कहा नहीं जा सकता। विष्णु के तपोबल से शंभु जी का शिर कांप उठा। परिणाम स्वरूप शभु ज. के कान से मणिकर्णिका भूमि पर आकर गिर पड़ी।

चामर छन्द—माँगिये महानुभाव चित्तवृत्ति मैं लही।
शंभु जू प्रसन्न ह्वै सुवात विष्णु सों कही॥

शंभु जी अत्यन्त प्रसन्न होकर विष्णु जी से बोले कि मैं अत्यधिक प्रसन्न हूँ। अब जो कुछ भी तुम्हें मांगना हो मांगो।

श्री विष्णुउवाच

राजदेहु जू सुमोंहि लोक लोको अबै।
करो अजेय मोहि सर्व भांति शक्ति दे सबै॥ ५८॥

सभी लोक लोकों का राज्य मुझे अभी दे दो। सब प्रकार की शक्ति देकर मुझे अजेय कर दो।

दोहा—अंतरजमी होंउ हों, लक्ष्मी को पति आशु।
एवमस्तु हर हँसि कह्यो, पूरण होइ प्रकाशु॥ ५९॥

अन्तर्यामी मैं हो जाऊँ और लक्ष्मी के पति होने का सौभाग्य मिले। शंभु जी ने हँसकर कह दिया कि एवमस्तु।

खोदि लई मणिकर्णिका, भूमि चक्र की घोर।
सोथल भरयो प्रस्वेद जल, भयो हरन अघघोर॥ ६०॥

मणिकर्णिका ने चक्र के आकार की भूमि खोद ली। वह स्थल प्रस्वेद जल से भर गया जो कि सभी पापों का विनाश करने वाला है।

तीरथ में तीरथ भयो, तादिन ते तेहि ठौर।
नाम भयो मणिकर्णिका, देई सबैं सुख गौर॥६१॥

उस दिन से उस स्थान पर तीर्थ में भी तीर्थ हो गया। सभी को सुख सम्पन्नता प्रदानकर उसका नाम मणिकर्णिका हो गया।

तारक—वरणे अपने सिगरे तुम योधा।
उनके हम पै सुनिये बुधि बोधा॥
जब ही पिय वस्तु विचारहिं देखो।
सिगरो दल राज को होइ अलेखो॥६२॥

हे प्रिय! तुमने जो अपने अनेक योद्धाओं का मुझसे वर्णन किया है। उनकी बुद्धि और ज्ञान के सम्बन्ध में भी मुझसे सुन लीजिये। हे प्रिय! जिस समय भी विचार कर देखोगे, उस समय राज्य का सारा दल अदृश्य ही हो जायगा।

तुम भूले जे द्विज दोष भरोसे।
जननी न कहूँ सुत केवल कोसे॥
द्विज दोष जहाँ सुसमूल नशेजू।
द्विज दोष बिना न कहूँ बिनशेजू॥६३॥

तुम्हारो इस विस्मृति का कारण केवल द्विज द्वेष है। क्या मां का कोई स्थान नहीं है? क्या सुत का कर्म केवल कोसना मात्र है? जहां कहीं भी द्विज-दोष होता है, वहां पर समूल बिनाश ही होता है। द्विज-दोष के अभाव में कभी भी विनाश नहीं होता है।

अपनो थल ज्यों प्रभु पावक दाहै।
अनु संगति कारक हठि चाहै॥
द्विज दोष भये पिय वंश तुम्हारे।
बल कौन विवेक चमूहि विदारे॥६४॥

अपने स्थान का स्वतः अग्नि विनाश करती है। असंगति के कारण सब कार्य हठ-पूर्वक करता है, क्योंकि तुम्हारे वंश को द्विज दोष लग गया है। किस शक्ति से आप विवेक की सेना को पराजित करेंगे।

दोहा—जोही शोक विरोध सब, कलह कलुष उर आनि।
स्वामि दोष दै आदि सब, दोष एकही बानि ॥६५॥

जिस समय शोक, बिरोध, कलह, कलुष हृदय में उत्पन्न होता है, उस समय सभी स्वामि दोष हो कहते हैं। यद्यपि यह सब एक ही दोष के अन्तर्गत आते हैं।

राजोवाच

हरि लीला छन्द—नारिन को यह बूझत बात जाइ।
सो अज्ञान फल खाइ अघाइ ॥
बात सुने मरन की अति ही डेराइ।
सब सांचे भर मरि स्वर्ग जाइ ॥६६॥

नारियों से इस प्रकार जो बातें पूछे वह अज्ञानी व्यक्ति अपने द्वारा की गयी भूल का स्वतः भक्षण करे। उसकी बातें सुनकर स्वतः मरने के भय से भयभीत हो जाय। सभी सत्यवादी मरते हैं और वे सीधे स्वर्ग ही जाते हैं।

सवैया—लोक विलोक मैं जाग विराग में पाठ मैं आलस बसाऊँ।
एक विवेक कहा वपुरा गुण ज्ञान गुरूनि के गर्व्व घटाऊँ ॥
हों अपने विविचार विचार अचार विचार अपार बहाऊँ।
धीरज धूरि मिलै कहि केशव धर्म के धामनि धूरि जमाऊँ ॥६७॥

रानी की बातों को सुनकर महामोह को क्रोध आ गया और उसने प्रतिज्ञा की कि योग और वैराग्य के संसार में मैं आलस बसा दूंगा। एक बेचारा विवेक क्या करेगा ? मैं गुण और ज्ञान के गुरू का भी गर्व घटा दूंगा। मेरा धैर्य धूल में भले ही मिल जाय। किन्तु मैं धर्म के घर में भी धूलि जमा दूँगा।

दोहा—करी प्रतिज्ञा राज जब, मन क्रम वचन प्रमान।
मंत्र बतावति तरुनि तब, दुख सुख जानि समान ॥६८॥

राजा ने जब मनसा, वाचा, कर्मणा प्रतिज्ञा की, तब रानी ने कहा कि दुख-सुख को समान जानो।

रानी

तारक छन्द—सुनिये त्रिय को पिय के दुखते दुख।
सब जानत हैं पिय के सुख ते सुख॥
निहिते हित बात कहो सु करो अब।
हठ छाड़हु जू मनके मनते सब॥६९॥

अभी तक रानी, मिथ्या दृष्टि का महामोह से विरोध सा रहा और वह विपक्ष का समर्थन सा करती रही, पर आगे उसने अपना पैतरा बदल दिया। देखिए हे प्रिय! स्त्री को प्रियतम के दुख से दुख और उसके सुख से सुख होता है, यह सभी जानते हैं। इस कारण से अब हित की बात कहती हूँ उसे करने की कृपा करो। हे प्रिय! अब अपने मन के सभी हठों को छोड़ दो।

दोहा—ज्यों तुम्हीं सारत सबै, त्यों वै श्रद्धहि लीन।
जो उनको श्रद्धा तजै, तौ केशव बल हीन॥७०॥

जिस प्रकार से तुम सब कुछ करते हो, उसी प्रकार वे सदैव श्रद्धा में में लीन रहते हैं। यदि उनको श्रद्धा छोड़ देगी तो वे अवश्य ही शक्तिहीन हो जायँगे।

दोहा—श्रद्धा छल बल राज तुम, धरि पाखंडहि लेहु।
तौ उनको साधन विटप, फल न फलहि करि नेहु॥७१॥

पाखण्ड को देकर तुम किसी प्रकार श्रद्धा को ले लो तो उनके साधना के वृक्ष में कभी भी फल नहीं लगेंगे अर्थात् उनकी साधना ही सारी व्यर्थ हो जायगी।

राजोवाच

गीतिका छंद—त्रिय साधु साधु भली कही यह बात मोसन आजु।
तुव तात मोंहि दियो उतो तिहुँ लोक को जब राजु॥

तब ठौर ठौर करी सबै बहु भांति दासनि भक्ति।
सुनि दैन मै तिनको कही जगदीश की सब शक्ति॥७२॥

मिथ्या दृष्टि का लाभ यहीं पर सार्थक हो जाता है और महामोह के मन की बात भी यहीं पर निकल आती है।

हे रानी ! आज तूने बहुत ठीक कहा है। तू साधुवाद की पात्री है। जब तेरे पिता ने मुझे तीनों लोकों का राज्य दिया था तब स्थान-स्थान पर दासों ने मेरी भक्ति की थी। उस समय मैंने उन सभी को जगदीश की सम्पूर्ण शक्ति को देने के लिये कहा था।

शुचि दंभ को लखि लोभ को निधि रोग को गनि वृद्धि।
गुनि गर्व को गरिमा दई कलह दई सब सिद्धि॥
विभिचार को रुचि नित्य ही अपलोक को दइ प्रीति।
महिमा दई महामोह को सब ब्रह्मदोषनि जीति॥७६॥

दंभ को पवित्रता दी और लोभ को देखकर रोगों की वृद्धि की। गर्व की गरिमा प्रदान की और कलह को सिद्धि दी। व्याभिचार को नित्यप्रति की रुचि प्रदान की और अपलोक को प्रीति दे दी। सम्पूर्ण ब्रह्मदोषों को जीतकर महामोह को महिमा दी।

दोहा—सुनि सुन्दरी पाषंड को श्रद्धा दैहों आजु।
तब विवेक को जीतिकै, काशी करिहौं राजु॥ ७४ ॥

हे सुन्दरी ! पाखण्ड को आज श्रद्धा दूंगा। और फिर विवेक को जीत कर काशी में राज्य करूँगा।

इति श्री विज्ञानगीतायां चिदानन्दमग्नायाँ मिथ्यादृष्टि महामोह सम्वादवर्णनं नाम षष्ट प्रभावः॥

———

सप्तम प्रभाव

दोहा—चावक अरु शिष्य को, सातैं मैं सम्बाद।
विनती सब कलिकाल की, उपजै सुनत विषाद ॥ १ ॥

चार्वक और शिष्य का सातवें प्रभाव में सम्वाद हैं। इसमें कलियुग की सब प्रकार से वन्दना की गई है, जिसके सुनने से विषाद उत्पन्न होता है।

कह्यो भैरवी बोलिकै, महामोह सुख पाइ।
श्रद्धा गहि पाखण्ड को छलवल दीजै आइ ॥ २ ॥

महामोह अत्यधिक सुखी होकर बोला कि छलबल से पाखण्ड को श्रद्धा दे दी जाय।

महामोह आये सभा, आसत सङ्ग के साथ।
चार्वक बैठे जहां, करत शिष्य सों गाथ ॥ ३ ॥

महामोह ने असत के साथ उस सभा में प्रवेश किया जिसमें चार्वक शिष्य के साथ वार्तालाप कर रहे थे।

चार्वक उवाच

दोधक छन्द—देखतु है कहु शिष्य सयाने।
भूलत है मुनिवेद पयाने ॥
लाज बई जग खेत जमै जो।
होम करैं परलोक फलै तो ॥ ४ ॥

हे चतुर शिष्य! क्या तूने मुनियों का वेद को भूलते हुए देखा है? लज्जा को संसार रूपी खेत में ब दिया है। जब वह जम जायगी, तब सारे परलोक के फल को उसी में होम कर दूंगा।

शिव उवाच

साँचो जो है जग खैबोअरु पीबो।
तौ यह झूठ तपोवल पैबो ॥

मूढ़ दुराश के मोदकु खाहीं।
तपसा मिसु देखत नर्कहिं जाहीं ॥ ५ ॥

यदि सम्पूर्ण संसार की सत्यता खाने और पीने में है, तो यह तपबल झूठ ही है। मूर्ख लोग दुराशा को ही प्राप्त करेंगे। तपस्या के बहाने सभी नर्क को जायेंगे।

सवैया

हास विलास विलासिनि सों मिलिलोचन लोल विलोकन रूरे।
भांतिनि भाँतिनि के परिरंभन निर्भय राग विरागनि पूरे ॥
नाग लता दल रंग रंगे अधरामृत पान कहा सुख सूरे।
केशवदास कहा व्रत संयम संपति मांझ विपत्तिन कूरे ॥६॥

हास विलास के बीच में जब नेत्र एक दूसरे से मिलते हैं, तब बहुत ही सुन्दर लगता है। भांति भांति के आलिंगनों में लोग लीन हैं और निभयता के साथ राग विराग में अनुरक्त हैं। नाग लता दल के रङ्ग में रङ्गी हुई है किन्तु अधरों के पान में सुख क्या है ? संपत्ति-विपत्ति और निर्दयता के बीच में व्रत और संयम कैसा ? अर्थात् असंभव है।

दोहा—तीरथ बासी यह कहत, तजत त्रियनके साथ।
कलुषनि मिश्रत विषय सुख, त्यागनीय है नाथ ॥७॥

तीर्थों में वास करने वाले यह कहकर स्त्रियों का साथ छोड़ देते हैं कि बिषय वासना का सुख कलुषित है।

चार्वक उवाच

दोहा—वै सिगरे मतिमूढ़ हैं अमल जलज मणि डारि।
सीपिन के संग्रह करत, केशव राइ निहारि ॥ ७ ॥

ऐसे सभी लोग मूर्ख हैं, क्योंकि वे स्वच्छ मणि को फेंक देते हैं और सीपी को देखकर के उसका संग्रह करते हैं।

दण्डक—माता जिमि पोषति पिता ज्यों प्रतिपाल करै।
प्रभु जिमि शासन करत हेरि हियसो ॥

भैया ज्यों करै सहाइ देत है सखा ज्यों।
सुख गुरुहै सिखावै सिख हेतुजोरि जियसों ॥
दासी ज्यौं टहल करै देवी ज्यौं प्रसन्न ह्वै।
सुधारे परलोक नातो नाहीं काहू वियसों ॥
छके हैं अयान मद छितिके छनक छुद्र औरसों।
सनेह करैं छाँड़ि ऐसी तियसों ॥ ९ ॥

जिस प्रकार से माता पालती है और पिता रक्षा करता है, ईश्वर जिस प्रकार हृदय से शासन करता है, भाई जिस प्रकार सहायता करता है, मित्र जिस प्रकार से सुख देता है, गुरु हृदय से जिस तरह से शिक्षा देता है, दासी जिस भांति सेवा सुश्रुषा करती है, देवी जिस प्रकार से प्रसन्न होकर विना किसी दूसरी इच्छा के परलोक सुधार जाती हैं। अज्ञानी स्त्रियां इस संसार के क्षणिक मद में भूलकर स्नेह करने लगती हैं। यदि कोई ऐसी स्त्री है तो उसे छोड़ देना चाहिये।

दोहा—महामोह तब हँसि गहे, चार्वक के पांइ।
चार्वक आशिष दई, शोभन सुखद सुभाइ ॥ १० ॥

महामोह ने उस समय चार्वक के पैरों को हँसकर स्पर्श कर लिया। चार्वक ने स्वाभाविक और सुखद आशीर्वाद दिया।

चार्वक उवाच

किलियुग करत प्रणाम प्रभु, अवलोको विषहर्ण।
धनते जन सब काल करि, देखत प्रभु को चर्ण ॥ ११ ॥

हे प्रभु! कलियुग प्रणाम करता है। विषहर्ण को तो देखिये। धन से अपने प्रारब्ध को बनाते हैं और प्रभु के चरणों को ओर देखते हैं।

कलियुग उवाच

रूपमाला छन्द—शद्र ज्यों सब रहत है द्विज धर्म कर्म कराल।
नारि जारनि लीन भर्त्तनि छोड़ि के इहि काल ॥

दंभ सों नर करत पूजन न्हान दान विधान।
विष्णु छाड़त शक्ति भूषण पूजनीय प्रमान ॥१२॥

कलियुग का परिचय दिया गया है। इस कलियुग में शूद्र ब्राह्मणों के कठिन कर्मऔर धर्म का पालन करके रहते हैं। स्त्रियां अपनी पति को छोड़कर दूसरी व्यक्तियों में लिप्त हैं। आज व्यक्ति दंभ से पूजा स्नान, दान आदि के विधान करता है। विष्णु की आराधना को छोड़कर वह शक्ति और भूषणों का उपासक हो गया है।

सवैया—ब्राह्मण बेचत वेदनिको सुमलेच्छ महीप की सेव करैं जू।
क्षत्रिय छांड़त है परजा अपराध बिना द्विज वृत्ति हरैं जू॥
छाँड़िदयों क्रय विक्रय वैश्यनि क्षत्रिन ज्यों हथियार धरै जू।
पूजत शूद्र शिला धनु चोरति चित्तमें राजनि को न डरै जू॥२३॥

ब्राह्मण वेदों के बेचते हैं अर्थात् शिक्षा-दान वे अब धन लेकर कर रहे हैं और मलेच्छ राजाओं की सेवा में रत हैं। प्रजा के पालन-पोषण का भार क्षत्री छोड़ रहे हैं और बिना अपराध के ही ब्राह्मणों की वृत्तियों का हरण कर रहे हैं। वैश्यों ने अपने क्रय-विक्रय के व्यापार को छोड़कर क्षत्रियों की भांति अस्त्रों को धारण कर लिया है। शूद्र शिला (मूर्ति) का पूजन करते हैं, धनकी चोरी करते हैं और राजाओं से किसी भी प्रकार भय नहीं खाते हैं।

दोहा—विष्णु भक्ति जगमें करी, यद्यपि विरल प्रचार।
तदपि शान्ति श्रद्धा सखी, तजति न प्रेम प्रकार॥ १४ ॥

यद्यपि विष्णु की भक्ति इस संसार में है, किन्तु उसका इस संसार में प्रचार बहुत ही कम है। शान्ति और श्रद्धा विष्णु भक्ति की सखियां हैं, जो किसी प्रकार भक्ति को छोड़ने के लिये तैयार नहीं हैं।

मोह उवाच

दोहा—श्रद्धा हम पाषण्ड को, दई कलह के तात।
शान्ती बपुरी मरैगी, श्रवण सुनत ही बात॥१५॥

कलह के तात, पाखण्ड को मैंने श्रद्धा दे दी है। इस बात को कान से सुनते ही शान्ति बेचारी मर जावेगी।

कलि उवाच

रूपमाला छन्द—बाजि वारन बाहने सुत सुंदरी सुखदाइ।
क्षेत्र ग्राम पुरीनि सुख धन देश द्वीप बसाइ॥
भूमिलोक विलोकि पावन ब्रह्मलोकहि पाइ।
लोभ होत न ऐ निरन्तर शान्ति होति नराइ॥१६॥

घोड़े और हाथी की सवारी के निमित्त, पुत्र और स्त्रियों में सुख के लिये द्वीप बसाऊँगा। उस देश में धन-धान्य का सुख रहेगा। इस पृथ्वी लोक में ब्रह्म के सारे सुखों को देखूंगा। लोभ के सभी वशीभूत रहेंगे। अतएव शान्ति प्राप्त न हो सकेगी।

मोह उवाच

सवैया-कौन गनै इनि लोकन रीति विलोकि विलोकि जहां जन बोरे।
लाज विशाल लता लपटी तन धीरज सत्य तमालनि तोरे॥
वंचकता अपमान अयान अलाभ भुजंग भयानक तृष्णा।
पाटु बढ़ो कहुँ घाट न केशव क्यों तरि जाइ तरंगिनि तृष्णा॥१७॥

इन लोकों की गणना क्या की जाय जहां पर लोग लोक रीतियों को देख देख कर पागल हो गये हैं। लज्जा रूपी विशाल लता ने सभी को लपेट लिया है। परिणामतः सत्य और धैर्य नष्ट हो गया है। वंचकता, अपमान, अज्ञान, हानि, भयानक सर्प रूपी तृष्णा चारों ओर व्याप्त है। तृष्णा रूपी नदी का पाट बढ़ गया है किन्तु, घाट कहीं नहीं है। फिर तृष्णा रूपी नदी को कोई कैसे पार कर सकेगा?

लोभ उवाच

भूलत है कुल धर्म सबै तबहीं जबहीं वह आनि ग्रसैजू।
केशव वेद पुराणनि कौन सुनै समुझै न त्रसै न हँसैजू॥

देवनि ते नर देवनि ते सुत्रिया बर बार न ज्यों बिलसै जू।
यंत्रन मंत्रन मूरि गनै जग यौवन काम पिशाच बसै जू ॥१८॥

जब सभी लोग अपने कुल के धर्मों को भूलने लगते हैं, तभी तृष्णा आकर लोगों को ग्रस लेती है। वेद और पुराणों को कौन सुने और समझे? क्योंकि न तो किसी का भय और न उपहास का ही डर रह गया है। देवों को छोड़कर व्यक्ति स्त्री में विलास करता है। यंत्र-मंत्र के स्थान पर पिशाच युवक काम ने आकर अपना डेरा डाल लिया है।

दोहा—ताते शान्ती की कथा, कहै सुकिन्नर लोक।
जोर मूढ़ कह गूढ़ है, मरिहै श्रद्धा शोक ॥१६॥

इस कारण से शान्ति की कथा किन्नर लोक में होती है, मूर्ख लोग उसे गूढ़ कहते हैं। किन्तु श्रद्धा तो शोक में ही मर जायगी।

इति श्री विज्ञानगीतायां चिदानंदमग्नायां चार्वक महामोह कलि दंभ मंत्र वर्णनं नाम सप्तम्प्रभावः ॥७॥

अष्टम प्रभाव

दोहा—शान्ती करुणा को कह्यौ, आठे माँझ विषाद।
पाखन्डिह को वर्णिबो, श्रद्धा रहित विवाद ॥१॥

आठवें प्रभाव में करुणा और शान्ति का विषाद है। श्रद्धाच्युत पाखडियों के विवाद का वर्णन करूँगा!

परम्परा सिगरी पुरी, पूरि रही दुखदात।
शान्ती के श्रवणनि परी कैसे हूँ यह बात ॥२॥

दुख देने वाली परम्परा सम्पूर्ण नगर में व्याप्त हो गई, यह बात शान्ति के कानों में किसी प्रकार पड़ी।

गंगा काछनि बरतिहीं, पूजत साधु अपाट ।
पाई कपिला गाइसी, पटु पाखंण्ड चंडार ॥३॥

गंगा जी के किनारे अनेक साधु अनाड़ीपन से पूजन कर रहे थे, वहीं पर कपिला गाय की भांति शान्त; चतुर पाखण्ड को पाया ।

शान्ति उवाच

रूपमाला छन्द—मोविना अन्हाति जेंवति करति नाहिन पान ।
नेकु के विछुरे भटू घाट में न राखति प्रान ॥
चेतिका करुणा रची सब छांडि और उपाइ ।
क्यों जियों जननी विना मरिहूँ मिलै जो आइ ॥४॥

मेरे विना स्नान, भोजन, पान कुछ भी नहीं करती है । मेरे थोड़ा भी अलग रहने पर उसके प्राण निकलने लगते हैं अर्थात् उसका मन नहीं लगता । अन्य उपायों को छोड़कर करुणा ने चिता बनाई । शान्ति ने कहा कि जननी के अभाव में मेरा जीवित रहना संम्भव नहीं ।

नैन नीरनि भरि कहै करुणा सखी यह बात ।
मोहिं जीवत क्यों मरै सुनि मंत्र अब अवदात ॥
योग राग विराग के थल सूर नंदिनि तीर ।
मुनिन आश्रम ठौर ठौर विलोकियै धरि धीर ॥५॥

करुणा सखी नेत्रों में आंसू भर कर बोली कि मेरे जीवित रहते तू क्यों मरेगी ? अब तू मेरी बात सुन । योग, राग, विराग के सारे ही स्थल यमुना के किनारे हैं और स्थान-स्थान पर मुनियों के आश्रम हैं, उन सभी को धैर्य धारण कर देखो ।

करुणा उवाच

दोहा—सपने हूँ पाखण्ड के, श्रद्धा परै न हाथ ।
शान्ति विधी प्रतिकूल में. कहा न सुनियै गाथ ॥ ६ ॥

स्वप्न में भी पाखण्ड के हाथ श्रद्धा न पड़ने पाये । विधि के प्रतिकूल होने पर हे शान्ति । क्या नहीं हो जाता ? अर्थात् सब कुछ हो सकता है ।

रूपमाला छन्द–रघुनाथ की तरुणी हरी दश कंध अंधलवार।
अरु जो दई दुरयोधनै गहि द्रोपदी करतार॥
निज ज्ञासि जो कपटी कै कर त्यों श्रद्धा उपरि जाइ।
सुनियै न कहा विलोकियै बहुकाल जीवन पाइ॥७॥

श्री राम की स्त्री को रावण ने हर लिया और दुर्योधन ने द्रोपदी के चीर को अलग करने की कोशिश की। अपनी समझ में श्रद्धा कपट से ऊपर है। यह बात सुनी हुई नहीं है वरन इसे अपने दीर्घ जीवन में देखा है।

दोहा—ताते पुनिहूँ देखियै, नीके कै अब जाइ।
जहाँ बसत कलि काल अब, पाखण्डनि को राइ॥ ८॥

अब उन स्थानों को अच्छी तरह देखा जाय जहां पर पाखण्डियों का राजा रहता है।

करुणा उवाच

रूपमाला छंद–यह कौन आवत है सखी मल पंक अंकित अंग।
शिर केश लुंचित नग्न हाथ शिषी शिखण्ड सुरंग॥
यह नर्क को कोउ जीव है जिनि याहि देखि डेराहि।
निज जानि यै यह श्रावका अति दुरिते तजि ताहि॥ ९॥

श्रावकाचार्य के स्वरूप का वर्णन करुणा के मुख से केशव ने कराया है। करुणा कहती है कि हे सखी! मल और कीचड़ से लिपटा हुआ यह कौन आ रहा है? शिर के बाल छीले हुये, नग्न और हाथ में मोर के पंख लिये हुये है। ऐसा ज्ञात होता है कि यह कोई नर्क का जीव है, इसे देख कर डरना नहीं चाहिये। यह श्रावकाचार्य है, दूरसे ही इसे छोड़ देना चाहिये।

श्रावकोवाच

दोहा—देह गेह नव द्वार में, दीप समान लसंत।
मुक्तिहु ते अति देत सुख, सेवहु श्रीअरहंत॥ १०॥

केशव का चार्वक अन्य लोगों के चार्वक से भिन्न प्राणी है। केशव का चार्वक अत्यधिक कल्याणकारी है।

देह, गेह और नव द्वारों में द्वीपों के समान शोभा देता है। मुक्ति से भी अधिक सुख देता है। इसलिये श्री अरहंत की सेवा करो।

रूपमाला छन्द–मिष्ट भोजन वीटिका मृगनाभ मैं घन सार।
अङ्ग शुभ्र सुगन्ध संयुत सेव श्री सुकुमार ॥
कन्यका भगिनीबधू मिलि जो रमै दिन राति।
चित्त मलिन न कीजई गुरु पूजियै इहि भाँति ॥११॥

स्वादिष्ट भोजन, पान की बीड़ा, कस्तूरी युत जल और स्वच्छ सुगंधित शरीर से श्री अरहंत की सेवा करो।

श्रावकाचार्य उपदेश देता है कि कन्या, बधू और बहन के साथ राति दिन विलास करो। चित्त को कभी भी मलिन मत होने दो। गुरु की उपासना का यही ढङ्ग है।

करुणा उवाच

नागस्वरूपणी छन्द—तमाल तूल तुङ्ग है।
पिसङ्ग चीर अंग है॥
शचूड़ मुण्ड मुण्डिये।
सखी सुको विलोकियै ॥ १२ ॥

लाल बड़ा तिलक लगा है। केशरिया वस्त्र शरीर पर है। शिर पर लम्बी शिखा है। हे सखी! श्रावका को देखो।

भिक्षुक उवाच

रूपमाला छंद–हम दिव्य दृष्टि विलोकहीं सुख भुक्ति मुक्ति समान।
जग मध्य है यति सिद्धि शुद्ध सुनो सुशिष्य प्रमान॥
कबहूँ न रोकहू भिक्षुकै रमणीनि सो रम मान।
निजचित्त कोमल ईरषा तजि दूरि ताहि सुजान॥

कहि कौन को उपदेशु है सर्वज्ञ सिद्धिहि जानु।
सर्वज्ञ बुद्ध कहा कहै बहु ग्रंथ ग्रंथनि मानु ॥१३॥

श्रावक की भांति बौद्ध भिक्षु भी उसी रङ्ग में रङ्गा हुआ है। उसका कहना है कि वह सभी दिव्य दृष्टि से देखता है और भोग और मुक्ति को समान मानता है। संसार के बीच शुद्धि सिद्धि यति ही है। अतएव भिक्षुक को रमणियों के बीच भोग करने से भी कभी नहीं रोकना चाहिये। अपने कोमल चित्त से ईर्षा को निकाल देना चाहिये। पूर्ण सिद्धि को देने वाला किसका उपदेश है ? सर्वज्ञ किसको कहा जाय ? अनेकानेक ग्रन्थों को क्या मान लिया जाय ?

श्रावक उवाच

अब तोहिं है सर्वज्ञता कछु बातही मँह मूढ़।
हमहुँ है सर्वज्ञता मद दास तो कुल गूढ़ ॥ १४ ॥

तुझे सारी बात का लगभग ज्ञान है, किन्तु अभी कुछ बातों में तू मूर्ख है। मुझे भी सारी बातों का ज्ञान है। मद मेरा दास है, जो कि तेरे कुल का गूढ़ विषय है।

दोहा—छोड़ि शासना बौध की, अरहंतन को मानि।
सुरता छाड़ि पिशाचिता, काहे को करि बानि ॥१५॥

बौद्ध के शासन को छोड़कर अरहंत को तू स्वीकार करले। इस पर भिक्षु ने प्रश्न किया कि सुरत्व को छोड़कर पिशाच कर्म को क्यों धारण किया जाय।

तनमन जीवन जाइलों, लोक विलोक विलास।
ज्यों बाहर के दीप पै, सदन न होत प्रकास ॥१६॥

इस शरीर में जब तक जीवन है तब तक संसार में विलास कर लेना है, क्योंकि बाहर के दीप से ही गृह प्रकाशित होता है। कहने का अर्थ है कि भोग विलास के आधार पर ही प्रगति कर सकेंगे।

नलिनी छंद—लिये नृकपाल नृदेह कराल।
करे नर मुंडनि की उर माल॥
पिये नर श्रोन मिल्यो मदिरासो।
कपालिकु देखिये भीम प्रयासों॥१७॥

हाथ में मनुष्य का शिर लिए विकराल शरीर वाला है। नर मुण्डों की माला बना रक्खी है। मदिरा में मनुष्य के श्रोणित को मिलाकर पान करता है। भीम रूप कायालिक को देखिये।

श्रावक उवाच

दोहा—कपाली कहो विभत्स वपु, कैसे तेरे धर्म।
पूजत हौ किहि देव को, करि करि कैसे कर्म॥१८॥

हे कापालिक ! शरीर को वीभत्स बनाने वाला तेरा कैसा धर्म है ? किस देव की उपासना आप करते हैं ? और उस उपासना के लिये किन मार्गों को अपनाते हो ?

कपाली उवाच

सोरठा—केवल अंग नियोग, देखो हों जगदीश को।
सुनो सयाने लोग, जगते भिन्न अभिन्न है॥१९॥

केवल शरीर पर विभूति लगाकर ही जगदीश का दर्शन किया है। हे चतुर लोग सुनो ! वह (जगदीश) संसार से भिन्न भी हैं और अभिन्न भी।

चंचरी—वेद मिश्रित मांस होमत अग्नि में बहु भांति सों।
शुद्ध ब्रह्म कपाल शोणित को पियो दिन राति सों॥
विप्र बालक जालले बलि देत हों न हिय लजों।
देव सिद्ध प्रसिद्ध कन्यनि सों रमों भव को भजों॥२०॥

वेदमार्गीय कापालिको का बड़ा ही सुन्दर चित्र केशव ने प्रस्तुत किया है। वेदानुमोदित रूप से अनेक प्रकार से अग्नि में मांस का होम करते हैं।

शुद्ध ब्राह्मण के शिर का रात दिन रक्त पान करते हैं। विप्र बालकों की बलि देते हैं, किन्तु अपने हृदय में थोड़ा भी लज्जित नहीं होते हैं। अनेक देवों की कन्याओं के साथ भोग करता हूँ और शिवजी की उपासना करता हूँ।

केशव उवाच

दोहा—शान्ती करुणा भजि चली, कान मूदिकै हाथ।
सन्यासी इक देखियो, शिष्यनि लीने साथ ॥ २१ ॥

शान्ति और करुणा दोनों ही कानों को मूंद करके भाग खड़ी हुईं। इसी अवसर पर एक संन्यासी को शिष्यों के साथ में देखा।

रूपमाला छंद—कोपीन मण्डित दण्डसों नख काँख दीरघ बार।
मालाद्य शोभित हस्त पुस्तक करत वत्तु विचार ॥
संसार को बहुधा विरोध कुचित्त शोधक मानि।
ठाढ़ी भई तहँ शान्ति सो करुणा सखो सुख जानि ॥२२॥

कोपीन धारण किये हुये है, हाथ में दण्ड है और उसके बड़े-बड़े नाखून हैं। माला गले में पड़ी हुई है। हाथ में पुस्तक लिये हुये अनेक विषयों पर विचार करता है। अधिकांशतः वह संसार का विरोध करता है और कुप्रवृत्तियों को शुद्ध करने का आग्रह करता है। वहां पर करुणा और शान्ति सुखी होकर खड़ी हो गईं।

दोहा—इहि विध संयम नियम सों, सेये प्रभु के पाई।
हमहूँ दीजै सिद्धि कछु, शोभन सुखद सुभाई ॥ २३ ॥

अनेक संयम नियम से प्रभु के चरणों की सेवा की और स्वाभाविक सुख देने वाली सिद्धि को मांगा।

संन्यासी उवाच

रूपमाला छन्द—सीखौ सबै मिलि धातु कर्मनि द्रव्य बाढ़तु जाइ।
आकर्षणादि उचट मारण वशीकरण उपाइ ॥

देहों अदृष्ट ति नैन अंजन अग्नि बन्धन नीर।
शिक्षा कहों परकाय मध्य प्रवेश की धरि धीर ।।२४।।

सभी लोग धातु बनाने की क्रिया सीख लो, जिससे द्रव्य बढ़ता ही जायगा आकर्षणों से उचाट और मरने के लिये वशीकरण मत्र सीखो।

संन्यासी के स्वरूप को तो देखिये। वह स्वतः भोगने का अभिमान तो नहीं करता, किन्तु जुटा सब कुछ सकता है। यहां तककि 'अदृष्टतिय' अथवा स्वर्ग की परी भी। उसमें धैर्य धारण करके कैसे प्रवेश किया जाय, इसकी भी शिक्षा दे सकता है।

दोहा—कान मूँदि वह तजि गई, जी धरि दीह विषाद।
शूद्र जहाँ त्रिय वेष धरि, ताको सुनो विवाद ।। २५ ।।

इस पर शान्ति और करुणा कान मूंद कर धैर्य धारण कर दुखी होकर चली गई। एक शूद्र स्त्री का रूप धारण किये हुये है, उसकी कथा सुनिये।

ऋषि उवाच

दोहा—कौन काम कौन धरम कौन सजत काम।
राधा वजूटी भषत मनितपर रति नाम ।।
ज्ञासि तिथिहिं छाँड़ि करत भोजन न अचेत।
जासि न परसाद कननि पूजत हरिहेत ।। २६ ।।

तुम्हारा क्या कर्म, कौन धर्म और क्या काम है ? राधा तो वजूटी कहती है किन्तु उसका ज्ञात नाम रति है।

ज्ञासि तिथि को छोड़करवह अन्य तिथियों में भूल कर भी भोजन नहीं करते। प्रसाद के निमित्त पूजा करते हैं। हरि हेत आराधना करते हैं।

नारी वेष उवाच

दोदा—ज्ञासि तजे परिहरे नर, पावन कहा प्रसाद।
श्याम वंदनिहि भागु हो, लावत छोड़ि विषाद ।। २७ ।।

ज्ञासि को छोड़ने के उपरान्त मनुष्य को क्या मिलता है? श्याम की वंदना सभी विषादों को छोड़कर करती हूँ।

चामर छन्द—कौन वेद मध्य देव श्याम वंदनी कही।
वेद को प्रमाण पूज हों न मानिहों सही ॥
राधिका कुमारि काहि नित्य श्याम वंदही।
तत्र कुण्ड मृत्तिका सुश्याम वंदनी सही ॥ २८ ॥

श्याम की वन्दना करने वाली ने कहा कि कौन सा वेद देवों को मध्य में है। न तो मैं किसी भी वेद का प्रमाण मानूंगी और न पूजूंगी। श्याम नित्य ही राधा कुमारी की वन्दना करते हैं। राधा के उस कुण्ड की मिट्टी की वन्दना मैं करने वाली हूँ।

नारी वेष उवाच

दोहा—जो तू राधा कुण्ड की, माटी मानतु इष्ट।
तौ तू मेरो शिष्य ह्वै, देखे वस्तु अदृष्ट ॥ २६ ॥

यदि तू राधा के कुण्ड की मिट्टी को इष्ट मानती है, तब तू मेरा शिष्य होकर अदृष्ट वस्तुओं को देखो।

शूद्र उवाच

दोहा—पीछे ह्वै हों शिष्य, पहिले सुनो विचार।
कौन हेतुते तू करयो, नारी को शृंगार ॥ ३० ॥

मैं तेरा शिष्य बाद को हूंगा, पहले विचार तो सुनूं। तूने किस कारण नारी का शृंगार किया है?

नारी वेष

तोमर छन्द—जप जाप मंत्र अयज्ञ।
मत में तजे गुणि अज्ञ ॥
बहु पाइ जे जेहि शर्मु।
यह मैं धरयोभषि धर्मु ॥ ३१ ॥

योग, जप, मन्त्र आदि अज्ञानियों के है। मैंने उसे छोड़ दिया। इस वेष धर्म में मुझे अत्यधिक सुख मिलता है। इसीलिये इसे धारण कर रखा है।

तारक छन्द—पतिनी प्रिय तोहि किधों पति भावै।
इहई व्रत तो चितको उपजावै॥
नर देह तजे मरि होइ सुनारी।
तब होइ भले पति को अधिकारी॥

तुझे पत्नी प्रिय है अथवा पति अच्छा लगता है? इस व्रत से ही तो पति की उत्पत्ति होगी। मनुष्य मरने के बाद नारी ही तो होता है। उस समय वह पति की अधिकारिणी होती है।

नारी वेष उवाच

दोहा—होहै इहि देह हीं, नरते सुन्दरि नार।
राधा जू की ह्वै सखी, मिलिहों श्याम निहारि॥ ३३॥

हुआ है और होगा भी इसी नर से नारी की उत्पत्ति। राधा जी की सखी बनकर श्याम को देखकर मिल जाऊँगी।

शूद्र उवाच

तारक छन्द—यह जानत हो अतिही भटकायो।
कहि जीवत को नर नारि कहायो॥
वह साधन कौन मिलै जिहि राधा।
हमहूँ उपजी जिय साध अगाधा॥ ३४॥

यह जानकर भी अभी तक भटकता रहा। अब यह बताओ कि जीवित रहते हुये किस मनुष्य को स्त्री कहा गया है? वह कौन सा साधन है, जिससे राधा की प्राप्ति हो जाय? हमारे हृदय में उसके लिये अगाध अभिलाषा उत्पन्न हो गई है।

नारी वेष उवाच

अब तोसों कहों जिनि काहु सुनावै।
सुनि जाहि सुने उर और न आवै ॥
तीरथ दान सबै व्रत छाँड़ै।
सो इहि साधन सो हित माड़े ॥
वेद को भेद सुव्यासहिं पायो।
याहि ते नाहिं पुराणनि गायो ॥
कौनहिं भागनिसों तुम जान्यो।
जानिकै अद्भुत मन्त्र बखान्यो ॥ ३५ ॥

अब मैं तुमसे कह रहो हूं, किन्तु इसे किसी दूसरे को तुम मत सुनाना। उसको सुनने के बाद और किसी वस्तु के सुनने में मन नहीं लगता। तीर्थ और दान जो सभी छोड़ सके, वही इस व्रत में मन लगावे। वेदों का भेद केवल व्यास को मिल सका था। इसीलिये पुराणों को उन्होंने नहीं गाया। किस भाग्य से तुमने इस भेद को जाना और जान करके अद्भुत मन्त्र का बखान किया।

सरस्वती छन्द–एक अद्भुत मंत्र तामे ताहि साधत कोइ।
जापै त्रिकोटि[1] जपै सुमंत्रहि नारियो तब होइ ॥
नारि ह्वै तब राधिका कृत कुण्ड माँझ अन्हाइ।
राधिका सखि ह्वै मिली तब श्याम सुंदर पाइ॥३६॥

१ तन्त्र के अनुसार एक भैरवी राग।

श्यामसुन्दर की प्राप्ति के लिये आवश्यक है कि नर नारी का रूप धारण करे। इसके अभाव में श्याम सुन्दर की प्राप्ति असम्भव है।

श्यामसुन्दर की प्राप्ति का एक अद्भुत मन्त्र है, जिसको कम ही लोग प्रयोग करते है। यदि त्रिकुटा मन्त्र का जाप करे, तब नर नारी हो सकता है। स्त्री होने पर राधिका कुण्ड में स्नान करे और राधिका की सखी बनकर श्यामसुन्दर को प्राप्त करले।

दोहा—कान मूंदि यह सुनत ही भागी कहि कहि त्राहि ।
श्रद्धा के आशा बँधी देखति है उर दाहि ॥ ३७ ॥

यह सुनते ही कानों को मूंद कर त्राहि-त्राहि करते हुये भाग खड़ी हुई। हृदय में ताप देखकर श्रद्धा को आशा हुई ।

करुणा उवाच

विजय—चंद्र मुखीनि में चारुचकोर किचंद चकोरनि मे रूचि रोहै ।
लोचन लोल कपोलनि मध्य विलोकत यो उपमा कह्यो है ॥
सुंदरता सरसीनि मे मानहु मीन मनोजनिके मनु मोहै ।
माणिक[1] सो मणि मंडल मे कहि को यह बाल वधूनि मे सोहै ॥३८॥

१ लाल रङ्ग का एक रत्न ।

जब श्रद्धा और करुणा भागी तो मार्ग में एक मूर्ति दिखाई दी। उसे देखकर करुणा चिन्ता में पड़ गई। उस विलक्षण मूर्ति के सौंदर्य का वर्णन किया है। चन्द्र-मुख में चकोर (नेत्र) हैं अथवा नेत्रों के कारण चद्र-मुख शोभित है। सुन्दर कपोलों के बीच नेत्रों को देखकर उपरोक्त उपमा कही है। सुन्दर नेत्र कामदेव के मन को मानों आकर्षित कर रहे हैं। मणिमण्डल में माणिक के समान स्त्रियों के बीच में यह कौन बाला सुशोभित हो रही है।

सती उवाच

दोहा—नित्य विहारनि को मढ़ी त्रिय गण देखि सिहाति ।
एक पियति चरणोदकनि, एक उसारनि खाति ॥ ३९ ॥

वह नित्य विहार करने के लिये ही बनी है। स्त्रियों के गणों को देख कर प्रसन्न होती है। एक चरणोदक का पान करती है और एक उसार खाती है।

पुत्री दक्षिण राजकी, आई तजि कुल तंत्र ।
देउ कृपा करि याहि प्रभु, नित्य विहारी मंत्र ॥ ४० ॥

दच्तिण राज की पुत्री है यह अपने कुल की सारी मान और मर्यादा को छोड़कर आई है। हे प्रभु! कृपा करके उसे नित्य बिहार करने का मन्त्र दो।

सेवेगी तुमको सदन, छोड़ि जु सबै विकल्प।
तनधन मन को प्रथमहीं, करवाये संकल्प॥ ४१॥

यह सभी विकल्पों को छोड़कर तुम्हारी सेवा करेगी। तन मन धन का प्रथम ही संकल्प करवा लिया है।

सिखये मंदिर माँझ लै, मोहन मन्त्र विधान।
उन दीनी गुरु दच्तिना, सधर अधर मधुपान॥ ४२॥

मंदिर ले जाकर उसे मोहन मंत्र का पूरा विधान भी सिखा दिया है। उसने अपने सुन्दर अधरों का पान कराके गुरु दच्तिणा दी।

शांति उवाच

तारक—इनको कबहूँ न विलोकन कीजै।
अरु यो करियै तौ निरै पग दीजै॥
विपदा माँह आनि भजो दुख कीजै।
बूड़ि नदी मरियै विष पीजै॥ ४३॥

कृष्ण की उपरोक्त लीला को देखकर शान्ति ने कहा कि इनको कभी भी मत देखिये और देखा तो नर्क में पैर दीजिये अर्थात् नर्क मिलेगा। दुख भोगना अच्छा, किन्तु विपत्ति में भजन करना अच्छा है नहीं। नदी में डूब मरना या विष पान करना भजन से कहीं अधिक अच्छा है।

दोहा—इहि विधि पाखण्डीनि के थलनि विलोकि प्रकाश।
वृंदा देवी पहँ गई, बूझन केशव दास॥ ४४॥

करुणा और शान्ति इस प्रकार से पाखण्डियों के अनेक स्थानों को देख कर वृन्दा देवी के पास पूछने के लिये गई।

जब लगी देहै तजन, वाणी भई अकाश।
सुखसों श्रद्धा मिलन अब ह्वै है केशवदास॥ ४५॥

जब देह जलने लगी तब आकाशवाणी हुई कि अब सुखपूर्वक श्रद्धा से भेंट होगी ।

पूजा शालग्राम की करि षोडश उपचार ।
वंदन आठो अंगते, करति हुती तिहि काल ॥ ४६ ॥

जिस समय करुणा और शान्ति वृन्दादेवी के पास पहुँचीं, उस समय वह सोलहो विधि विधानों से शालिग्राम की पूजा कर रही थीं । आठो अंगों पर उस समय वन्दन भी कर रही थीं ।

इति चिदानन्दमग्नायां विज्ञानगीतायां पाषण्ड,
धर्म वर्णनो नाम अष्टम प्रभावः ॥ ८ ॥

नवम प्रभाव

दोहा—नवे माँझ श्रद्धा मिलन, हिय विवेक वैराग ।
राज धर्म वर्णन सबै, उद्यम कथा सभाग ॥ १ ॥

नवें प्रभाव में विवेक वैराग और श्रद्धा का मिलाप है । राज्य धर्म का वर्णन और साथ ही उसकी कथा भी है ।

वृन्दा देवी हँसि मिली, श्रद्धहिं कंठ लगाइ ।
कुशल प्रश्न बूझी सबै कहि केशव सुखपाइ ॥ २ ॥

वृन्दा देवी हँसकर श्रद्धा से गले लगाकर मिलीं और कुशल पूछी । हाल जानकर अत्यधिक सुखी हुई ।

मथुरावृंदावन सबै, ढूढ्यो देवि अशेषु ।
कबहुँ न श्रद्धा देखियै, चित विचार करि देखु ॥ ३ ॥

देवी ने मथुरा और वृन्दावन में श्रद्धा को ढूंढा, किन्तु वह कहीं मिली नहीं । केशव का कथन है कि यहां पर श्रद्धा कभी भी दिखाई नहीं देती ।

चाहे थोड़ा अपने मन में विचार करके देख लीजिये। केशव के ऐसा कहने का कारण है। केशव ने मथुरा और वृन्दावन को पाखण्डपुरी माना है। पाखण्डपुरी में श्रद्धा कैसे मिल सकती है ?

श्रद्धा उवाच

सरस्वती छन्द–ग्रसी हुती हों भैरवी लइ विष्णु भक्ति छुड़ाइ।
ताको मिलो तुम जाइ जी सुख पाइ दुख नशाइ ॥
दौरि दुऔ सुनि मात गातनि की भली कुशलात।
सुविलोकि दुरिते पंथ मे आवत उर अवदात ॥४॥

भैरवी के पंजे में पड़ गई थी, किन्तु विष्णु भक्ति ने छुड़ा लिया। उसी को तुम भी जाकर मिलो। हृदय आनन्दित होगा और दुःख नष्ट हो जायँगे। यह सुनकर दोनों माताओं ने कुशल पूछी। इसी अवसर पर दूर से आता हुआ निर्मल उर देखा।

तारक—निज आसु जिये कुल केशव कोऊ।
अति काँपति गातनि रोवति दोऊ ॥
अकुलाइ मिली अति आतुर भारी।
चितवै चहुँघा विन जीव विहारी ॥ ५ ॥

कुल में कोई जीवित है, ऐसी आशा हुई। शरीर कांप रहा था और दोनों रो रही थीं। वन में विहार करने वाले जीवों को देखकर अत्यधिक व्याकुल और आतुर होकर मिलीं।

श्रद्धा उवाच

दोहा—महा भयानक भैरवी, देखी सुनी न जाति।
देखति तो दशहूँ दिशा, मेरो चित्त चवाति ॥ ६ ॥

भैरवी अत्यधिक भयानक है। उसे न तो देखा ही जाता है और न सुना ही। दशों दिशाओं को देखने पर मेरा चित्त डरता है।

शान्ति उवाच

विष्णु भक्ति को सङ्ग पल, तजतु नेह तो मात।
पठई हुती विवेकसों, कहन गूढ़ की बात ॥ ७ ॥

हे माता ! विष्णु की भक्ति और उनके प्रति स्नेह एक पल के लिये भी नहीं छोड़ा गया। इसीलिये गूढ़की बात को कहने के लिये विवेक को भेजा था।

शान्ति श्रो हरि भक्ति पै, गई सुनतहीं बात।
करुणा जू श्रद्धा गई, जहँ विवेक नर तात ॥ ८ ॥

उपरोक्त बात को सुनते ही शान्ति श्री हरि भक्ति के पास गई। करुणा और श्रद्धा विवेक के पास गईं।

रूप उवाच

रूपमाला छंद-बाग राग रमे विराजत जह्नु नंदिनि कूल।
यत्र तत्र अनेक रंगनि शोभियै फल फूल ॥
बुद्धि के सँग शोभियै तहँ राज राज विवेक।
रेणुकामय शुद्ध आसन चित्त में प्रभुएक ॥ ९ ॥

राग में लीन विवेक जान्ही नदी के किनारे बाग में बिराजमान था। वहां पर इधर उधर अनेक रंगों के पुष्प शोभित हो रहे थे। वहीं पर बुद्धि के साथ विवेक शोभायमान था। रेणुका के सदृश उसका आसन शुद्ध था और उसके चित्त में एक प्रभु ही था।

गीतिका-गुण गान मान विधान सो कल्यान दान सयान सो।
अनुराग याग विराग भाग संयोग भोग प्रमाण सो ॥
सुख शील सत्य संतोष शुद्ध स्वरूप आन्नद हास सो।
तप तेज ताप प्रताप संयम नेम प्रेम हुलास सो ॥ १० ॥

विवेक के गुणों का उल्लेख केशव ने किया है। विवेक के स्वरूप को प्रकट करने वाले सभी विशेषण हैं। गुण, गान, मान, विधान, कल्याण, दान, अनुराग, योग, वैराग्य, संयोग, भोग, सुख, शील, संतोष,

सत्य, आनन्द आदि सभी गुणों से विवेक युक्त है। जाप और तप के परिणाम से उसमें तेज है। प्रेम और आनन्द के कारण संयम और नियम है।

दोहा—धीर धारिणी ज्ञान शभ, दम सुभाव आचार।
बल विक्रम शुभ आदि दै, सकल धर्म परिवार ॥ १० ॥

धैर्य धारण करने वाला ज्ञान, शान्ति, बल विक्रम आदि गुण सम्पूर्ण धर्म परिवार को दिया।

रूपमाला छन्द—बुद्धि की सजिनी क्षमा शुचि सिद्धि कीरति प्रीति।
वृद्धि सुन्दरता सदा शुचि माधुरी युत जीति॥
धीरता अवधारणा तपसा प्रभा अति उक्ति।
वर्णता अवधानता सुसमाधि संतत युक्ति।

धर्म परिवार का चित्र केशव ने प्रस्तुत किया है। बुद्धि की सखी क्षमा है, जिसे सिद्धि और कीर्ति से प्रीति है। मधुरता के साथ सुन्दर, दीप्त अभ्युदय को जीत लिया है। धैर्य, तपस्या, कान्ति की सीमा बांध दी है। वर्णता, एकाग्रता और समाधि से युक्त है।

दोहा—राजधर्म सतसंगयुत, शोभत है सुखदाइ।
श्रद्धा करुणा युत गई, दई आशिषा जाइ ।। १३ ॥

अत्यधिक सुख देने वाला राजधर्म सतसंग के साथ शोभित है। श्रद्धा करुणा के साथ गई और आशीर्वाद दिया।

स्वागत—राज राज उठि पाँइनि लागे।
राजधर्म सतसंग सभागे ॥
राज पत्नि उठि कंठ लगाई।
सिद्धि बृद्धि :पग धोवन धाई ॥ १४ ॥

धर्मराज ने उठकर प्रणाम किया। राजधर्म को भाग्य से सतसंग प्राप्त हुआ। राजपत्नी ने उठकर कण्ठ से लगा लिया। सिद्धि और वृद्धि पैर धोने के लिये दौड़ पड़ीं।

दोहा—प्रथम प्रश्न कुशलात कहि, तब बूझी नृपनाथ।
करुणायुत श्रद्धा गई, कहन आपनी गाथ॥ १५॥

पहले कुशल कही और फिर राजा ने पूछा। करुणा श्रद्धा के साथ अपनी कहानी कहने गई।

श्रद्धा उवाच

ग्रसी हुती हों :भैरवी. महामोह के हेतु।
विष्णु भक्ति हों छीनिली, पठई राज निकेत॥ १६॥

महामोह के कारण भैरवी ने ग्रस लिया था। विष्णु भक्ति के कारण छूटी और अब आप के घर भेजी गई हूं।

शासन श्री हरि भक्ति जू, दइ कृपा करि एहु।
लीजे जू शिर मानिक, कीजै नहिं संदेहु॥१७॥

श्री हरि भक्ति ने कृपा करके यह शासन दिया है। उसे मां ने स्वीकार कर लिया है। इसमें आप संदेह न करें।

विजय—कामके काम अकाम करो अब वेगि अकामनि आनि अरोजू।
मोह के मोह को लोभके लोभ को क्रोधके क्रोध को नाश करोजू।
कीजै प्रवृत्ति निवृत्ति प्रवृत्ति के पंथ निवृत्ति के पांइ धरोजू।
आपने बाप को आपने हाथ कै जीवहि जीवन मुक्त करौजू॥१८

राज धर्म के व्यवहार से अत्यधिक तृप्त होकर श्रद्धा ने कहा कि अब काम के काम को नष्ट कर दो और शीघ्र ही अकाम से अड़ जाओ। मोह के मोह को, लोभ के लोभ को, क्रोध के क्रोध का नाश कर दो। प्रवृत्ति को निवृत्ति करो और उसके प्रवृत्ति के मार्ग पर निवृत्ति को ले चलो अपने पिता को अपने जीवन में ही मुक्त करो।

राजोवाच

दोहा—शासन श्री हरि भक्ति को, सबको सदा समान।
सुनि श्रद्धा इहि भांति के, हमको कठिन विधान॥१९॥

श्री हरि भक्ति का शासन सभी के लिये समान है। श्रद्धा ने यह सुन कर कहा कि हमारे लिए यह विधान कठिन है।

रूप माला छंद— तात मात विमात सोदर बंधु वर्ग अशेष।
कौन भांतिनि होहि सतसंग रहे सुविशेष॥
पाप के अपलोक के बनि तानि दै बहु शोक।
कोप दै बहु भांति शोकनि घालि लोक विलोक।२०।

पिता, माता, विमाता, सोदर बंधु आदि जितने भी वर्ग हैं उनका किस प्रकार संग हो। पाप की बदनामी के कारण अधिक शोक है। अनेक प्रकार से शोक को कोप देकर उसे नष्ट कर दो।

सतसंग उवाच

राज राज भली कही यह बात नित्य प्रमान।
मित्र कौन जु शत्रु को जग आपु रूप समान॥
सर्वदा सब भाँति बहु करि एक आनंद शक्ति।
और बात न मानिए मन छोड़ि श्री हरि भक्ति॥२१॥

हे राजन्! यह बहुत ही भली और प्रमाणिक बात कही है। कौन ऐसा मित्र है जो कि शत्रु को अपने समान माने। दोनों को एक करने की शक्ति सदैव आनंद में है। श्री हरिभक्ति को छोड़कर अन्य बातों को नहीं मानना चाहिए।

राजधर्म उवाच

दोहा—राजा ह्वै प्रभु जिनि कहो, तपसी कीसी बात।
सिंह जियत क्यों मृगनि सों नातौ मानै तात॥२२॥

हे प्रभु! राजा होकर तपस्वी की बात मत कहिये। मृगों के साथ सिंह क्यों रहता है? क्योंकि वह पिता का नाता मानता है।

दान दया मति शूरता, सत्य प्रजा प्रतिपाल।
दण्डनीति ए धर्म हैं, राजनि के सब काल॥२३॥

दान, दया, बुद्धि, शक्ति, सत्य से प्रजा का प्रतिपाल करे। यह दण्ड नीति सभी कालों में राजाओं के धर्म में हैं।

रूपमाला छंद—दान दीयत विज्ञ को अति अज्ञ कौ वशभीत।
दीन को द्विज वर्ण को बहु भूख भूषित भीत॥
दीन देखि दया करै अति अज्ञ को भुवपाल।
गाइयको त्रिय जातिको द्विज जातिको सब काल।१४।

विद्वान को दान देता है। अज्ञानी को अपने भय से वश में करता है। दीन, द्विज का भूषण अनेक प्रकार से क्षुधा ही है। अज्ञानी और दीन व्यक्ति को देखकर राजा दया करता है। गाय, स्त्री और ब्राह्मण सदैव और सब कालों में दया के पात्र हैं।

दोहा—धरणी को धन धर्म को सत्य शील संतान।
नृप अपने उद्धार को, सदा रहत मति मान॥२५॥

धरणी, धन, धर्म, सत्य, शील और संतान के प्रति और अपने उद्धार के लिए सदैव समझदार रहता है।

रूपमाला छंद—शूरता रण शत्रु को मन इन्द्रियादिक जानि।
सत्यकाय मनोवचादिक संपदा विपदानि॥
चोर ते बटपार ते विभिचार ते सब काल।
ईनिते ठगलोग तेजु प्रजानि को प्रतिपाल॥२६॥

रण में शत्रु की शूरता और इन्द्र के मन को जानकर, सत्य कर्म, मनोविकार, संपदा विपत्ति को देनेवाली हैं। चोर, बटयार, व्यभिचारी ईठि और ठग लोगों से सदैव प्रजा का पालन करना चाहिये।

दोहा—सखा सहोदर पुत्र सम, गुरुहू को अपराधु।
क्षमे न राजा विप्रहूँ, वनिता विहरत साधु॥२७॥

सखा सहोदर, पुत्र, गुरु सभी के अपराध समान हैं। राजा अपराध करने पर विप्र को भी क्षमा नहीं करता और वेश्या के साथ विहार करने वाला साधु भी दण्डनीय है।

दोधक छन्द—संतत भोग निनैरस जाके।
राजन सेवक पाप प्रजाके ॥
ताते महीपति दण्ड सँचारे।
दण्ड बिना नर धर्म न धारे ॥२८॥

निरन्तर केवल भोग में ही लगा रहता है, यदि ऐसा कोई राजा का सेवक है तो उसे प्रजा का पाप लगता है। इसी कारण से राजा दण्ड का विधान करता है। दण्ड के अभाव में नर-धर्म का धारण नहीं हो सकता।

दोहा—कै तुम तजौ कहाइबो, राजा आजु विवेक।
महामोह को दण्डकै, दीजै भांति अनेक ॥२९॥

हे विवेक! या तो आज से तुम राजा कहाना छोड़ दो या महामोह को अनेक प्रकार से दण्ड दीजिये।

राजोवाच

यद्यपि ऐसोई सदा आदि अंत है राजु।
तदपि आपने वंश को कैसे मारों आजु ॥३०॥

यद्यपि यह सत्य है कि आदि और अंत दोनों एक हैं किन्तु अपने वंश का आज विनाश कैसे करें ?

राजधर्म उवाच

दोधक—हो हठ ऐसो युधिष्ठिर कीनो।
लोग रहे कहि क्यों हन दोनो ॥
अंत खिसाइकै युद्ध सँचारे।
घर मांझ ते नारि समेत निकारे ॥३१॥

इसी प्रकार का हठ युद्धिष्ठिर ने किया था। सभी लोगों ने मना किया किन्तु वे न माने। अंत में खिसिया कर युद्ध किया जब कि घर से स्त्री समेत निकाल दिए गये।

दोहा—बंधु नाश अर्ज्जुन कियो श्री हरि के उपदेश।
तिनही अघ मोचन कह्यो, हो इहि बोट देश ॥३२॥

अर्जुन ने कृष्ण के उपदेश के अनुसार बंधुओं का विनाश कर दिया। उन्होने पापों के विनाश की विधि इसी देश में कही थी।

राजधर्म उवाच

स्वागता—पाप मारि प्रभु धर्म सँचारो।
लोक लोक यश को न पसारो ॥३३॥

पाप को मार कर धर्म का संचार करो। लोकों में यश को मत फैलाओ।

विवेक उवाच

बाप सों युद्ध कहो किनि कीनों।
अजु चल्यो यह धर्म नवीनो ॥
एक पुरातन बात सुनावो।
मोह के मोह तें मोहिं छुड़ावो ॥३४॥

बाप से युद्ध किसने किया है? आज यह नवीन धर्म चला है। एक पुरातन बात मैं सुनाता हूँ। मोह के पाश से मुझे छुड़ाओ।

राजधर्म उवाच

दोहा—राम चन्द्र जग चंद सों, कीन्हों हो संग्राम।
रामचन्द्र के सुतनि जब, बाजि गह्यो गुणग्राम ॥३५॥

संसार के चन्द्र रामचन्द्र से संग्राम उनके पुत्रों ने उनसे घोड़ों को पकड़ कर किया।

विवेक उवाच

तोरक छन्द—अन जानतहीं उन दोष धरे।
पहिचानि पिता तब पांइ परे॥
हम जानि पिता रण क्यों हनिये।
यह धर्म कथा कहु क्यों गुनिये ॥३६॥

बिना समझे बूझे उन्होंने इस दोष को किया था, किन्तु पहचानने के उपरान्त वे अपने पिता के चरणों पर पड़े थे। हम जान बूझ कर अपने पिता की हत्या क्यों करें। इस धर्म कथा को कैसे स्वीकार किया जाय ?

राजधर्म उवाच

दोधक—यद्यपि है अति धर्म प्रवीने।
युद्ध मरुत पिता कहँ कीने ॥
अर्ज्जुन के सुत अर्ज्जुन हीको।
शीश हत्यो रण मैं अति नीको ॥३७॥

आप धर्म में प्रवीन हैं। मरुत ने अपने पिता से युद्ध किया था। युद्ध में अर्जुन के पुत्र ने उन्हीं का शीश काटा था।

राजनि केवल राजके काजै।
भारत केशव काहु न लाजै ॥
कै अति प्रेम पिता समुझावो।
मोह के मोह ते मोहिं छुड़ावो ॥३८॥

राजा को केवल राज काज से ही काम है। अपराध करने पर किसी को मारने में उन्हें लज्जा नहीं होती। यदि ऐसा नहीं कर सकते, तो प्रेम से पिता को समझा दो। मोह को मोह बन्धन से छुड़ा दो।

दोहा—ब्रह्म दोष युत मारते, कहा तात कहँ मात।
जौन मारियै राजतौ, नर्क परहु सुनि तात। ३९॥

ब्रह्म दोष के अपराध में सभी को मारना चाहिये। वह चाहे पिता हो या माता और यदि न मारा जाय तो राजा नर्क में जाता है।

सिगरे जम्बू दीप में, पूरि रह्यो परिवार।
राजा सिगरे तंत्र को, राम नाम है सार ॥४०॥

सम्पूर्ण जम्बूद्वीप में परिवार बसा हुआ है। हे राजा ! सारे तंत्रों का सार राम नाम ही है।

उद्यम उवाच

दोहा—बोलि लयो उपकार कहुँ गहि उद्यम को हाथ।
राज सभा मे आइ कै, बैठे तब नरनाथ ॥ ४१ ॥

उपकार को बुलाया और उद्यम का हाथ पकड़कर राज सभा में जाकर बैठ गये।

याचक पूजक योग युत, पण्डित मण्डित धर्म।
वरणे आनि विवेक सों, महामोह के कर्म ॥ ४२ ॥

याचना करने वाले, पुजारी, योग-रत व्यक्ति, धर्म-युत पण्डितों ने विवेक से महामोह के कार्यों का वर्णन किया।

राजधर्म उवाच

विजय–भूलत जीव चिदानंद ब्रह्म समुद्र के स्वादहि सूँघत नाहीं।
पीवे न वेद पुराण पुकारि पुकारि पिआवत है बहुधाहीं॥
झूठे विषै विष सागर तुंग तरंगिनि पीवतहीं न अघाहीं।
मज्जत है उन मज्जुन केशवदास विलायु विनंद वृथाहीं॥४३॥

सभी जीव चिदानन्द ब्रह्म में भूले रहते हैं। समुद्र के स्वाद को सूंघते तक नहीं हैं। कोई वेद या पुराण को सुने या न सुने, फिर भी बुला-बुलाकर सुनाते हैं। असत्य विषय वासना के विष सागर और ऊंची-ऊंची सरिताओं के पीते हुये भी संतुष्ट नहीं होते। विनोद और विलास में व्यर्थ ही लोग स्नान कर रहे हैं।

दण्डक–जैसे चढ़े बाल सब काठ के तुरङ्ग पर,
तिनके सकल गुण आपुही मे आने हैं।
जैसे अति बालका वे खेलति,
पुतरि अति पुत्र पौत्रहि मिल विषय विताने हैं॥
आपनों जो भूलि जात लाज साज,
कुल कर्म जानि कर्म कादिक नहीं सो मनमाने हैं।
ऐसे जड़ जीव सब जानत हो केशवदास,
आपनी सचाई जग साँचोई कै जाने हैं॥ ४४ ॥

जिस प्रकार से बालक काठ के घोड़े पर बैठकर आनन्द लेते हैं, उन्हीं के सारे गुणों को अपना लिया है। जिस प्रकार से बालक गुड़ियों से साथ खेलते हैं, उसी प्रकार पुत्र पौत्र आदि सभी विषय में भूले हुये हैं। व्यक्ति अपनी लज्जा, कुल कर्म, जाति कर्म आदि सभी कुछ भूल जाता है, जो उसकी इच्छा पर निर्भर नहीं है। केशव का कहना हैं कि ऐसे जड़ लोग अपने आप सच्चे होने पर ही संसार को सत्य मानते हैं अन्यथा उनके लिये सब झूठ रहता है।

सवैया—अंध ज्यों अंधनि साथ निरंध,
कुवाँ परिहूँ न हिए पछितानो।
बन्धुकै मानत बन्धन हारिनि दीने,
विषै विषखात मिठानो॥
केशव आपने दासनि को फिरि,
दास भयो भव यद्यपिरानो।
भूलि गई प्रभुता लग्यो जीवहि,
बन्दि परे भले बन्दि अघानो॥ ५५॥

अंधा व्यक्ति अंधे लोगों के साथ पड़कर निरंध कुएँ में पड़कर अपने हृदय में नहीं पछताता है। बन्धुओं के बन्धन को नाश करने वाला मानता है और विषय वासना के विष का प्रेम के साथ (मीठा समझकर) पान करता है।

केशव का कथन है कि वह फिर से अपने दास का दास हो गया है। उसे अपनी सारी प्रभुता भूल गई और वह बन्धनों में पड़कर फिर छक गया।

राजधर्म उवाच

मदिरा—रूर रचे यहि लोकहि केशव,
चेत को आपु प्रवेश करयो।
चेत भले गुन हेतु भये सुख,
दुःख सुतो सबही है कुरयो।

तिनके कहि के चल भोगनि को,
सुर नर्क निरें पदपैंड धर्यो।
इहि भाँति रच्यो जग झूठ महा,
सुकहा जगदीश के हाथ पर्यो ॥ ४६ ॥

इस संसार में रूप रचना आप ही ने की और उसमें चेतना का प्रवेश भी आप ही ने किया है। चेतना की रचना भले गुणों के विकास के निमित्त हुई थी, किन्तु सब के पाले दुख ही पड़ा है। सभी देव भोग के निमित्त नर्क की ओर अपने कदम बढ़ा रहे हैं। इस प्रकार असत्य संसार की रचना करके जगदीश के हाथ क्या पड़ा ?

राजोवाच

दोहा—उद्यम कीजै आजु ते, वह उद्यम अकुलाइ।
जीति शत्रु जन कहँ मिलो, देखो प्रभु के पाँइ ॥ ४७ ॥

हे उद्यम ! आज ऐसा उद्यम करो कि शत्रुओं को जीतकर प्रभु के चरण देखने को मिलें।

उद्यम उवाच

गज बाजी सम्बर घने, ठाढ़े हैं दरबार।
योधा बोधा युद्ध को, गहे हाथ हथियार ॥ ४८ ॥

हाथी, घोड़े, सम्बर दरबार में सभी खड़े हैं। युद्ध में कुशल अनेक योद्धा हाथ में तलवार लिये खड़े हैं।

उनके राजा काम हैं, सब योधनि को सार।
ताको राज प्रयोगियो, एकै वस्तु विचार ॥ ४९ ॥

उद्यम ने युद्ध को जीतने की रीति बता दी। उनका राजा काम है, जो कि सभी योद्धाओं का सिर मौर हैं। उसके राज्य में एक ही वस्तु विचार का प्रयोग करना चाहिये।

वस्तु विचार

सवैया—बासरहूँ निशिनों दरबार बसै,
मलधार[1] रहै न घरी को।
सूरति शूकरि कीसी सलोम,
कहा वरणों थल काम थरी के,
शूकर से विषयी जन ताहि महा सुख,
पावत अंक[2] घरी को।
मारो कहा अब मार मरयो कहु,
ठाकुर काम निरै नगरी को ।। ५० ।।

१ एक प्रकार के जैन साधु जो अपने शरीर पर मल लगाते हैं।
२ पाप।

वस्तु विचार ने काम के अस्त्र की धज्जी उड़ा दी। रात दिन दरबार लगा रहता है। मलधार थोड़ी देर भी नहीं रुकने पाता है। उसकी आकृति सुअर के समान सलोनी है। काम के स्थल का क्या वर्णन करूं? सुअर के समान जितने विषयी लोग हैं उन्हें पाप कृत्यों में अत्यधिक सुख मिलता है। अब काम को क्या मारा जाय? क्या काम कभी मरा है? काम सम्पूर्ण नर्क नगरी का ठाकुर हैं।

राजोवाच

दोहा—को कहिये कहि कुशल मति क्रोध जीतिबे जोग।
ताको राज प्रयोगियो अब एकै संतोष ।। १५ ।।

राजा ने पुन: पूछा कि क्रोध को जीतने योग्य कौन है? क्रोध जीतने के लिये सतोष को बताया।

संतोष उवाच

सवैया—निर्मल नीर नदीनि के पान,
बनी फलमूल भखो तन पोषे।

सेज शिलान पलास के डासन[1].
डासि केशव काज संतोषे।
जो मिलि बुद्धि विलासिनि सों,
निशिवासर राम के नामहिं घोषे।
राज तुम्हारे प्रताप कृशानु[2] दशा,
इहिलोभ समुद्रनि सोषे ॥ ५१ ॥

१ विस्तर, २ शिव।

सरिताओं के निर्मल जल का पान करता है और फलमूल खाकर अपने शरीर का पालन करता है। शिला की सेज है और उसपर पलास का विस्तरा बिछाकर संतोष करता है। वह रात दिन बुद्धि विलास से मिलकर राम के नाम की घोषणा करता है। हे राजा! तुम्हारे प्रताप से ही शिव जी लोभ के समुद्रों को सुखाये रहते हैं।

दोहा—परत्रिय जननी जानिये, पर धन सुख विषतूल।
लोभ कहा सब मोह दल, जरि जैहै यहि शूल ॥ ५३ ॥

काम, क्रोध, लोभ विवेक के विकट बाधक है। इसीलिये केशव ने सीख दी है कि दूसरे की स्त्री को माँ के समान जानना चाहिये। दूसरे के धन से प्राप्त सुख को विष के समान मानना चाहिये। इस वृत्ति से एक लोभ क्या? महामोह तक का सम्पूर्ण दल जल जायेगा।

अपने दल बल लमुझियै, रे भट आलस छोड़ि।
प्रभु की तुम पाखण्ड पुर, फेरो प्रतिदिन डोड़ि ॥ ५४ ॥

हे योद्धा! आलस को छोड़कर अपने दल की शक्ति का अनुमान करो। प्रतिदिन डुग्गी बजाकर पाखण्ड को फेर दिया करो।

इति श्री चिदानन्दमग्नायाँ विज्ञानगीतायाँ विवेक राज धर्म उद्यम मंत्रवर्णनं नाम नवम प्रभावः ॥ ९ ॥

—:००:—

दशम प्रभाव

दोहा—केशव दशम प्रभाव में, श्लेषक कवित विलास।
वर्णन के मिसु प्रगटहीं, वरषा शरद प्रकाश ॥१॥

दशम प्रकाश में श्लेष कवित्तों का वर्णन है। वर्णन के बहाने वर्षा और शरद ऋतु का वर्णन हैं।

तोरक—तापुर मे यह बात।
डोंडी बजी अधरात॥
आयसु देत विवेक।
ब्रह्मधरो चित्त एक ॥२॥

उस ग्राम में आधी रात को डुग्गी बजी। विवेक ने सभी को आदेश दिया कि सभी लोग ब्रह्म को अपने चित्तमें धारण करें।

सोरठा—महामोह यहि बात, कीनो कोप विवेक पर।
कूंच बड़े ही प्रात, करि काशी सन्मुख चल्यो ॥३॥

महामोह ने विवेक की बात पर अत्यधिक क्रोध किया। प्रातःकाल ही महामोह ने काशी के लिए प्रस्थान कर दिया।

चार्वाक उवाच

दोहा—कूंच न कीजै राज अब, आयो वरषा काल।
शरदहिं आवत हीं वरद, करो विवेक विहाल ॥४॥

हे राजन्! अब प्रस्थान करना ठीक नहीं है, क्योंकि वर्षा ऋतु आगयी है। हे वरदाता! शरद ऋतु के आते ही विवेक को विहाल कर दो।

विजय—लोग लगे सिगरे अपमारग,
पोच भलो बुरो जानि न जाई।
चंचल हस्तिन को सुखदा,
अचला[1] त्रिपदा मिनि को दुखदाई ॥

हंस कलानिधि शूरप्रभा हत,
खंड शिखंडनि की अधिकाई।
केशव पावस काल किधौं,
अविवेक महीपति की ठकुराई ॥५॥

१ पृथ्वी

सारे ही लोग कुमार्ग में लग गये हैं। अतएव नीच, भला बुरा का ज्ञान नहीं होता। चंचल हाथियों के लिये सुखद है, किन्तु अचला और विपदामिनियों के लिये दुखद है। हंस, चन्द्रमा, सूर्य आदि की कान्ति तो क्षीण हो रही है, किन्तु मोरों का बाहुल्य हो गया है। केशव का कहना है कि ऐसा मालूम होता है कि पावस ऋतु में अविवेक का ही राज्य हो गया हो।

ज्वाल जगै कि चलै चपला नभ धूम घनो की घनों घन रूरो।
खेचर[१] लोगनि के अँशुवा जल बूंद किधों बरनों मति शूरो॥
केकी[२] कहै इह की कई केशव गौं जरि जोर जवासो समूरो।
भागहुरे बिरहीजन भागहु पावस काल की पावक पूरो॥६॥

१ पक्षी, २ मोर।

अकास में ज्वाल लग गयी है अथवा बिजली चमक रही है। आकाश में धुआं है अथवा घने बादल हैं। अकाश में उड़ने वाले पक्षियों के अश्रु हैं या बादलों के जलबुँद हैं। मोर पूछता है कि जवासे (आक) को किसने जला दिया? पावस ऋतु की अग्नि से बचने के लिये सभी बिरही-जन भागो।

घनघोर किधों भट पुञ्जनि पै तरवार कढ़ी तड़िता दुत भीनी।
गहि शक्र[१] शराशन केशव जोति समूहनि की पदवी बहु लीनी॥
कमला तजि पद्मिनि बूड़ि मरी धरनी कहँ चँद वधू गहि दीनी।
वरषा हरषीकि बजाइ निशान पुरंदर[२] सूरज को रिस कीनी॥७॥

१ इन्द्र, २ इन्द्र।

यह अकाश के बादलों का गर्जन है, जिसमें बिजली चमकती है या शूरवीरों ने अपनी तलवारें निकाल ली हैं। स्थान-स्थान पर अनेक इन्द्र धनुष निकले हुए हैं, उन्हें ज्योति (प्रकाश) की अनेक पदवियों से विभूषित किया गया है। कमल समूहों को छोड़कर लक्ष्मी बूड़ गयी और पृथ्वी को चंद बधू दी। वर्षा ऋतु अपने बाजों को बजाकर अत्यधिक प्रसन्न हुई, क्योंकि उसने इन्द्र और सूर्य दोनों को क्रुद्ध कर दिया।

मिलि भेलहि गात सुअंबर नील,
रह्यो लगि बात सुनो गज गामिनी।
जल धार बहै बहु नैननि ते,
न रहे केशव वासर यामिनि॥
कबहूँ कबहूँ कछु बात कहैं,
दमकै दुत दन्तनि की जनु दामिनि।
पिय पीय रटे मिसु चातक के,
बरषा हरषी कि वियोगिनि कामिनी॥८॥

एक स्त्री ने अपने पति को परदेश जाने से रोक लिया है। उसे रोकने के बाद उसकी क्या अवस्था हुई है, इसी का वर्णन इस छन्द में किया गया है। स्त्री अपनी सखी को सम्बोधित करके कहती है कि हे गज-गामिनी ! मेरे यह कहने पर वे रुक गये कि आकाश आज अनेक रूपों को धारण किये हुए हैं। किन्तु मेरे नेत्रों से जल की धारा बह रही थी, फिर भी वे एक रात और एक दिन न रुके। कभी-कभी कुछ बोल देते थे, तो ऐसा लगता था कि मानों बिजली चमक गई हो (दांतों की उपमा बिजली सी दी है)। चातक बहाने से पीव पीव रट रहा था अथवा कामिनी के वियोग पर वर्षा प्रसन्न हो रही थी।

सवैया—कोप करयो द्विज राज सों केशव,
कोविद चित्त चरित्रनि लोपति।

साधुनहू अपमारग लावति,
दूरि करै सतमारग की गति ॥
चोरनिकी बिभिचारिनि की,
निशिचारनि को उपजावति है रति।
बातक[1] चातकते समुझे बरषा,
हरषै कि वियोगिनि की मति ॥९॥

१ जार, छिनार लोग।

चन्द्रमा पर कोप और पंडितों के चरित्र का विनाश करती है। साधुओं को भी कुमार्ग पर लाती हैं और सतमार्ग को दूर करती है। चोर, व्यभिचारी, राक्षसों के मन में रति को पैदा करती है। पर स्त्री से प्रेम करने वाले और चातक ने समझा कि यह वर्षा ऋतु आगई या वियोगिनियों की मति है।

दूषति है पर पंकज श्रीगति हंसिनि की न तऊ सुखदाई।
अंबर ओर किये मुख चंदहि छूटि छपै छन भान छपाई॥
सोहति है जल जावली केशव पीन पयोधर में दुखदाई।
मारग भूलती देखत ही अभिसारिनि सी वरषा बनि आई।१०।

कमल विकसित नहीं हो पाते हैं। हँसों के लिए सुखदाई नहीं है। आकाश में खिला हुआ चन्द्रमा सूर्य को छिपाकर खिलता है। पानी में जावली शोभायमान है, किन्तु ऊँचे स्तनों के लिए दुखदायी है क्योंकि अभिसारिनी वर्षा को देख कर अपने मार्ग को भूल जाती हैं।

भव कारण जीवन देति भली,
विधि भूलिहु तो न भई हित हीनी।
द्विजराज की नेकहुँ कानि करी,
नहि तीनिहूँ लोकनि कीरति लीनी॥
परिताप हरे सब भूतल के,
रवि के कुल को पदवी बहु दीनी।

कहि केशव चातक मोर रटैं,
वरषा हरषी की सती रिस कीनी ॥११॥

वर्षा ऋतु संसार को अनेक प्रकार से जीवन प्रदान करती है, उससे भूलकर भी हितहानि नहीं होती है। चन्द्रमा की कुछ कानि करता है अन्यथा उसने तीनों तो लोकों की कीर्ति ले ली है। पृथ्वी के समस्त परितापों का उसने हरण किया है और सूर्य कुल को अनेक पदवियां दी हैं। चातक और मोर शब्द ध्वनि करते हैं। यह वर्षा की प्रसन्नता है अथवा सती का क्रोध।

॥ इति वर्षा वर्णनम् ॥

अथ शरद वर्णन

दोहा—बीति गई वरषा सबै, आई शरद सुजाति।
केशव वासर शोभसी, बीती कारी राति ॥१२॥

वर्षा ऋतु बीतने पर सुन्दर शरद ऋतु आई। दिन शोभायमान हुआ और काली रात बीत गई।

दंडक—छूटि गयो प्रजनि चलीवो,
अपमारग को आपने सतमारग समीति हैं।
सोहति परमहंस सुर सुभ कलानिधि,
गाइ द्विज देवतानि पूजिबे की प्रीति है॥
पावैं न प्रवेश विभिचारी निशिचारी चोर,
धामनि राम देव जू की गति है।
केशौदास सबही के हृदय कमल फूले,
शोभित शरद कीधों ओछो राजनीति है॥१३॥

शरद ऋतु आने पर प्रजा का कुमार्ग पर चलना छूट गया और सत मार्ग पर वह चलने लगी। परमहंस, देव, चन्द्रमा, गाय, ब्राह्मण की पूजने

की प्रीति सभी के हृदयों में है। घर घर में रामदेव के कारण व्यभिचारी, राक्षस, चोर घरों में प्रवेश नहीं कर पाते हैं। शरद ऋतु के कारण सभी के हृदय कमल फूले हुए हैं या कोई तुच्छ राजनीति है।

वन्दे नरदेव देव केशव परमहंस,
राजे द्विज राज वपु पावन प्रबल है।
अवनि अकाशहूं प्रकाश मान केशौराइ,
दिशि दिशि देश देश इच्छतु सकल है॥
पितर प्रयाण करै दूषण सकल हरैं,
मन वच काइ भवभूषण अमल है।
ठौर ठौर बरणत कवि शिर मौर और शरद
प्रकाश किधो गंगा जु को जल है॥१४॥

मनुष्य देवों की उपासना करते हैं। परमहंस, ब्राह्मण, राजा, सभी शुद्ध हैं। पृथ्वी और आकाश सभी प्रकाशित हैं। सभी दिशाएँ और देश अनेक प्रकार की इच्छायें करते हैं। पितृ प्रयाण करके सभी दोषों का हरण करतेहैं। मन, वचन, कर्म का आभूषण स्वच्छता है। स्थान-स्थान पर कवि वर्णन करते हैं कि यह शरद का प्रकाश है अथवा गंगा का जल है।

जहां तहाँ दुर्गपाठ पढ़त प्रवीण द्विज,
धाम धाम धूम घर मलिन अकाश सो।
राज राजसिंहासन से युत चँवर छत्र राजत,
निशान गज गाजत हुलास सो॥
ठौर ठौर ज्वाला मुखी दीसे दीपमालिका सी,
शोभित शृङ्गार हार कुसुम सुवास सो।
केसौदास आस पास लसत परमहंस,
देवी को सदन किधों शरद प्रकाश सो॥१५॥

स्थान-स्थान पर ब्राह्मण दुर्गापाठ करते हैं। घर घर आनन्दोत्सव हैं। राजाओं के राज सिंहासन चवँर और छत्र से सुशोभित हैं। बाजे बज रहे हैं और प्रसन्नता से हाथी गर्जना करते हैं। जगह-जगह दीप मलिकायें ज्वालामुखी के समान दिखाई पड़ रहीं है। शृङ्गार के हार पुष्पों की सुगन्ध से सुवासित हो रहे हैं। आस पास परमहँस और देवी का घर शोभा देता है या शरद का प्रकाश।

केशव जगत ईश कमला समेत तहाँ,
जागे ज्योति जल थल विमल विलास सो।
वदंतहँ भूतनाथ भाँति भाँति विधियुत,
देखिततु देतुयीय अघओघ नाश सो।
दिशि दिशि सुमन सफूले हैं प्रभाव,
जाके वरण वरण वहु विशद हुलास सो।
जाहि जग लोचन बिलोकि सुख पावै,
क्षीर सागर उजागर की शरद प्रकाश सो ॥१६॥

विष्णु भगवान जहां पर लक्ष्मी के साथ हैं वहां पर जल और थल दोनों में स्वच्छ प्रकाश उद्भूत होता है। अनेक प्रकार से शिव जो वन्दना करते हैं और अनेक आधि व्याधियों के विनाश के निमित्त प्रकाश देते हैं। सभी दिशाओं में पुष्प फले हुये हैं जिसके प्रभाव से चारों ओर अनेक प्रकार का उल्लास छाया हुआ है। शरद ऋतु के प्रकाश में क्षीर सागर के दर्शनों को पाकर नेत्रों को सुख मिलता है।

चंवकि चिकुर चारु चन्द्र मुखी,
चन्द्रिका सुचन्दन चढ़ायो साधु मनवच काइकी।
कृश कटि केहरि कमल दल पद कर,
खंजन नयन कुंद दन्त सुखदाई की॥

आछेतनु गंगा जल सहित शृंगार हार,
केशवदास हंसगति सुन्दर सुभाई की।
बीते निशि बरषा के आई है जगावन को,
शरद की शोभा वृन्द दासी रघुराई की ॥१७॥

लम्बे लम्बे बाल वाली, सुन्दर चन्द्रमुखी ने मन, वचन, कर्म से स्वच्छ चन्दन साधु पर चढ़ाया। कमर सिंह की तरह पतली, हाथ और पैर कमल सदृश, नेत्र खंजन पक्षी की भांति और दांत सुख देने वाले हैं। वह गंगा जल से अच्छो प्रकार स्नान करती है। हार से श्रृङ्गार करती है। वह हँस की भांति बड़े ही सुन्दर और स्वाभाविक ढंग से चलती है। वर्षा-रात्रि व्यतीत होने पर राम की दासी शरद की शोभा को जगाने के लिये आई है।

इति श्री चिदानन्दमाम्रयां विज्ञानगीतायां वर्षा शरद वर्णनों नाम दशमः प्रभावः।

एकादश प्रभाव

दोहा—महामोह नरनाथ तब कूच करयो अकुलाइ।
शोभन शरदहि पाइ बहु दुन्दुभि दीह बजाइ ॥१॥

महामोह नरनाथ ने तब व्याकुल होकर प्रस्थान कर दिया। दुंदुभी बजाकर शरद ऋतु अनेक प्रकार से शोभित हुई।

भुजङ्ग प्रयात—चले मत्त मातंग[१] भृङ्गावली[२] सों।
चले वाजि कुञ्ज नृप चिंतावली सों॥
चले स्यन्दन[३] स्थाग्रयोधा प्रवीने।
चले पुंज पैदा[४] धनुर्बाण लीने॥ २॥

१ हाथी २ भौरों की पांति ३ तेजी से चलने चलने वाला रथ ४ पैदल

भौरों की भांति मत्त हाथी पंक्ति बद्ध होकर चले। घोड़े और राजा चिन्ता युक्त होकर चले। तेजी से चलने वाले रथों पर बैठकर कुशल योद्धा भी चले। पैदल सैनिक अपने हाथों में धनुषबाण लेकर चले।

चामर छंद–रथ राजि साजि बजाइ दुंदुभि कोह सों करि साजु।
बिंदु माधव को चल्यो दल भूमिको अधिराजु ॥
उठि धूरि भरि चली आकाशहुँ शोभिजे जु अशेष।
जनु सोधु देन चली पुरंदर को धरा सुविशेष ॥ ३ ॥

रथों को सजाकर अत्यधिक क्रोधित होकर दुंदुभी बजाई। भूमि का राजा अपने दल को लेकर विन्दु माधव को चला। दल के चलने से जो धूलि उड़ी, वह आकाश तक पहुँचकर सुशोभित हो उठी। ऐसा लगा कि पृथ्वी विशेष ढंग से इन्द्र का सोध लेने के लिये चली है।

वाराणशी अति दूरि ते अवलोकियो मनपूत।
ऊँचे अवासनि उच्च सोहति है पताक विधूत[1] ॥
शोभा विलास विलोकि केशवराइ यों मति होति।
बैकुन्ठ मारग जात मुक्तनि की नवै ज्यों ज्योति ॥ ४ ॥

१ लिये हुये।

वराणशी ने बहुत दूर से मनपूत को देखा। ऊँचे-ऊँचे प्रासादों में लगी हुई पताकयें शोभा दे रही हैं। शोभा के उस विलास को देखकर ऐसा लगता है कि मानो मुक्ति बैकुण्ठ जा रही हैं और यह उसी का प्रकाश है।

मदिरा–गंग अन्हाइ के ईशहि पूजत फूलनि सों तन फूलि गनो।
आनन्द भूलि कै भौरनि के मिसु[1] गावत हैं बड़ भाग मनो॥
बाहु लतानि उठाइ कै नाचत केशव राँचत[2] होत घनो।
बागनि शीतल मंद सुगन्ध समीर लसै हरि भक्त मनो ॥५॥

१ बहाने से २ प्रेम करते हुये।

गंगा-स्नान करके ईश्वर की पूजा करता है। उसका शरीर फूलों के सदृश है। मानों बड़े भाग से भ्रमरों के आनन्द में भूलकर गाती हैं। अनेक लताओं को उठाकर नृत्य करती है और उसका प्रेम बढ़ता ही जाता है। बागों में फैली हुई मंद शीतल सुगन्धित समीर भक्तो को भली लगती है।

दोहा--पार देखि वाराणसी, डेरा कीनों बार।
महामोह नर पाल तब, दल रोकियो अपार ॥६॥

वाराणशी को देखकर महामोह ने दल को रोककर अपना डेरा डाल दिया।

भुजङ्ग—प्रबोधो दया एक वाराणशी है।
सखी सी सदासङ्ग गंगा लसी है॥
रुके जो महामोह ले भूमि अच्छा।
महादेव मानों रची राम रच्छा ॥७॥

वाराणशी में एक दया है जो कि गंगा के साथ सदैव सखी का भाँत सुशोभित रहती है। महामोह वाराणशी के बाहर ही रुक गया। यह ऐसा ज्ञात होता है कि रक्षा के निमित्त ही मानो महादेव ने ऐसा कर दिया है।

दोहा—महामोह पठए तहाँ, भ्रम अरु भेद बसीठ।
शोभत हुते विवेक जहँ, परम धर्म केईठ॥

महामोह ने वहां पर भ्रम और भेद नाम के बसीठ भेजे, जहां धर्म पर अत्यधिक निष्ठा रखने वाला विवेक शोभित था।

रूपमाला छंद-देखियो शिव की पुरी शिवरूप ही सुखदानि।
शेष पै न अशेष आनन जाइ वेष बखानि॥
न्हात सन्त अनंत वेष तरंगिणी युत तीर।
एक पूजत देवता इक ध्यान धारण धीर ॥ ९ ॥

अत्यधिक सुख देने वाले शिव रूप को शिवपुरी में जाकर देखा। अशेष के मुख का वर्णन शेष नाग भी नहीं कर सकते। अनेक वेश वाले संत नदी में स्नान करते हैं। कोई वहां पर देवता की पूजा करता है और कोई ध्यान लगाता है।

एक मंडित मण्डली महँ करत वेद विचार।
एकनाम रटैं पढ़ैं श्रुति शुद्ध सारण सार ॥
एक दंड धरे कमण्डलु एक खंडित चीर।
एक संयम नियमदादिक एक साधि समीर ॥
एक अनुरक्त कर्मनि एक नित्य विरक्त।
विंदु माधव के और माधव के कहावत भक्त ॥ १० ॥

एक मण्डली के बीच में वेद पर विचार हो रहा है। एक केवल नाम को ही जप रहा है। कुछ लोग श्रुतियों का अध्ययन कर रहे हैं। एक केवल दण्ड और कमण्डल ही हाथ में लिये हुये हैं। एक खण्डित वस्त्रों को ही धारण किये हुये है। एक संयम नियम से केवल रहता मात्र है और दूसरा प्राणायाम करता है। एक अपने कार्यों में अनुरक्त रहता है। एक नित्य प्रति के कार्यों से विरक्ति लिए हुये हैं। ये विन्दु माधव और माधव के भक्त कहलाते हैं।

तोटक छन्द—अतिभूत पुरी सम मानि तबै।
इन भाँतिन सों अवलोकि सबै ॥
नृप नायक के दरबार गए।
गुदरे तब भीतर बोलि लये ॥ ११ ॥

भूत पुरी के समान मानकर और उसी प्रकार सभी को देखकर नृपनायक (विवेक) के दरबार गये। राज दरबार ने आने की सूचना पाकर बुला लिया।

दोहा—उद्यम युत सत सङ्गयुत, देखि विवेक अखेद।
करि प्रणाम अति दूरिहिं, बैठे भ्रम अरु भद ॥ १२ ॥

भ्रम और भेद ने विवेक को उद्यम और सतसंग के साथ खेद रहित बैठा हुआ देखा। दोनों दूर से ही प्रणाम करके बैठ गये।

भ्रम उवाच

स्वागत—महामोह महिमण्डल लीनों।
तुमहिं राज यह आयसु दीनों॥
तजो आजु शिव की रजधानी।
जाइ रहो जहँ श्रीविधि वानी॥ १३॥

महामोह ने सम्पूर्ण पृथ्वी को ले लिया है। तुम्हारे लिये यह आज्ञा दी है कि आज शिव जी की राजधानी छोड़कर चले जाओ और जहां कहीं भी श्री विधि कहें, वहीं रहो।

भेद उवाच

हिय होई जासों कछु नेहु।
हमहिं आजश्रद्धा गहि देहु॥
महाराज तुमको पहिरावे।
गहो पाइ उठि जो घर आवै॥ १४॥

यदि तुम्हारे हृदय में थोड़ा भी स्नेह है तो हमें आज श्रद्धा दे दो। महाराज तुम्हारा आदर करेंगे। उनके घर आने पर आप उन्हें प्रणाम करना।

सोरठा—महाराज मन तात, महामोह की बात सुनि।
धीरज उर अवदात, पठये उत्तर देन तब॥

महामोह की बात सुनकर महाराज मनतात ने धीरज को उत्तर देने के निमित्त भेजा।

दोहा—धीरज गएजु तिहि सभा, जहाँ पाप की गाथ।
महामोह बैठे तहाँ, असत सङ्ग के साथ॥ १६॥

धीरज उस स्थान पर गये जहां पाप की कथा चल रही थी। महामोह उस स्थान पर असत के साथ बैठा हुआ था।

अशरीरी कामदेव आदि ज्योति से प्रकाशवान हैं। अनगिनत नामों वाला सर्व व्यापी हैं। महादेव की प्रवाधा का निवारण करने वाले श्री विन्दु माधव ! प्रबोध का उदय करो।

अमेयं[1] प्रवज्जी अनाद्यन्त[2] रन्ता[3]।
अशेष प्रहारी दशग्रीव हन्ता॥
अलच्छीनि लच्छीनि की सिद्धि साधो।
प्रवोधो उदो देहि श्री विन्दु माधो॥ २५॥

१ सीमारहित २ जिसका आदि अन्त न हो ३ रमण करने वाले।

सभी जगहों पर रमण करने वाले, सर्व व्यापी, अशेष को मारने वाले, दशग्रीव का बध करने वाले अलक्षित लक्षित की प्राप्ति की साधना करो। श्री विन्दु माधव प्रबोध का उदय करें।

त्रिदेव[1] त्रिकाल[2] त्रयीवेद[3] धर्ता।
त्रिश्रोता कृती सूत्रयी लोक भर्त्ता॥
कृपाकै कृपा पात्र कै निषाधो।
प्रवोधो उदो देहि श्री विन्दु माधो॥ २६॥

१ ब्रह्मा, विष्णु, महेश २ भूत, वर्तमान, भविष्य ३ ऋग, यजु, साम, वेद।

त्रिदेव, त्रिकाल, तीनों वेदों की रचना करने वाले, त्रिश्रोता का रचयिता और वही तीनों लोकों का पालन पोषण करने वाला है। कृपा करके कृपा पात्र का निषाध करिये। श्री विदु माधव प्रबोध का उदय करें।

तपो व्रती तापी तपस्याधिकारी।
परब्रह्म जू ब्रह्मदोष प्रहारी॥
किये पार संसार व्याधो निषाधो।
प्रबोधो उदो देहि श्री विन्दु माधो॥ २७॥

तू तप, व्रत और तपस्या का अधिकारी है। हे ब्रह्म! तुम परब्रह्म दोषों का प्रहार करने वाले हो। व्याध और निषाद को भी आपने संसार से मुक्त कर दिया। श्री विंदु माधव प्रबोध का उदय करें।

अधर्मी उधारो तिहूँ लोक गामी।
रची नित्य वाराणशी राजधनी॥
हरो पीर मेरी रमाधो[1] उमाधो[2]।
प्रवोधो उदो देहि श्री विन्दु माधो॥ २८॥

१ रमाधव, विष्णु २ उमाधव, महेश

अधर्मियों के उद्धार के लिये और तीनों लोकों में जाने के लिये वाराणशी की रचना की। हे विष्णु और महेश! मेरी पीड़ा का विनाश करो। श्री विन्दु माधव प्रवोध का उदय करें।

विन्दु उवाच

विवेकाभ्र ह्वै विज्ञ विज्ञप्ति कीनी।
सुनी विन्दु माधो सबै मानि लीनी॥
कृपा कै कह्यो मांगियै विन्दु माधो।
प्रबोधो उदो देहि श्री विन्दु माधो॥

विवेक ने अपनी सभी बातों को कहा। बिन्दु माधव ने सुनकर सभी बातों को स्वीकार कर लिया। विन्दु माधव ने कृपा करके कहा कि जो कुछ मांगना हो मांग लो। विवेक ने कहा कि हे श्री विन्दु माधव! प्रबोध का उदय हो।

विवेक उवाच

सुनो ईश यास्तोत्र को जो सुनैगो।
पढ़ावै पढ़ैगो गुनावै गुनैगो॥
सबै संपदा सिद्धि ताको करोजू।
सदामित्र ज्यों शत्रुता को हरो जू॥३०॥

हे विन्दु माधव ! इस स्तोत्र को जो सुनेगा, पढ़ेगा, पढ़ावेगा, मनन करेगा और मनन करावेगा, उसे सभी प्रकार की सम्पदा और सिद्धि दें। जिस प्रकार से सदैव मित्र शत्रुता का विनाश किया करता है।

श्री विन्दु माधव उवाच

दोहा—होइ प्रबोध उदै हिये, तेरे केशव राइ।
याहि पढ़ै अति प्रीति सों, सो वैकुंठहि जाइ ।।३१।।

तेरे हृदय में प्रबोध का उदय हो। इसे जो भी अत्यन्त प्रीति से पढ़ेगा, वह बैकुण्ठ जायेगा।

बिदा विन्दु माधव दई, तबहीं बार विचार।
गए विवेक विशेष मति, विश्वनाथ दरबार ।।३२।।

उस समय विचार करके विन्दु माधव ने विदा दी। उसके बाद विवेक विश्वनाथ जी के दरबार में गया।

चामर—पाप के कलाप मारि ताप के प्रताप तारि।
शोग रोग भोग को अयोग दुःख दोषदारि ।।
जान[१] के विमान[२] भंजिगंजि मूढ़ गूढ़ गाथ।
राखिलेहु राखिलेहु राखिलेहु विश्वनाथ ।।३३।।

१ जीव, २ अस्मानित

पाप के कलापों को मारने वाले, ताप के दोषों को दूर करने वाले, शोक, रोग, भोग के दोषों को दूर करने वाले, जीवों के अस्मान को नष्ट भ्रष्ट करने वाले, हे विश्वनाथ ! अब मेरी रक्षा करो।

धर्म ते विधर्म[१] ते अधर्म ते धर्म ते विचारि।
भेद ते विभेद[२] ते अभेद के प्रकाश कारि ।।
काल ते अकाल ते विकाल[३] ते त्रिकालनाथ।
राखिलेहु राखिलेहु राखिलेहु विश्वनाथ ।।३४।।

१ अन्याय २ पार्थक्य ३ संध्या

धर्म और अन्याय, धर्म-अधर्म का विचार कर भेद अभेद और पार्थक्य

में भी प्रकाश करने वाले, काल, अकाल और संध्या के त्रिकालनाथ, हे विश्वनाथ ! मेरी रक्षा करो।

शर्म ते अशर्म्म ते सुनों अशेष शर्म्मदानि।
भूख ते पियास ते संताप तोष ते बखानि॥
वृद्धि ते समृद्धि ते प्रसिद्ध ते प्रसिधद् नाथ।
राखिलेहु राखिलेहु राखिलेहु विश्वनाथ॥३५॥

शर्म अशर्म से हे अशेष शर्मदानि ! भूख, प्यास, संताप, तोष, वृद्धि, समृद्धि, प्रसिद्धि को देने वाले हे विश्वनाथ ! अब मेरी रक्षा करो।

मर्ण ते सुजन्न ते कुजन्म ते सदा सनेह।
तात मात मोह ते विमोह ते महा विदेह॥
लोक ते अलोक ते त्रिलोक ते त्रिलोकनाथ।
राखिलेहु राखिलेहु राखिलेहु विश्वनाथ॥३६॥

जीवन मरण और कुजन्म तक से स्नेह रखने वाले, माता-पिता, मोह और विमोह से सदा विरक्त रहने वाले, लोक अलोक, त्रिलोक के हे लोकनाथ विश्वनाथ ! मेरी अब रक्षा करो।

मित्र दोष मंत्र दोष राज दोषते कृपालु।
देव दोष विष्णु दोष ब्रह्म दोषते दयालु॥
वेद दोषते अनाथ दोषते अदोषनाथ।
राखिलेहु राखिलेहु राखिलेहु विश्वनाथ॥३७॥

मित्रदोष, मंत्रदोष, राजदोष में भी कृपा करने वाले, देवदोष, विष्णु दोष और ब्रह्मदोष में भी दया करने वाले, वेददोष से मुक्त, दोष और अदोष के हे नाथ विश्वनाथ ! अब मेरी रक्षा करो।

विश्वनाथ उवाच

दोहा—राखि लेऊँ तोकों सदा सबते केशव राइ।
याहि पढ़े प्रति वासरहि, सो सबहीं सुखपाइ॥३८॥

तेरी सब प्रकार से रक्षा करूँगा । इसे जो भी रात दिन पढ़ेगा, उसे सुख मिलेगा ।

पाइ प्रबोध उदो हिये, विश्वनाथ ये हर्षि ।
गंगा जू को जाइ पुनि करे प्रणाम महर्षि ॥३९॥

विवेक ने विश्वनाथ से प्रबोध पाकर गंगा जी को जाकर प्रणाम किया ।

भुजंग प्रयात—शिरश्चन्द्र की चन्द्रिका चारु हाशे ।
महापातकी ध्वांतधाम प्रणाशे ॥
फणी दुग्धभावे अनंगादि अंगे ।
नमो देवि गंगे नमो देवि गंगे ॥४०॥

शिरश्चन्द्र की तू सुन्दर चन्द्रिका है । महापातकी लोगों के पातकों का तू विनाश करने वाली है । फणी को दूध अच्छा लगता है किन्तु शिवजी तुझे शरीर पर धारण किये हुए हैं । हे देविगंगे ! नमो नमो ।

धारामध्य ब्रह्माण्ड को भेदि आई ।
जगज्जीवन उद्धार को वेद गाई ॥
कही निगुनै स्वप्रकाशे विहंगे ।
नमो देवि गंगे नमो देवि गंगे ॥४१॥

तू पृथ्वी के बीच में ब्रह्माण्ड को भेद करके आई । संसार के उद्धार के लिए वेदों ने तेरा गान किया । हे देवि गंगे ! नमो नमो ।

तजे देह देही पवो मध्य न्हाहा ।
ततो भेदिकै न्याइ ब्रह्माण्ड जाहीं ॥
भवच्छेदिकै तिव तुंगे तरंगे ।
नमो देवि गंगे नमो देवि गंगे ॥४२॥

तेरे में स्नान कर शरीर और जीव दोनों से मुक्त होकर ब्रह्माण्ड में मिल जाते हैं । तेरी ऊँची ऊँची तरंगों में संसार की भव बाधाओं को नष्ट करने की शक्ति है । हे देवि गंगे ! नमो नमो ।

चले निश्चले निर्मले निर्वि॰ारे।
असंसार संसार मध्ये कसारे॥
अमेय प्रभावै अनन्ते अनंगे।
नमो देवि गंगे नमो देवि गंगे॥४३॥

निश्चल, निर्मल, निर्विकार रूप में इस असार संसार में तू प्रवाहित होती रहती है। तेरा प्रभाव अनन्त और असीमित है। हे देवि गंगे! नमो नमो।

सदासर्व दोषादि संसोष कारे।
महामोह मातंग अंग प्रहारे॥
चिदानन्द भावेधि शान्ते सुरंगे।
नमो देवि गंगे नमो देवि गंगे॥४४॥

सदैव सभी दोषों का विनाश करने वाली, मातङ्ग महामोह का विनाश करने वाली, शास्वत आनन्द देने वाली, भावों को पैदा करने वाली, शान्तिमयी, हे देवि गंगे! नमो नमो।

धरालोक पाताल स्वर्ग प्रकाशे।
मनोवाक कायाज कर्म प्रणाशे॥
जगन्मातु भावे सदा शुद्ध अंगे।
नमो देवि गंगे नमो देवि गंगे॥४५॥

पृथ्वी, पाताल तथा स्वर्ग लोक को प्रकाशित करने वाली, मानसिक एवं शारीरिक कर्मों का विनाश करने वाली, सदा शुद्ध रहने वाली, तू जगत माता है। हे देवि गंगे! नमो नमो।

सुने स्वप्नहूँ में विलोके स्मरेहू।
लिए होत निष्काम नाम रहेहू॥
करे अच्छ वे स्नान प्रत्यक्ष अंगे।
नमो देवि गंगे नमो देवि गंगे॥४६॥

स्वप्न में भी सुनने से, देखने से, स्मरण करने से, निष्काम नाम लेने से और अच्छी प्रकार से स्नान करने से सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। हे देवि गंगे ! नमो नमो।

गिराधौ[१] रमाधो[२] उमाधो[३] अनन्ता[४]।
स्मरे देविता नाम ब्रह्मांड रन्ता॥
कहे राइ केशौ विवेक प्रसंगे।
नमो देवि गंगे नमो देवि गंगे॥४७॥

(१) ब्रह्मा (२) विष्णु, रमाधव (३) शिव, उमाधव (४) पार्वती।

यदि देवि तेरा कोई स्मरण करे तो ब्रह्मा, विष्णु, शिव, पार्वती आदि को भी पा सकता है। केशव विवेक के प्रसंग में कहते हैं कि हे देवि गंगे! नमो नमो।

श्री गंगोवाच

दोहा—सर्वभाव तु सर्वदा, पावन केशव राइ।
यह अष्टक नित प्रति पढ़ैं, सो नित गंग न्हाइ॥
गंगा जूहि प्रणाम करि, केशव उतरे पार।
जात विवेकहि करक में, दुंदुभि बजे अपार॥४८॥

सदैव सब प्रकार के भावों से तू शुद्ध है। इस अष्टक का जो नित्य अध्ययन करेगा उसे नित्य गंगा स्नान करने के बराबर श्रेय प्राप्त होगा। गंगा जी को प्रणाम कर केशव पार लग गये। विवेक के सेना में प्रवेश करते ही दुंदुभी बज उठी।

इति श्री विज्ञानगीतायां चिदानंदमग्नायां श्री विन्दु माधव विश्वनाथ गंगा स्तुति वर्णनंनाम एकादश प्रभावः॥११॥

द्वादश प्रभाव

दोहा—युद्ध वर्णियो द्वादशे, महामोह की हारि ।
केशव राइ विवेक को जय वर्णिवो विचारि ॥ १ ॥

द्वितीय प्रभाव में महामोह और विवेक के युद्ध में महामोह की पराजय और विवेक का वर्णन है ।

रूपमाला छंद–हय हीय गर्जि गयंद घोष रथीनि के तेहि काल ।
वहु भेवरुंज मृदङ्ग तुङ्ग बजी बड़ी करनाल ॥
बहुढ़ोल दुंदुभि लोल राजत विरूद वंदि प्रकाश ।
तहँ धूरि भूमि उठी दशोंदिशि पूरियौ सुअकाश ॥२॥

घोड़े हिनहिना रहे थे । हाथी गर्ज रहे थे । रथों के चलने से घोष हो रहा था । अनेक प्रकार से मृदंग, तुंग और करताल बज उठो । ढोल और दुंदुभी भी बज उठी । वंदीगण विरुदावली गा रहे हैं । वहां पर धूल इतने जोरों से उठी कि उसने आकाश को अच्छादित कर लिया ।

दोहा—महामोह तब कोह करि, पठये दूत प्रचंड ।
धम कमयुत युद्ध को, पट पाखन्ड अखंड ॥ ३ ॥

तब महामोह ने अत्यधिक क्रुद्ध होकर अपने प्रचण्ड दूतों को भेजा । धैर्य और कर्म से युत युद्ध में पाखण्ड अत्यधिक चतुर है ।

तब विवेक प्रति युद्ध को, आगम सुनत नसेत
पठई तहाँ सरस्वती, सन्मुख सशर निकेत ॥ ४ ॥

युद्ध के निमित्त पाखण्ड का आगम सुनकर विवेक ने सरस्वती को घर से युद्ध करने के लिये भेजा ।

रूपमाला छंद–शिर धर्म शास्त्र मुखेन्दु सुन्दर वेद लोचन तीनि ।
हरि भक्ति को महिमा हृदयहि निकेत वादिक तीनि ॥
सांख्य बाहुक नाद भाषित भाष्य न्याय सुनाद ॥
रण शोभमान सरस्वती जनु अंबिका अविषाद ॥ ५ ॥

शिर पर धर्म शास्त्र है । चन्द्र सदृश मुख है । उसके तीन नेत्र हैं। उसके हृदय में हरि-भक्ति की महिमा है । तीन लोग मंत्रणा करने वाले हैं। रण में सरस्वती ऐसी शोभित हो रही है मानों विषाद मुक्त अम्बिका हो ।

सो गदादिक भागिगे सबहू न मागध इङ्ग ।
सिन्धु पार गये तिएक अनेक वङ्ग कलिङ्ग ॥
पामरादि दिगम्बराधि कपालकादि अशेष ।
भारये अरु मार बार गये तिनीचनि मेष ॥ ६ ॥

सभी भिखारी मागध को भाग गये । उनमें से कुछ सिन्धु पार भी गये और वंग तथा कलिंग को भी गये । पामर, दिगम्बर, कापालिक आदि सभी मार पड़ने पर भाग खड़े हुये ।

दोहा—निदंक एकादशिनि के, मध्य देश में वार ।
अरु पाषण्ड धर्म सब, गये सिन्धु के पार ॥ ७ ॥

एकादशी की निन्दा करने वाले सभी मध्य देश को चले गये । पाषण्ड और धैर्य सिन्धु पार चले गये ।

जब आयो रणलोम तब, आयो दीरघ दान ।
देखन लागे देव गण, तब विक्रम परिमान ॥ ८ ॥

जब रण करने के लिये लोभ और दान आये, तब सभी देवता गण बल विक्रम की सीमाओं का अनुमान करने लगे

दान उवाच

सवैया—स्योपसुदेउ सबै पशु केशव रोमन सूतनिपाट जटे पट ।
भोजन भाजन भूषण देहरे, काटहु कोटिन याचक शंकट ॥
पुत्रनि देहु कलत्रनि देहुरे प्राणनि देहुरे देहु लगी रट ।
लोकनि को भय लोपि विलोकिये दीह दरारनि दारिद
के घट ॥ ९ ॥

पृथ्वी, पशु आदि सभी कुछ दान में दो। भोजन, वस्त्र और आभूषणों को देकर याचकों के अनेक संकटों का विनाश कर दो। पुत्र, कलत्र, और यहां तक कि प्राण को भी दान में देना श्रेयस्कर है। संसार भय को नष्ट कर दो और फैले हुये दुख दैन्य को देखो।

दोहा—आए क्रोध विरोध सब कीने क्रोध अपार।
सहनशील संयुक्त तहँ, आए वस्तु विचार ॥ १० ॥

क्रोध का विरोध करने के लिये सभी आये, किन्तु सभी ने अत्यधिक क्रोध किया। उस उस समय वस्तु विचार सहनशीलता को धारण कर आया।

वस्तु विचार उवाच

सवैया—मारिये काहे को क्यों मरै केशव ऐसे उपायन जी जानिए रे।
एकते रूप अनेक भए सब वेद पुराणनि में सुनिए रे॥
थावर हूँ चर जलहूँ थल देखिये सूरति आपनिए रे।
क्रोध विरोध भए भ्रम भेद सो काम कहा वपुरा गुनिए रे ॥ ११ ॥

किसी को क्यों मारा जाय? वह क्यों मरेगा? किसी के मारने का यह उप वेद पुराण सभी का यही कथन है कि एक रूप से ही अनेक रूप हुये हैं। जलचर, थलचर तथा आकाशचर में अपना ही प्रतिबिम्ब है। भेद के भ्रम से क्रोध दिखाई देता है। बेचारे काम की क्या गिनती की जाय?

दोहा—पुण्य पाप सुख दुख जुरे, आलस उद्यम तत्र।
गर्व प्रणय नय मान मन, कलह काम एकत्र ॥ १२ ॥

पुण्य पाप, सुख दुख, आलस उद्यम, गर्व मान, कलह काम, सभी एक स्थान पर रहते हैं।

योग वियोग सुयोग सों, बहु वियोग अरु भोग।
राग विराग धिराग सों, कोटिन रोग अरोग ॥ १३ ॥

योग विच्छेद और वियोग सुयोग अनेक वियोग तथा भोगों को देने वाला है। राग वैराग्य एवं विराग से अनेक रोग नष्ट होकर स्वस्थता प्राप्त होती है।

अनाचार आचार अरु, सदाचार बिभिचार।
सत्य असत्यनि आदिदै, नित्यानित्य प्रहार ॥ १४ ॥

आचार तथा अनाचार, व्याभिचार एवं सदाचार, सत्य और असत्य में नित्य प्रति आघात प्रतिघात होता रहता है।

महामोह तब झुकि उठे, लखि सत सङ्ग विवेक।
भरहराइ भट भागि चले, कहा अनेकरु एक ॥ १५ ॥

विवेक का सतसंग देखकर महामोह नतमस्तक हो गया। यह देखकर सारे योधा भाग खड़े हुये, फिर इसमें एक और अनेक का भेद कहां गया।

तुमुल शब्द दुहुँ दिश भयो, भूतल हल्यो अकाश।
देव अदेवनि जानियो, भयो विवेक विनाश ॥ १६ ॥

दोनों दिशाओं में उस समय ऐसा भयानक शब्द हुआ कि उससे आकाश और पृथ्वी दोनों ही कँप गये। देव और अदेवों ने समझा कि विवेक का विनाश हो गया।

ब्रह्म दोष तब आपने, वंश हन्यो करि कोह।
जाइ पिता के पेट में, भगि चल्यो महामोह ॥ १७ ॥

महामोह ने ब्रह्मदोष के कारण से क्रुद्धित होकर अपने वंश का विनाश कर दिया। महामोह भाग कर अपने पिता के पेट में समा गया।

रूपमाला छन्द—रण जीति खेत बजाइ दुँदुभि जोउ लै सुख पाइ।
करि गंग को हर को रमापति को प्रणाम बनाइ ॥
बहु दै द्विजाति नि दान बंदिनिसों पढ़ाइ सुगीत।
तब राज राज विवेक मंदिर मे गए सङ्गमीत॥१८॥

विवेक ने अत्यधिक प्रसन्न होकर रणक्षेत्र में दुंदुभी बजाकर गंगा,

शिव और विष्णु को प्रणाम किया। ब्राह्मणों को दान दिया और चारणों से अनेक प्रकार के गीतों का उच्चारण कराया। उपरोक्त कर्म करने के पश्चात् सतसंग के साथ मंदिर गया।

दोहा—जय को करि विवेक अरु, दै शिर तिलक प्रभाउ।
कही बात सतसङ्ग प्रभु, अरि को करो उपाउ ॥ १९॥

जय प्राप्त करके विवेक के शिर पर तिलक दिया। उस समय सतसंग ने कहा कि अब शत्रु का उपाय करना चाहिये।

रूपमाला छन्द—शत्रु को अरु अग्नि को गण बँचे अवशेषु।
होइ दीरघ दुःखदायक तुच्छ कै जनि लेषु ॥
नीति भाषत वेद है नृप धर्म शास्त्र पुराण।
हौं निवेदन ताहि ते किय विज्ञ जानि सुजान॥२०॥

शत्रु और अग्नि को तुच्छ समझने पर अत्यधिक दुख होता है। इस नीति का वर्णन वेद पुराण और सभी धर्म शास्त्रों ने किया है। आप को चतुर और विज्ञ जानकर ही हमने निवेदन किया है।

राजोवाच

दोहा—भली कही यह बात तैं, अब मोसों समुझाइ।
कहो जाहि हरि भक्त सों, करै विनाश उपाइ ॥

तुमने मुझे यह बात समझाकर बहुत अच्छा किया। अब हरि भक्त से जाकर कहो कि वह विनाश का उपाय बतावे।

इति श्री विज्ञानगीतायां चिदानन्दमग्नायां विवेक जय वर्णनो नाम द्वादश प्रभावः ॥ १२ ॥

त्रयोदश प्रभाव

दोहा—मनहि आनि समुझाई है, गिरा गूढ़ मति साधि।
माया दरशन करहिगे, तेरह मे कषि गाधि ॥ १ ॥

बुद्धि का सन्तुलन करके और गंभीर तथा गूढ़ वाणी में मन को आकर समझाया। तेरहवें प्रभाव में कषि गाधि (हानिकारक, विश्वामित्र के पिता) माया का दर्शन करेंगे।

रूपमाला छन्द—भीम भाँति विलोकियै रणभूमि भूअतिअंत।
श्रोणकी सरिता दुरन्त अनन्त रूप सुनन्त ॥
यत्र तत्र धुजा परे पट दीह देहनि भूप।
टूटि टूटि परैं मनों बहु वात वृक्ष अनूप ॥ २ ॥

अनेक योधा भीम की भांति रणभूमि पर पड़े हुए हैं। खून की नदी बह उठी थी, ऐसा सुना है जहां तहां ध्वाजाएँ पड़ी हैं और अनेक राजाओं के वस्त्र भी पड़े हुये हैं। ऐसा लगता है कि मानो अनेक वृक्षों की डालें टूट कर गिर पड़ीं हों।

पुंज कुंजर शुभ्र स्यन्दन शोभियै अतिशूर।
ठेलि ठेलि चले गिरीशनि पेलि शोणितपूर ॥
ग्राह तुंग तरंग कच्छप चारु चवँर विशाल।
चक्र से रथ चक्रपैरत गृद्ध वृद्ध मराल ॥३॥

अनेक हाथी और रथों पर वीर योद्धा शोभित हैं। खून की धारा ने इन सभी को बहा दिया है। उस धारा में अनेक घोड़े कछुए और सुन्दर चँवर बहते जा रहे हैं। चक्र के समान रथ चक्र धारा में बह रहे हैं।

हरिलीला छन्द—हाकाम हा तनय क्रोध, विरोध लोभ।
हा ब्रह्म दोष नृप दोष, कृतघ्न क्षोभ ॥
मोको परी विपति को, न छुड़ाइ लेइ।
कासो कहो बचन कौन बचाइ देई ॥ ४ ॥

मन को जब रणभूमि का दारुण समाचार प्राप्त हुआ, तब पुत्र के विनाश से वह अत्यधिक दुखी होकर कलाप कर रोने लगा। उसी का चित्र है।

काम, क्रोध, विरोध, लोभ, ब्रह्म दोष, नृप दोष, कृतघ्न क्षोभ आदि को सम्बोधित करके मन कहता है कि मुझे अब विपत्ति पड़ी है। अब कौन इससे मुझे छुड़ायेगा ? किससे अपनी बात कहूं, जो कि मुझे बचाले।

संकल्प उवाच

दोहा—महाराज समझो हिये, कछु न कीजै शोक।
चिरंजीव प्रभु चाहिये, ताहिं होइगो लोक॥ ५॥

महाराज अपने हृदय में सब कुछ समझिये। किसी भी प्रकार का शोक नहीं करना चाहिये। इस समय चिरंजीवी प्रभु को आवश्यकता है। सारा संसार उसी का होगा।

पठइ दई हरि भक्ति तहँ सरस्वती बडभाग।
उपदेशन मत मूढ़को, उपजावन वैराग॥ ६॥

भाग्यशालिनी हरि भक्ति ने सरस्वती को मूढ़ मन को समझाने के लिये भेज दिया, जिससे कि उसके मन में भी वैराग्य उत्पन्न हो जाय।

रूपमाला छन्द–पुत्र मित्र कलत्र के तजि वत्स दुसह सोग।
कौन के भट कौन की दुहिता मृषा सब लोग॥
होत कल्प सतायु देव तऊ सबै नशिजात।
संसार की गति आनि कै अब कौन को पछितात॥६॥

पुत्र, मित्र और कलत्र के कारण होने वाले असह्य दुखों को छोड़ देना चाहिये। कौन किसका योद्धा है और कौन किसकी पुत्री है ? यह सब व्यर्थ की वस्तुएँ हैं। सभी देव कल्प सतायु होते हैं, फिर भी उनका विनाश हो जाता है। ससार की गति विधि से परिचित होने के पश्चात किसके लिये पश्चाताप करते हो।

दोहा—एक ब्रह्म सांचो सदा, झूठो यह संसार।
कौन लोभ मद काम को, को सुत मित्र विचार ॥८॥

केवल एक ब्रह्म सत्य है और सब कुछ झूठ है। लोभ, मद और काम क्या हैं? अर्थात कुछ नहीं। पुत्र और मित्र का क्या विचार किया जाय।

तुम्हें गए तजि वार बहु, तुमहुँ तजे बहुवार।
तिन लगि सोच कहा करो, रे बावरे गँवार ॥९॥

वे पता नहीं कितनी बार तुम्हें छोडकर चले गये और पता नहीं कितनी बार तुमने उन्हें छोड़ दिया होगा। हे पागल मूर्ख! उन सब के लिये क्या विचार करता है।

मन उवाच

शोक विदूषित उरसि अब नहिं विवेक अवकाश।
केवल प्रेम प्रकाश को समुझतु मोह विलास ॥ १०

मन सरस्वती के उपरोक्त वचनों से सन्तुष्ट नहीं हुआ। अतएव उसने कहा कि हृदय शोक से अत्यधिक संतप्त है। अतएव विवेक के लिये उसमें अब कोई स्थान नहीं है। इस पर सरस्वती ने समझाया कि केवल मोह विलास को ही प्रेम का प्रकाशन समझते हो अर्थात मोह का प्रकटी-करण प्रेम नहीं है।

सरस्वती उवाच

नाराच छंद—हिये विना परेसु कोजु प्रेम वृक्ष लाइयै।
मनोभिलाष लाख नीर सींचि कै बचाइयै ॥
अकालकाल अग्निदोष पाइ कैसहूँ जरै।
त्रिलोक कै अशेष शोक फूल फूलिकै फरै ॥११॥

स्नेह से शून्य यदि कोई प्रेम वृक्ष लगावे और मनोभिलाषा के जल से उसे सींचकर रक्षा करता रहे, तो भी वह अकाल ही नष्ट हो जाता है

अथवा अग्नि में नष्ट हो जाता है। वह किसी भी प्रकार फल-फूल नहीं पाता है, किन्तु उसके अभाव में उसका शोक ही फूल फल कर खूब फलता है।

मन उवाच

दोहा—यह इक बात भली भई, श्री भगवती कृपाल।
दीनो दरशन आनि अब, तुम हमको इहिकाल ॥१२॥

यह बहुत ही अच्छा हुआ कि हमको और तुमको इस समय भगवती ने कृपा करके दर्शन दिए।

सरस्वती उवाच

दोहा—होन हार जग बात कछु, ह्वै ही रहै निदान।
ब्रह्माहू मेटन लगै, तउ न मिटै परवान ॥१३॥

होनहार होकर ही रहता है। यदि उसे एक बार ब्रह्मा भी मिटाना चाहें, तो भी नहीं मिटेगा।

मन उवाच

दोहा—देवी कहियै कौन विधि, मेरो मरिबो होइ।
जाइ मिलौं लोभादिकनि, इहां मरै को रोइ ॥१४॥

हे देवी ! किस विधि से मेरी मृत्यु होगी, वह मुझे बता दो, जिससे कि मैं लोभ आदि से जाकर मिल लूं। यहां पर रो-रो कर कौन मरे ?

देवी उवाच

यह जग जैसे धूरि कण दीह बाच सब होइ।
को जाने उड़िजात कहँ, मरे न मिलई काइ ॥१५॥

यह सारा संसार धूलि का कण है। पता नहीं उड़ कर कहां चला जाता है। मरने पर किसी का भी मिलन नहीं होता है।

मन उवाच

कहिते प्रभुता बढ़ति, दिन दिन होति प्रकाश।
देवी कहिय करि कृपा, किहिते होत विनाश ॥१६॥

संसार में प्रभुता दिन प्रति दिन कैसे बढ़ती है? और साथ ही यह भी देवी, बताओ कि विनाश किस प्रकार होता है।

देवी उवाच

आयुर्बल कुल शोभ श्री, प्रभुतादिक तरु जान।
ब्रह्म भक्ति जल शक्तिते, बाढ़त है दिन मान ॥१७॥

आयुर्बल, कुल की शोभा, प्रभुता आदि को वृक्ष मानकर उसे रात दिन ब्रह्म भक्ति से सींचना चाहिए; इसी से बढ़ेगा।

नित्य बात तू सत्य यह, मानो मन अवदात।
ब्रह्म दोष के अग्निकण, सब समूल जरिजात ॥१८॥

हे मन! यह बात तू सत्य करके मान लो कि ब्रह्म दोष के अग्नि कणों से सर्वस्व का समूल विनाश हो जाता है।

रूपमाला छन्द—ब्रह्मदोष प्रवृत्ति के कुल अनिभो अवतार।
पत्र पुष्प समूल कारण वंश भो सब छार ॥
ब्रह्म भक्ति निवृत्ति के कुल कल्प बेलि समान।
ताप ताप प्रभाव के बल बढ़तु है दिनमान ॥१६॥

प्रवृत्ति के कुल में ब्रह्मदोष का जन्म हुआ। इसी कारण से उसका समूल विनाश हो गया। ब्रह्म भक्ति का जन्म निवृत्ति के घर हुआ और वह कल्प बेलि के समान बढ़ती रही। ताप के प्रभाव से उस का वंश बढ़ता ही जाता है।

दोहा—ब्रह्मदोष जिनके हिये, उपजत क्यों हूँ आनि।
तिनके कुल के नाश मन, मनते नियत बखानि ॥२०॥

जिनके हृदय में किसी भी प्रकार से ब्रह्मदोष का जन्म हो जाता है। उनके वश का विनाश निश्चित ही हो जाता है।

पातक का नहिं जानही, सपनेहूँ सब साधु।
दोषन से संसर्ग के, जिहि जाको आराधु ॥२१॥

साधुओं को पाप का ज्ञान स्वप्न में भी नहीं होता है। उसकी उत्पत्ति दोषों के संसर्ग से ही होती है।

मन उवाच

देहु कृपा करि भगवती, मोकहँ सो उपदेश।
जिहि ममता मिटजाइ सब, उपजत जामे क्लेश ॥२२॥

हे भगवती! अब कृपा करके मुझे वह उपदेश दो, जिससे कि उस सारी ममता का विनाश हो जाय, जो कि कष्ट को पैदा करने वाली है।

रूपमाला छन्द—आपुने उपजे कहो मम गोत एक सुजान।
एक पुत्र बखानिये अरु एक जूक प्रमान॥
पोखियै सुत क्यों तजौं सब जूक जाति अखेद।
शोचनीय अशोचनीय न मूढ़ मानत भेद ॥२३॥

आप के अंश से ही मेरे गोत्र में उस सुजान को उत्पत्ति हुई। आप एक को पुत्र कहती हैं और दूसरे को जूक। सुत का क्यों पालन पोषण करूँ? जूक के लिए खेद क्यों न करूँ? शोक और अशोक के बीच में मूर्ख कोई भी भेद नहीं मानते हैं।

दोहा—मन पुत्रादिक जो सबै, यद्यपि जगत अनित्त।
तिन विन और कछू न अब, आवे मेरे चित्त ॥२४॥

यद्यपि ससार के लिए पुत्र आदि सब अनित्य हैं, किन्तु उनके अभाव में मेरे चित्त में कुछ नहीं रुमा सकता अर्थात समझने को शक्ति मुझमें नहीं रही है।

सरस्वती उवाच

मोह मनी माया वशी, और न मन में आइ।
ताके संभ्रम विभ्रमनि, भ्रमेन महि अकुलाइ ॥२५॥

मोह और माया के वशीभूत होने पर मन में और कुछ नहीं आता है। उसके संभ्रम में पड़कर व्यक्ति आवागमन के चक्कर में पड़ा रहता है।

जे जग में जनमत हैं, तिनके केशव अंत।
सबही सबको सर्वदा, माया परम दुरन्त ॥२६॥

जिनका संसार में जन्म होता है, उनका विनाश भी अवश्यंभावी है। सबके लिए सदैव माया का बन्धन कठिन रहता है।

मन उवाच

माया को संक्षेप सों कहियै कछू विलास।
जानि युक्त क्रमछाड़ियै, उपजै चित्त उदास ॥२७॥

माया का संक्षेप में कुछ वर्णन कीजिए। इस प्रकार से उसका वर्णन करिये, जिससे कुछ चित्त में वैराग्य उत्पन्न हो सके।

सरस्वती उवाच

दोधक—संसृति नाम कहावति माया।
जानहु ताकहँ मोह की जाया ॥
संभ्रम विभ्रम संतति जाकी।
स्वप्न समान कथा सब ताकी ॥२८॥

माया का संसृति नाम है। वह मोह को उत्पन्न करने वाली है। संभ्रम और विभ्रम उसकी संताने हैं। उसकी सम्पूर्ण कहानी स्वप्न के समान है।

दोहा—ताकी परम विचित्रता, जानि परै कछु तोहि ॥
सोइ कथा अब सब कहो, जो बूझी है मोहि ॥२९॥

उसमें एक विचित्र प्रकार की विचित्रता है, जिसका तुझे थोड़ा बहुत ज्ञान है। अब मैं वह सारी कथा कहूँगा, जिसे तूने पूछा है।

दोधक—भूतल मालव देश वसेजू।
तामहँ ब्रह्मण गाधि वसेजू॥
सोदर सुंदरि बंधु तजे जू।
बोध को कानन जाइ सजे जू॥३०॥

इस पृथ्वी पर एक मालव देश है। उसमें गाधि नाम का ब्राह्मण वास करता है। उसने अपने सभी सम्बन्धियों को छोड़ दिया और बोध के निमित्त वन में जाकर रहने लगा।

सुन्दर स्वच्छ सरोवर देख्यो।
शीतल साधु तपोमय लेख्यो॥
तामहँ पैठि तपो व्रत लीनो।
सोतहँ यक्ष जलै घर कीनो॥३१॥

वहां पर उसने सुन्दर और स्वच्छ तालाब देखा। उसको अत्यधिक शीतल देखकर तपस्या के लिए उपयुक्त पाया। उस सरोवर में बैठकर तप का व्रत ले लिया। उस जल में यक्ष ने भी अपना घर बनाया था।

दोहा—ताको धीरज देखि कै, ह्वै कृपालु भगवान।
देख्यो गाधि अगाधिमति, दरशन दयो अनंत॥३२॥

उसके धैर्य को देखकर भगवान उस पर अत्यधिक कृपालु हो गये थे। अगाध बुद्धि वाले गधि ब्राह्मण को देखकर भगवान ने उसे दर्शन दिया।

श्रीभगवानुवाच

सुंदरी छन्द—बा[illegible]हु विप्र तजो जल।
आ[illegible]लकी गहिजै फल॥
मांगहु [illegible]य मांझ रह्यो बसि।
आन लहा भगवंत कह्यो हंसि॥३३॥

हे विप्र ! जल छोड़कर अब बाहर चले आओ। जल में जो तपस्या की है, उसका फल आकर ले लो। भगवान ने हँसकर कहा कि जो कुछ भी तुम्हारी इच्छा हो, उसे मांग लो।

गाधि उवाच

रूपमाला छन्द—विश्व के हिय पद्म के अलि सर्वदा सर्वज्ञ।
सर्वदा सब के हितू तुमको न जानत अज्ञ॥
दीन देखि दया करी प्रभु नित्य दीनदयाल।
देहु जू वर एक मोकहँ विश्व के प्रति पाल॥३४॥

आप विश्व के हृदय सम्राट हैं, कमल पर भ्रमर की भांति मुग्ध होने वाले हैं। सदैव और सब कालों में सब कुछ जानने वाले हो। सदैव ही तुम सब के हितू हो। मुझे दीन देखकर तुमने मेरे ऊपर अत्यधिक कृपा की। हे विश्व का प्रति पालन करने वाले ! मुझे एक वर दो।

दोहा—अद्भुत माया रावरी, महामोह तममित्र।
देख्यो चाहत हौं कछू ताको जगत चरित्र॥३५॥

एक अद्भुत माया है। वह महामोह और अंधकार की मित्र है। संसार में उसके चरित्र को देखना चाहता हूँ।

सरस्वती छन्द—एवमस्तु हरि हंसि कह्यो, पीछे भए अदृष्ट।
ता दिनते ताके भई, हरि माया अति इष्ट॥३६॥

एवमस्तु कहकर भगवान अदृष्ट हो गये। उस दिन से उसे भगवान की माया अत्यधिक प्रिय हो गई।

सुंदरी—एक द्योस जल मध्य रह्यो जब।
कै सिगरी विधि ध्यान करयो तब॥
आपुहिं आपनही घर ही घर।
डीठि गिरयो गत प्राण परयो घर॥३७॥

एक दिन जब मैं जल के बीच में था तब मैंने सम्पूर्ण विधि का ध्यान किया। अपने आप ही अपने घर पर दृष्टि पड़ी। परिणाम स्वरूप घर में प्राण पड़ गये।

रोवत बंधु अशेष बढ़्यो दुख।
चुंबति गोद लिए जननी मुख॥
ले गये लोग सबै सरिता तट।
वारि दयो लगि रोवन की रट॥३८॥

बंधु विलाप करने लगा और अशेष का दुख बढ़ गया। माता गोद में लिए हुए उसका चुम्बन कर रही थी। उसे सरिता के किनारे सभी लोग ले गये। वहां पर जाकर उसने रोना बंद कर दिया।

जाइ चंडाल को पुत्र भयो मुनि।
ब्याह करयो पितु मातु बड़ो गुनि॥
क्रीड़तु है वन वीथिनि मैं कित।
ज्यों सँग काक विलोकिय कोकिल॥३९॥

मुनि जाकर के चण्डाल का पुत्र हुआ। माता-पिता ने बड़े ही उत्साह और उमंग के साथ उसका विवाह किया। बन की गलियों में वह क्रीणा करता है। वह बालकों के बीच में क्रीड़ा करता हुआ उसी प्रकार शोभा देता है, जिस प्रकार से कौओं के बीच में कोयल।

ले तरुणी तरुणे अनुरागनि।
खेलत डोलत बाग तड़ागनि॥
फूलनि में दोउ फूले फिरैं तन।
ज्यों अविनी अलि साथ रमैं वन॥४०॥

बागों में तरुण और तरुणी दोनो के साथ प्रेम पूर्वक खेलता है। फूलों के बीच में दोनों ही प्रसन्न होकर घूमते हैं। वे दोनों उसी प्रकार से प्रेम में मग्न हैं, जिस प्रकार से कमलिनी पर भ्रमर मुग्ध रहता है।

दोहा—एक दिना त्रिय पुत्र ले, गई पिता के गेह ।
तब ता केशव वंश को, काल वश्य भइ देह ॥४१॥

एक दिन स्त्री पुत्र को लेकर पिता के घर गयी । उस दिन से उसका वंश काल के वश में हो गया ।

रूपमाला छन्द—छाँड़िगो जबहूँ न मंडल तात मात वियोग ।
करि मण्डल त्यों चल्यो मुनि पुण्य काल संयोग ॥
काल के यश राज भो तिहि देशको तिहिकाल ।
लेगए गहि ताहि भूप भयो सुबुद्धि विशाल ॥४२॥

माता-पिता के वियोग में जब उससे पृथ्वी मण्डल नहीं छोड़ा गया, तब वह पुण्य के संयोग के अवसर पर चला । उस समय वह देश काल के वश में हो गया । उसको सभी लोग पकड़ कर ले गये और वहीं वह बुद्धिशाली राजा हुआ ।

छत्र चामर शीश दे भये मंत्रि मित्र संयुक्त ।
पाइ थोड़े मत्त दन्ती दुःखते भये मुक्त ॥
संगले बहु सुंदरी वन वाग जाइ तड़ाग ।
नृत्य गीत कवित्य नाटक रंग राग सभाग ॥४३॥

शिर पर छत्र धारण किया और ऊपर चँवर चलने लगा । मित्र और मंत्रियों से युक्त हुआ । थोड़े से हाथियों को पाकर वह सभी दुखों से मुक्त हो गया । अनेक सुन्दरियों को बन में ले जाकर नृत्य, गीत, कविता, नाटक आदि राग-रंगों में भाग लेने लगा ।

सवैया—अक्षकुमार सो यक्ष सुतानि में,
ऐननि में कर शाइल सोहै ।
राशिभि वेशिनि सोसुभलाल,
मुनैअनि में कल कोकिलसोहै ॥
केशवराइ तजे अलिनी मलिनी,

अलिसो नलि नीति में सोहै।
काम कुमार सो की महीपति,
राज कुमारिनि के संग सोहै ॥४४॥

अक्षकुमार यक्ष के पुत्रों में उन्हीं के समान शोभा देता है। भ्रमर मालिनी पुष्प में शोभा नहीं पाता है। वह कमल के पुष्प में ही सुशोभित होता है। काम का पुत्र राज कुमारों के साथ ही शोभा देता है।

दोहा—संग चले ता नृपति भव, कीर देश को जाइ।
आठ बरस लगि राजकिय, शत्रु अनेक नशाइ॥४५॥

उस राजा ने अनेक प्रकार के शत्रुओं का विनाश करके अठारह वर्ष तक कीर देश में राज्य किया।

एक दिवस ता श्वपच की, तरुणी पुत्र समेत।
जाति हुती घर आपने, उतरी बाग निकेत॥४६॥

एक दिन तरुणी अपने पुत्र के साथ अपने घर जा रही थी। मार्ग के बाग में रुक गई।

सुंदरी—भूप गयो तरुणी सँग ले सब।
भेंट भई तरुणी युत सो सब॥
पुत्र त्रिया पहिचानि लगे उर।
राइ उठी तरुणी तब आतुर॥४७॥

राजा सभी तरुणियों को लेकर गया। वहीं पर उसकी तरुणी से भेंट हुई। पुत्र, और स्त्री को पहचान कर हृदय से लगा लिया। उस समय तरुणी अत्यधिक व्यकुल होकर रोने लगी।

दोहा—रानिन मंत्री मित्रजन, [illegible] जात चंडारु।
सुंदरि सुनले संग घर, [illegible] नृप मति चारु।४८॥

रानी मंत्री, और मित्र जनो ने उसे चंडाल जाति का समझा। पत्र और स्त्री दोनों को लेकर राजा घर आया।

रानिन अपनी शुद्ध लगि, कीनो अग्नि प्रवेश।
पीछे मंत्री मित्र जन, दुखित भयो सब देश ॥४९॥

रानियों ने अपनी शुद्धि के लिए अग्नि में प्रवेश किया। तत्पश्चात मंत्री, मित्र और सभी देश वासी अत्यधिक दुखी हुए।

ताके पीछे श्वपचहूँ, कीन्हीं मन मे लाज॥
जरयो अग्नि में आपुहीं, छोड़ सबै सुखसाज ॥५०॥

उसके बाद श्वपच ने भी अपने मन में लज्जा का अनुभव किया। अपने सुख के सभी साधनों को आग में फेंक करके श्वपच अग्नि में जल उठा।

तारक छन्द—यहि बिधि प्रबुद्धि सुगाधि भयोजू।
भ्रम भार विचारन चित्त छयो जू॥
अब जीवत हों किधों ईश मरयं हीं।
गहि लेइको मोहि प्रवाह परयो हों।

इस प्रकार से प्रबुद्धि सुगाधि हुए। चित्त से भ्रम का भार कम नहीं हुआ। अब मैं जीवत हूँ अथवा ईश्वर ही मर गया है। मुझे कौन पकड़ कर निकाले, क्योंकि मैं प्रवाह में बहता जा रहा हूँ।

दोहा—जलते निकस्यो आश्रमहि, गाधि गयो अकुलाइ।
संभ्रम चित्त न छाँड़ई, बहुत रह्यो समुझाइ ॥५२॥

जल से निकलकर गधि आकुल होकर अपने आश्रम को गया। अनेक प्रकार से उन्होंने अपने को समझाने की चेष्टा की, किन्तु सभ्रम ने छोड़ा नहीं।

अतिथि एक दिन गाधि के, आयो बुद्धि अगाधि।
विधिसों आसन अर्घ्य दै, दूरि करी मग आधि ॥५३॥

एक दिन अगाधिबुद्धि गाधि का अतिथि होकर आया। विधि पूर्वक गाधि ने आसन और अर्घ्य देकर मार्ग की वाधाओं को दूर किया।

सुंदरी छन्द—नए मूल फल फूल धरे सब।
भोजन कै द्विज भूत भए जब॥
बूझन गाधि तिन्हैं बुध धारन।
दुर्बल विप्र कहो किहि कारन॥५४॥

अनेक प्रकार के नए फल फूलों को सामने लाकर रखा। जब बुद्धि भोजन करने के लिए तैयार हुआ, तब गाधि ने पूछा कि हे बिप्र! किस कारण से तुम इतने अधिक दुर्बल हो गये हो।

विप्र उवाच

रूपमाला छन्द—भूमि लोकनि में भल्यो इक कीर देश सुदेश।
भोगयोग समृद्ध लोगनि दुःखको नहिं लेश॥
मास एक बसे तंह हम पूज्य मान सुबुद्धि।
गूढ़ मूढ़ चंडार भोनृप वर्ष अष्ट कुबुद्धि॥५५॥

इस सारी पृथ्वी पर भला और सुन्दर देश केवल कीर देश है। सभी प्रकार के भोग, योग और समृद्धि के लिए सुविधायें है। दुख और क्लेश भी किसी के पास नहीं है। एक मास तक मैंने वहाँ पर बास किया और मेरी सभी ने आराधाना की। आठ वर्षों से एक कुबुद्धि चंडाल राजा हो गया है।

जाति जानि परी खिस्याइ तज्यो सबै तिहिं राजु।
अग्नि मध्य प्रविष्ट भो सुख मंत्रि मित्र समाजु॥
सुन्दरी सिगरी तजी द्विज एक बुद्धि अगाधु।
देखिकै तिनको भए सब दुःख दुःखित साधु॥५६॥

राजा की जाति का जब सबको ज्ञान हुआ, तब सभी ने खिसिया कर उस राजा को छोड़ दिया। मंत्री और मित्रों के साथ सारा ही समाज अग्नि में प्रविष्ट हो गया। सारी ही रानियों ने भी उसे छोड़ दिया। इस अवस्था को देखकर सभी साधु अत्यधिक दुखी हुए।

संसर्ग दोष निवारिवे विप्र जाइ प्रयाग।
स्नान दान अनेकधा तप साधियो बड़भाग।।
भच्छ ह्यां हम भाच्छियो मन इच्छि कै सुख पाइ।
दुःख दुर्वल है गए यह बात वर्णि न जाइ ।।५७।।

इस संसर्ग दोष के निवारण करने के लिये हे विप्र! प्रयाग में शीघ्र ही जाओ। वहां पर स्नान दान और अनेक तप करने से दोष नष्ट हो जायगा। यहां पर मैंने अपनी इच्छानुसार सुख के साथ भोजन किया है। दुख से ही अधिक दुर्बल हो गया हूँ। इस बात का वर्णन नहीं किया जा सकता।

तारक—विप्र महामुनि की सुनि बीना।
बात सबै तिन सत्य कै मानी ।।
अद्भुत भाँति भई दुचिताई।
काहु पै क्यों हू कही नहि जाई ।।५८।।

महामुनि विप्र की सारी ही बात को सुनकर उसे सत्य माना। किन्तु विचित्र प्रकार से एक अचम्भा हुआ, जो किसी भी प्रकार वर्णन नहीं किया जा सकता!

अपनी गति देखन को उठि धायो।
तब उन मंडल विप्र बुलायो ।।
जाइ चंडार के मंदिर देख्यो।
वृतंत सुन्यो सब सांचुकै लेख्यो ।।५९।।

अपनी अवस्था को देखने के लिए दौड़ा। सभी मंडलों के विप्रों को बुलाया। चंडाल के मंदिर को जाकर देखा। वहां पर उससे सुनी हुई सारी बातों को सच्चा पाया।

हुँ-वन कीर देश गयोजू।
बात सुने सब तुल्य भयोजू ।।
देखि चल्यो फिर विप्र सशंक्यो।
वृतंत सुन्यो सब साँचुकै लेख्यो ।।६०।।

वहां से कीर देश को गया। सारी सुनी हुई बातों को उसने अंक पाया। विप्र को देख शंकित होकर चला। मार्ग में चंडाल के पुत्र को देखा।

देखत दौरि सुकंठ लग्यो जू।
विप्र बचाइ छुड़ाइ भयोजू॥
रोवत पीछे पुकारत आवै।
ताज तजो जनि टेरि सुनावै॥६१॥

देखते ही गले में चिपट गया। ब्राह्मण उसे छुड़ाकर अलग हो गया। वह पीछे पीछे रोता और पुकारता हुआ बोला कि हे तात! मुझे मत छोड़ो।

खेलत हो तहँ राज अहेरो।
सो सुन आरत शब्द घनेरो॥
ब्राह्मण भागत जात विलोक्यो।
दौरि कै राज कै लोगनि रोक्यो॥६२॥

वहां पर राजा शिकार खेल रहा था। उसने दुख से भरे हुए शब्दों को सुना। ब्राह्मण को भागता हुआ देखकर राजा के लोगों ने दौड़ करके रोक लिया।

एकहि ठौर करेजन दोऊ।
पूछन बात लगे सब कोऊ॥

एक ही स्थान पर दोनों को एकत्र किया और सभी लोग भागने के रहस्य को पूछने लगे।

राजोवाच

ब्राह्मण तू कहि काहिते भाग्यो।
पीछे तु बालक कहेने लाग्यो॥६३॥

हे ब्राह्मण? तू बता कि क्यों तू भग खड़ा हुआ! तेरे पीछे यह बालक क्यों पड़ा हुआ है?

बालक उवाच

दीन दयालु पिता यह मेरो।
मोकहँ देहु कृपा करि हेरो॥

हे दीन दयालु! यह मेरा पिता है। इसे मुझे कृपा करके दे दीजिए।

ब्राह्मण उवाच

हौंद्विज मालव देश रहोंजू।
कानन में व्रत आल बहो जू।६४॥

मैं मालव देश का रहने वाला ब्राह्मण हूँ। व्रत को धारण करने के निमित्त वन में आया हूँ।

को यह राज न हौं पहिचानो।
काहे ते बापु कहै सो न जानौ।
जाति चंडार सुविप्रन होई।
हूँ नेक जानत है सब कोई॥६५॥

हे राजन! यह कौन है? मैं नहीं पहिचानता। इसने मुझे पिता क्यों कहा? यह भी मैं नहीं जानता। चंडाल जाति का है, इसलिए यह ब्राह्मण नहीं हो सकता है। मैं भला हूँ, इसे हर एक जानता है।

बांधि दुहूँ न वहाँ पहुँचायो।
कै दुहुं देश के बोलि पठायो॥६६॥

उन दोनों को बांध करके वहाँ नहीं पहुँचाया वरन् दोनों देशों के लोगों को बुला भेजा।

दोहा—भामिनि ब्राह्मण के कहे, जाति चंडार चंडार।
राजा वेग बोलाइयो, दुहुंजन को परिवार॥६७॥

ब्राह्मण की स्त्री ने चंडाल जाति का कहा। इस पर राजा ने दोनों परिवार के लोगों को बुला भेजा।

राजा दोऊ राखियो, न्यारे न्यारे ठौर।
भाँति भाँति करि बूझियो, एकै कहै न और ॥६८॥

राजा ने दोनों को अलग अलग स्थानों पर रखा। भांति भांति प्रकार से राजा ने पूछा। दोनों ने अपनी बात के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा।

दोधक छन्द—बंधु दुहूँ जनके जब आये।
बोल लये तब दोउ दिखाये॥
विप्र प्रवेशठते विप्र बखाने।
वेष चंडार चंडारहि माने ॥ ६९॥

दोनों के जब भाई आये, तब राजा ने उनको बुलाकर दिखाया। ब्राह्मण के प्रवेश करते ही उसे विप्र कहा और चंडाल ने प्रवेश करने पर उसे चंडाल कहा।

दोहा—मालव वासी मुनि कहैं कीर देश चंडार।
राजा थके न्याउ करि होइ नहीं निरधार॥ ७०॥

मालववासी मुनि कहते हैं और कीर देश के लोग चंडाल। राजा न्याय करता करता थक गया किन्तु किसी निर्णय पर वह पहुँच नहीं सका।

द्विज को गाधि न थापही थापहि जाति चँडार।
झूठो द्विज साँचो श्वपच राजा करयो विचार॥ ७१॥

राजा ने गाधि को द्विज न मानकर चंडाल ही करके माना। द्विज झूठा श्वपच सच्चा है। राजा ने ऐसा विचार किया।

डारो याहि कराह में तप्त तेल जब होइ।
जौन जरै तौ विप्र है जरै चँडार सुहोइ॥ ७२॥

जब तेल कड़ाह में गर्म हो जाय, तब उसी में डाल दो। यदि यह उसमें जलता नहीं है, तो ब्राह्मण है और जलता है, तो चंडाल है।

कीर देश उवाच

जरि हौं नाहिं कराह मैं कीनै राज विचार ।
याको कर्म दुरन्त है अति चेटकी चंडार ॥ ७३ ॥

हे राजन ! विचार कर लीजिये । यह कड़ाह में जलेगा नहीं । इसका कर्म बड़ा कठोर है और बड़ा ही चेटकी चंडाल है ।

रूपमाला छन्द—कीर देश नृपाल भो इहिं भोग कीन अपार ।
आइ बालक बाग में पचानियो तिहिवार ॥
राज लोग जर्‌यो सबै इहऊ जर्‌यो मतिचार ।
आनियों द्विज चेटकी यह शुद्ध बुद्ध चंडार ॥७४॥

कीर देश में इसने अत्यधिक भोग किया है । बालक ने इसे बाग में आकर पहचन लिया । राज लोगों के साथ यह भी इसी में जल गया था । शुद्धि बुद्धि वाले चंडाल को ब्राह्मण चेटकी ले आया ।

गाधि उवाच

राज राजन हों जर्‌यों नहि मर्‌यो हों तिहिकाल ।
हों चंडार न चेटकी सुनि भूप बुद्धि विशाल ॥
अपलोक भाजन लाक में अब हों भयौं जिहिं पाप ।
चित्त में यहऊ न जानत देऊँ कौनहि शाप ॥ ७५ ॥

मैं उन जलने वाले लोगों के साथ नहीं जला और न मैं उस समय मरा ही था । हे विशाल बुद्धि वाले राजा ! न तो मैं चंडाल हूं और न चेटकी ही । इस संसार में अपलोक का भाजन अवश्य हो गया हूँ । यह किस पाप के परिणाम स्वरुप यह मैं नहीं जानता । अतएव किसे शाप दूं ?

दोहा— पुरखा गत को विप्र है, जानत नहीं विकार ।
हूंन कीर के कृ.त हैं, नृप चेटकी चंडार ॥७६॥

पूर्व पुरुष ब्राह्मण था। उसमें विकार का क्या कारण हुआ है मैं नहीं जानता। राजा चेटकी और चंडाल कहते हैं कि मैं कीर देश का नहीं हूँ।

रूपमाला छन्द—हाथ पाइँनि एक काटत नाक काननि एक।
आंखि काढ़त एक डारत प्राण लेत अनेक॥
वृद्ध बालक ज्वान जे जन जानियै नरनारि।
मारु मारु रहैं पढ़ै सब भाँति भाँतिनि गारि॥७७॥

एक अपने हाथ और पैरों को काटता है और दूसरा अपनी नाक और कान को काटता है। एक आंख निकालता है और दूसरा प्राणों को ही ले लेता है। वृद्ध बालक युवा नर नारी मार मार को और गलियों की अनेक प्रकार से रट लगाये हुये हैं।

दोधक छन्द—मूडि शिखा उपवीत उतारौ।
गादह जाइ चढ़ाइ सँवारौ॥
पाइनि नील करौ मुखकारौ।
पर्वत ऊपर ते धर डारौ॥७८॥

शिर की चोटी को काट दो और यज्ञोपवीत को उतार कर फेंक दो। गदहे पर जाकर बैठा दो। पैरों को नीला रंग से रङ्ग दो और मुख को काला करने के बाद पर्वत के ऊपर ले जाकर गिरा दो।

मुंडन ईश शिखा जब जानी।
आइ अकाश भई नभ वानी॥
भूतल भूप न भूलहु कोई।
ब्राह्मण गाधि चंडार न होई॥ ७९॥

शिखा के मुंडन का ज्ञान जब ईश्वर को हुआ, तब आकाश वाणी हुई। पृथ्वी के भूप का विस्मरण नहीं करना चाहिये। गाधि ब्राह्मण है, वह चंडाल नहीं है।

वाणी अकाश सुने भ्रम भाग्यो ।
राजहि को कषि ब्राह्मण लाग्यो ॥
आशिष दै वन गाधि गए जू ।
सबै भ्रम चित्त के दूरि भए जू ॥८०॥

आकाश वाणी सुनकर भ्रम भाग गया । राजा को कषि ब्राह्मण लगा । आशीर्वाद देकर गाधि वन को चले गये । चित्त में उत्पन्न हुये सभी भ्रमों का विनाश हो गया ।

दोहा—गाधि करयो तब जाइ कै, अवनि अन्नत अगाधु ।
प्रकट भए भगवंत तहँ, सुन्दर श्री सुख साधु ॥८१॥

जब गाधि ने पृथ्वी तल पर कठोर तपस्या की, तब भगवान स्वतः प्रकट हुये ।

गाधि उवाच

कौ पुण्य प्रिय दरश दिय, श्वपच कियो किहि पाप ।
मोसों वेगि कहो मिटै, जात सब परिताप ॥ ८२ ॥

किस पुण्य के परिणाम स्वरूप आपने मुझे दर्शन दिया है । श्वपच ने कौन सा पाप किया है ? मुझसे वह युक्ति शीघ्र ही कहो, जिससे मेरा सारा परिताप नष्ट हो जाय ।

श्री भगवानुवाच

गाधि अगाधि पुनीत तुम, चित्त करो भ्रम नाश ।
माया दरशन तुम कह्यो, ताके सबै विलास ॥ ८३ ॥

हे गाधि ! तुम अत्यधिक पुण्यशील हो । अपने चित्त से भ्रम को भगा दो । माया दर्शन के लिये तुमने कहा था, उसी का यह सारा विलास था ।

पुत्र कलत्रनि आदि दै, झूठो सब संसार ।
जाको देखो स्वप्न. सो साचो ब्रह्म विचार ॥ ८४ ॥

पुत्र कलत्र आदि सब असत्य है। सारा संसार झूठा है। यदि ब्रह्म-बिचार को स्वप्न में भी देखा जाय, तो भी सत्य है।

जन्म मरण तेरो मृषा, श्वपच कीर नृपवेष।
झूठो सिगरो नाउ है, माया कर्म अलेख ॥ ८५ ॥

कीर देश के श्वपच राजा के वेश में तेरा जन्म मरण व्यर्थ है। सारा नाम झूठा है। माया और कर्म का लेखा नहीं हो सकता।

ताते तुम भ्रम छाँड़िकै, होहु ब्रह्म सो लीन।
यह कहि अन्तर्ध्यान तब, भए भगवंत प्रवीन ॥८६॥

भगवान ने भ्रम को छोड़ने तथा ब्रह्म में लीन होने का आदेश दिया। इतना कहकर भगवान अन्तर्ध्यान हो गये।

संभ्रम छाँड़ि अशेष तब, साधी शुद्ध समाधि।
जीवन मुक्त भयो फिरै, जग में ब्रह्मण गाधि ॥ ८७ ॥

अशेष ने संभ्रम को छोड़कर शुद्ध समाधि की साधना की। ब्राह्मण गाधि जीवन से मुक्त होकर घूमा करता है।

जैसो गाधि चरित्र सब, यह मन मया विलास।
ताते माया को तजो, भजिये नित्य प्रकास ॥ ८८ ॥

जैसा गाधि का चरित्र है वैसा ही उसका वर्णन किया है। अतएव माया को छोड दो और नित्य प्रति प्रकाश का भजन करो।

इति श्री मिश्र केशवदास विरचितायाँ चिदानन्दमग्नायां विज्ञानगीतायां गाधि माया विलोकनं नाम त्रयोदशः प्रभावः ॥१३॥

चतुर्दश प्रभाव

उपजेगो चौदहे, मन के अङ्ग विराग।
व्यास पुत्र शुकदेव को, सुनि चरित्र जगजाग ॥ १ ॥

मन में वैराग्य उत्पन्न होगा। व्यास के पुत्र शुकदेव के चरित्र का वर्णन है, जिसमें संसार को जगाने का सामर्थ्य है।

माया को समुझो सबै, देवी मृषा विलास।
एको नहि चितलाइये, मन क्रम वचन प्रकाश ॥ २ ॥

माया को अच्छी प्रकार से समझना चाहिये। विलास व्यर्थ है। इसे मन, वचन, कर्म तथा चित्त में नहीं लाना चाहिये।

देव्युवाच

दण्डक—सब को समान असमान मानियै,
प्रमान अति न प्रमान जग जा कहँ करत है।
स्वारथ हूँ देइ परमारथ हूँ देइ,
देइ स्वारथ हूँ औ गुणनि गुणनि गहत है।
साँचो झूठ ईठ कहूँ डीठत हूँ डीठतु,
न अजरु* जरनि जर्यो अमर मरत है।
हरि सो लगाउ होउ मानस सो केशौराइ,
मानस सो लाये मन मानस जरत हैं ॥३॥

* यौवन

सभी को समान और असमान दोनों ही मानना चाहिये। संसार जिनके प्रमाण देता है, वह प्रमाण बहुत अधिक नहीं हैं। स्वार्थ और परमार्थ दोनों को साधना चाहिये। स्वार्थ गुण और अवगुण दोनों ग्रहण करता है। सत्य, झूठ और भय कहीं कहीं दिखाई देता है। क्या यौवन नष्ट नहीं होताऔर न अमर मरता है? भगवान को हृदय से लगाने पर मन मानस जलने लगता है।

केशव उवाच

दोहा—लगि गयो यह वचन मन, भूले कुल अनुराग।
कह्यो गिरा को गूढ़ मत, उपजि परयो वैराग ॥ ४ ॥

यह वचन मन को लग गया। अतएव वह अपने कुलके अनुराग को भूल गया। वाणी का गूढ़ तत्व कहा, जिससे वैराग्य उत्पन्न हो गया।

वैराग लक्षण

कुण्डलिया—देही अविनाशी सदा, देह विनाश विचार।
केशव दास प्रकाश वश, घटत बढ़त नहिंवार ॥
घटत बढ़त नहिंवार, वार मति बूझि देखि सब।
वेद पुराण अनंत साधु, भगवंत सिद्धि अब ॥
वेद पुराण अनन्त, कहत जो ब्रह्म सनेही।
यों छाड़त नहिं सन्त, देह ज्यों छाड़त देही ॥५॥

जीव का विनाश नहीं होता है। शरीर के विनाश का विचार करना चाहिये। प्रकाश के कारण वह घटता बढ़ता नहीं है। इस विषय पर अनेक बार पुराण, वेद, अनेक साधुओं, भगवान तथा सिद्धियों ने विचार किया है। वेद, पुराण तथा ब्रह्म से अत्यधिक स्नेह करने वाले भी कहते हैं कि सन्त जिस प्रकार से जीव को छोड़ते हैं, उसी प्रकार शरीर को नहीं छोड़ते हैं।

दण्डक—अनहीं ठिक को ठगु जानै न कुठौर ठौर,
ताही पै ठगावै ठेलि जाहि को ठगतुहै।
याको तौ डरनि डरु डगण डगत पलु डरके,
डगानि डरि डोड़ी ज्यों डगतु है।
ऐसे बसबास ते उदास होंहिं केशवदास,
कसन भगतु कहि काहे को खगतु है।

झूठौ रहै झूठो जग राम की दोहाई काहू,
साँचे को बनायो ताते साँचो सो लगतु है ॥६॥

ठग उचित और अनुचित स्थान का विचार नहीं करता है। वह जिसे ठगता है, उसी से वह भी ठगा जाता है। उससे हर पल और प्रत्येक मार्ग में भय लगता है। इस प्रकार के वास से उदासीनता आती है। इस अवस्था से भागते क्यों नहीं ? क्यों अपने को ठगाते हो ? जो झूठा है, संसार उसे झूठा ही दिखलाई देता है। जिसके लिये राम ने सच्चा संसार बनाया है उसे सत्य दिखाई देता है।

सवैया—भूरहुं भूरि नदीनि के पूरनि,
नावनि में बहुतै बनि बैसे।
केशव राइ अकाश मेह के बड़े,
बवधूरणि में तृण जैसे।
हाटनि बाटनि जात बरातनि,
लोग सबै बिछुरे मिलि ऐसे।
लोभ कहा अरु मोह कहा जग,
योग वियोग कुटुम्ब के तैसे ॥७॥

सुन्दर नदियों में लोग नावों को बनकर बैठ गये हैं। आकाश में मेघ बहुत बड़े हैं किन्तु बवधूरणि (नक्षत्र) में मेघ नाम मात्र को ही रहते हैं। हाट, बाट और बरातों में सभी लोग ऐसे जाते हैं जैसे कि फिर से बिछुड़ करके मिल गये हों। संसार में लोभ और मोह उसी प्रकार से है, जिस प्रकार से कुटुम्ब का संयोग और वियोग होता है।

सुन्दरी छन्द—काहूँ करयो शव ते चल योवन।
छाड़न चाहतु है यह मोतन॥
जानि सबै गुण शील सुभाइनि।
सज्जन को अति दुर्जन गाइनि॥ ८॥

क्या कोई भी मृत को जिलाने में समर्थ हो सका है ? अपने शरीर को छोड़ने की किसी की अभिलाषा है । सज्जन के समस्त गुण, शील और स्वभावों को जानकर भी दुर्जन कहा ।

दोहा—पल शोणित पंचालिका[१], मल संकलित[२] विशेष ।
यौवन में तासों रमत, भ्रमर लतानि विशेष ॥९॥

१ कपड़े आदि की पुतली २ एकत्रीकृत

यौवन में विशेषकर रक्त वर्ण कपड़े आदि की पुतलियो संकलित मल में व्यक्ति रत रहता है और भ्रमर लताओं में मस्त रहता है ।

देवी कहि वैराग यों, सांची है यह बात ।
तदपि तुम्हैं आश्रम बिना, रहनो नाहीं तात ॥१०॥

देवी ने इस प्रकार से वैराग्य को कहा जो कि सत्य बात है । फिर भी हे माता ! तुम्हें आश्रम के बिना नहीं रहना है ।

घरनी बिन घर जो रहै, छाड़ै धर्म अधर्म ।
वनिता तजि जो जाइ बन, बन के निःफल कर्म ॥११॥

स्त्री के अभाव में जो घर रहता है, वह धर्म और अधर्म सभी छोड़ देता है । स्त्री को छोड़कर जो वन चला जाता है, उसके वन के सभी कर्म निष्फल हो जाते हैं ।

रूपमाला छन्द—है निवृत्ति पतिव्रता नियमादि पुत्र समेत ।
योग राज विवेक को मिलि देहु देह निकेत ॥
दे सिद्धि सगर्भ हेतु पतिव्रता शुभ वाद ।
जाइ है सुप्रबोध पुत्रहि विष्णु भक्ति प्रसाद ॥१२॥

निवृत्ति पतिवृत्ता है और पुत्रों सहित नियमों का पालन करती है । योगी विवेक को अपने हृदय में स्थान दो । वेदों में सिद्धि प्राप्त करने के लिये, तथ गर्भवती होने के लिये पतिव्रता होना आवश्यक है । पुत्र सहित विष्णु की भक्ति करने से उनके प्रसाद का प्रबोध होगा ।

मन उवाच

दोहा—उर प्रवृत्ति की वासना, सुनियै देवि सुभाउ।
अब न लेत सखि स्वप्न हूँ, मुख निवृत्ति को नाउँ ॥१३॥

हे देवी ! हृदय की स्वाभाविक प्रवृत्ति वासना हूँ। अब स्वप्न में भी मन निवृत्ति का नाम नहीं लेता है।

अहंकार की होति जब, वारिद अवलि प्रवृत्ति।
जामें तृष्णा मंजरी, क्यों सूखति भवचित्त ॥१४॥

प्रवृत्ति और अहंकार जब दोनों का मिश्रण हो जाता है और उसमें भी जब तृष्णा मंजरी मिल जाती है, तब चित्त शुष्क हो जाता है।

सुन्दरी छन्द—चंचलता सब को उठि धावति।
आदरहीन नहीं फल पावति ॥
जो कुल जाति अशुद्ध बखानहूँ।
लाज विहीन तौ तृष्णहिं जानहुँ ॥१५॥

चंचलता सभी के पास उठकर जाती है। आदरहीन लोग किसी भी प्रकार के फल को प्राप्त नहीं करते हैं। यदि कुल और जाति अशुद्धि हैं तो तृष्णा लज्जा विहीन ही है।

सनानिका छन्द—लीन चित्त हू करै।
फूलसों नहिं डरै।
शूर अंश ज्यों सजै।
प्रात फेरि पंकजै ॥

जिस प्रकार से सूर्य प्रातःकाल कमलों को बन्द कर अपने अङ्गों को सजता है, उसी प्रकार चित्त को लगावे और पुष्पों से भयभीत न हो।

देवि हों कहा करौं।
चित्त में महा डरौं।
जग्ग मैं न सुख है।
यत्र तत्र दुःख है ॥ १७ ॥

हे देवी ! मैं क्या करूँ। चित्त में अत्यधिक भय लगता है। संसार में सुख नहीं है। सभी जगह दुख ही दुख है।

सवैया—गर्भ मिलेइ रहै मलमें-जग,
आवत कोटिक कष्ट सहै जू।
को कहै पीर न बोलि परै बहु,
बहु रोगनि के तन ताप रहै जू।
खेलत मात पिता न डरै गुरु,
गेहनि में गुरु दण्ड दहेजू।
दीरघ लोचनि देवि सुनो अब,
बाल दशा दिन दुःख नहेजु ॥१८॥

गर्भ में मल से मिला रहता है और संसार में आकर अनेक प्रकार के कष्ट सहता है। अनेक पीड़ाओं और रोगों से वह सदैव ही ग्रस्त रहता है। खेलों में माता-पिता का भय नहीं रहता है और गुरुओं के घरों में दण्ड नहीं रहा है। हे दीर्घ नेत्रों वाली देवी ! अब इस संसार में दुख ही दुख है।

दोधक छन्द—जौ मन में मति की मलिनाई।
होति हिये चित को चपलाई॥
काहू गणै न सुगर्व भरीयों।
आवति है वरषा सरिता ज्यों॥

यदि मन में मति की मलिनता है, तो हृदय में चित्त की चपलता रहती है। इस कारण से हृदय किसी का विचार नहीं करता है। उसकी स्थिति बरसाती नदी के समान हो जाती है।

सवैया—काम प्रताप के ताप तपे तनु केशव क्रोध विरोध सनेजू।
जारेतु चारु चिताई विपत्ति में संपति गर्व न काहू गनेजू॥
लोभ ते देश विदेश भ्रम्यो भव संभ्रम विभ्रम कौन भनेजू।
मित्र अमित्र ते पुत्र कलत्र ते यौवन में दिन दुःख घनेजू।२०।

काम की अग्नि में सभी जल रहे हैं। शरीर में क्रोध और विरोध बस गये हैं। विपत्ति में चित्त की सारी चतुरता नष्ट हो जाती है। सम्पत्ति किसी के गर्व का ध्यान नहीं रखती है। लोभ के कारण देश विदेशों में भ्रमण करता रहा। संभ्रम और विभ्रम के विषय में क्या कहा जाय ? मित्र शत्रु, पुत्र और कलत्र के कारण यौवन में भी दुख ही रहता है।

दोहा—जहाँ भामिनी भोगतहँ, भामिनी बिनु कहँ भोग।
भामिनी छूटे जग छुटे, जगछूटे सुख जोग ॥२१॥

जहां पर स्त्री होगी, वहां पर भोग भी होगा। भामिनी के अभाव में भोग असंभव है। स्त्री से छुटकारा पाने पर संसार से ही छुटकारा मिल जाता है। संसार छूटने पर ही सुख की प्राप्ति होती है।

जितने थिर चिरजीव जग, अध[1] उरध[2]के लोक।
अजर[4]अमर अज[5]अमित जन, कवलित[3] काल सशोक॥२२॥

१ पाताल लोक या नर्क २ आकाश लोक या स्वर्ग लोक ३ खाया हुआ ४ जो सदा जवान रहे ५ अनादि काल से विद्यमान, अजन्मा।

अजर, अमर, अज और अमिट, जितने भी पाताल और आकाश लोक के जीव हैं, सभी सशोक काल के गाल में समा जायँगे।

सवैया—शेषमई[1] कबरी[2] रसना नल[3],
कुण्डल सूरज[4] सोम[5] सँचेजू।
मेषला[6] ब्रह्म कपालनि[7] की,
पदनूपुर रुद्र कमाल रँचेजू॥
पंकज[8] विष्णु कपालनि की,
वन मालन केशव काहू बचेजू।
हस्तक भेद दसों दिशि दीशत,
ऊरधहुँ अध मीचु नँचेजू ॥२३॥

१ अवशिष्ट २ चितकबरा ३ एक नद ४ सूर्य ५ चन्द्र ६ कटि सूत्र ७ भाग्य लेख ८ कमल।

जीवन का अवशिष्ट भाग समरस नहीं है, रसना नल की है, कुण्डल सूर्य और चन्द्र के बने हुए हैं! मेषला ब्रह्म कपाल की है। रुद्र ने बहुत सुन्दर नूपरों की रचना की है। पङ्कज विष्णु के भाग्य लेख के हैं। वनमाल कोई भी बचा नहीं है। सभी दिशाओं में नर्क लोक और मृत्यु का बोल बाला है।

दोह—देवी सो उपदेश दे. जनम मरण मिटि जाइ।
कालहि को जो काल कर, ताहि रहों मिलि जाइ ॥२४॥

हे देवी! वह उपदेश दे, जिससे जन्म मरण से छुटकारा मिल जाय। काल को भी जो खा साय, उसीसे से जाकर मैं मिल जाऊँ।

व्यास पुत्र शुकदेव सम, शुखद नति सु सँमीर।
व्यास पुत्र की यह दशा, कहिमाता मति धीर ॥२५॥

व्यास के पुत्र शुकदेव के समान बनना चाहिए। तब तो हे सरस्वती व्यास के पुत्र की दशा का वर्णन करो।

सरस्वती उवाच

दोधक—एक समै शुक चित्त विचारे।
बाढ़ो विराग बढ़ो ज्यों तिहारे॥
आपुनहीं अपनी मति जानो।
सत्य स्वरूप हिये महिं आनो ॥२६॥

शुकदेव ने एक बार अपने चित्त में विचार किया। जिस प्रकार से तेरे हृदय में वैराग्य बढ़ा, उसी प्रकार से उनके हृदय में भी वैराग्य बढ़ा। अपने ही समान उस जगतनियन्ता की भी मानों और सत्य स्वरूप को हृदय में धारण करो।

दोहा—तब ताके विश्वास को, बूझै शुक पितु व्यास।
उपजत है जग कौनते, कहा विलात प्रकास ॥२७॥

उस विश्वास को शुकदेव ने अपने पिता से पूछा कि किस प्रकार से उसकी उत्पति होती और किस प्रकार से विनाश ।

दोधक—व्याम सबै शुक आसय पायो ।
भूपति साधु विदेह बतायो ॥
वै तुमको सुत उत्तरू दैहैं ।
पूछहु जाइ महासुख पैहैं ॥२८॥

व्यास ने शुकदेव के आशय को समझ लिया । अतएवउन्होंने शुकदेव को बताया कि राजा विदेह, जनक इसका उत्तर तुम्हें देंगे । उनसे पूछने पर तुमको बहुत सुख मिलेगा ।

तोरक—तबही सुबिदेह के गेह गए ।
नृप द्वार तबै थिर होत भए ॥
तब द्वार पहीं नृप सो गुदरे ।
शुकदेव तवे दरबार खरे ॥२९॥

शुकदेव उसी समय विदेह के घर गये और उनके द्वार पर जाकर खड़े हो गये । जब राजा द्वार पर से निकले तब शुकदेव द्वार पर खड़े थे ।

सुदरी छन्द—उत्तर राज कछू न दयो जब ।
ठाढेहि बासर सात भए तब ॥
संबर* में नृप बोलि लिये गुनि ।
ठाढ़ किये परदा तटलै मुनि ॥३०॥

* एक धार्मिक अनुष्ठान

जब विदेह राजा ने कोई उत्तर नहीं दिया और खड़े खड़े सात दिन और रात खतम हो गयीं । तब राजा ने संबर में बुला लिया और परदा की ओट में खड़ा कर दिया ।

सात वितीति भए जब वासर ।
जाइ किये तब आँगन में घर ॥
बासर रात तहीं सुविहाने ।
साधु विदेह महीपति जाने ॥३१॥

जब सात दिन बीत गये तब घर के आँगन में खड़े हो गये। जब सात दिन इसी प्रकार से और बीत गये तव राजा को इसका पता चला।

सुंदरि आइ सुगंधनि लोने।
यौवन जोर स्वरूप नवीने॥
मज्जन कैं तिन्ह न्हान कराये।
अंग अनेक सुगंध चढ़ाये ॥३२॥

एक सुन्दरी सुगंध लेकर आई। उसके स्वरूप और यौवन में नवीनता थी। उसने मज्जन कराकर स्नान कराया और फिर अनेक सुगन्धियों को शरीर पर लगाया।

भोजन तौ बहु भाँति जिवाए।
दर्पन पान खवाय दिखाये॥
वस्त्र नवीन सबै पहिराये।
सुंदर साधु स्वरूप सुहाये ॥३३॥

अनेक प्रकार से भोजन कराया और पान खिलाकर शीशा दिखाया। सभी नए वस्त्रों को पहनाया। सुन्दर साधु रुप में सुशोभित किया।

रूपमाला छन्द—नाचि गाइ बजाइ वीननि हाव भाव बताव।
मंद हास विलाससों परिरंभनादि प्रभाव॥
कै थकी सब भाँति भाँति रहस्य लीनि बनाइ।
शुद्ध होतु न चित जों बहु बल्लरी तरु पाइ ॥३४॥

नाचकर, गाकर, वीणा बजाकर अनेक हाव भाव दिखाये। विलास से मंद हास भी किया जो कि परि रंभन के प्रभाव को पैदा करने वाला था। अनेक प्रकार के रहस्यों को करके वह थक गयी। चित्त उसी प्रकार से शुद्ध नहीं हुआ, जिस प्रकार से किसी वृक्ष पर अनेक वल्लरियों के फैलने से वृक्ष आवृत्त रहता है।

दोहा—बहुतै निन्दा कै थकीं, चित्त एकही रूप।
सुख दुःख न पाइए, पाइ परे तब भूप॥ ३५॥

अनेक प्रकार से निन्दा की किन्तु चित्त में किसी भी प्रकार का विकार नहीं आया। चित्त में सुख और दुख कुछ भी नहीं दिखाई दिया तब राजा के चरणों में शुकदेव नतमस्तक हो गये।

विदेह उवाच

तारक छन्द—कहिये जुकछू मुनि जालगि आए।
अपने हम पूरब पुण्यनि पाए॥
कहिते उपजै जगराज बखानो।
अरु क्यों विनशै किहि मांझ समानो॥३६॥

हे मुनि! कहिये किस कारण से आप आये। हमने अपने पूर्व पुण्यों का फल प्राप्त किया है। संसार की उत्पत्ति किससे होती और विनाश होकर किसमें विलय होता है? इस रहस्य को मुझे बताइये।

दोहा—सो वह कैसे पाइयै, बूझन आयो तोहिं।
भूल्यो जहँ तहँ भ्रमतहों, पार लगावहु मोंहि॥३७॥

उसे किस प्रकार से प्राप्त करें, उसी को पूछने आया था। मैं संसार में भ्रमता फिर रहा हूँ। मुझे उससे पार लगाइये।

विदेह उवाच

दोहा—पायो हुतो जु पाइये, सुनियै श्री शुकदेव।
यह सुनि मुनि मारगलगे, सुख पायो नरदेव॥३८॥

हे शुकदेव! जो कुछ पाना था वह तो पा गये। इतना सुनते ही मुनि को चेत हो गया और वह मार्ग पर लग गये। हृदय में अत्यधिक सुख हुआ।

जाइ मेरु के शिखर पर पूरण साधि समाधि।
धरी धीर सब धर्म तजि, परब्रह्म आराधि॥३९॥

मेरु पर्वत पर जाकर पूर्ण समाधि लगाई। धैर्य धारण कर परब्रह्म की आराधना करने लगे।

वरण नेक सहस्र तहँ एक भांति भवभूप।
क्रम दीप ज्योति ज्यों, मिलै आपने रूप ॥४०॥

सहस्रों व्यक्ति एक ही प्रकार से वहां पर आराधना करते रहे और वे उस अनन्त रूप में उसी प्रकार से धीरे धीरे विलीन होने लगे जिस प्रकार से दीपक अग्नि ही रूप में जलकर मिल जाता है।

देव्युवाच

ऐसे तुमहूँ समुझि मन, दुख सुख मानि समान।
तजि संकल्प विकल्प सब, पौरुष बात प्रमान ॥४१॥

ऐसे ही तुम भी सुख दुख को समान मानकर चलो और संकल्प विकल्प को छोड़कर अपने पौरुष को जगाओ।

मन उवाच

जित लै जैहै वासना, तित तित ह्वै है लीन।
पौरुष वपुरा क्यों करै, जीव वापुरो दीन ॥४२॥

जिधर वासना ले जायगी उधर ही जाना पड़ेगा। बेचारा पौरुष क्या करेगा? जीव तो अत्यधिक दीन है।

देव्युवाच

दुबिध वासना होति है शुभ अरु अशुभ प्रमान।
अशुभै शुभ करि मानियै, निराधार मन जान ॥४३॥

वासना दो प्रकार की—शुभ और अशुभ—होती है। अशुभ को भी साधना के द्वारा शुभ बना लो।

एक काल ब्रह्म सभा, बैठेहैं मतिधीर।
मैं बूझी जग जीव की, क्यों हरि प्रभुपीर ॥४४॥

एक बार ब्रह्म सभा में मतिधीर बैठे हुये थे! मैंने पूछा कि संसार के जीवों की पीड़ा का कैसे विनाश करियेगा?

मुक्ति परी दरबार के चारि चतुर पहारि।
साधुन के सतसङ्ग अरु, समसंतोष चार ॥४५॥

मुक्ति पुरीके चार चतुर पहरा देने वाले हैं। अतएव इसमें प्रवेश करते समय उनका ध्यान अवश्य रखना चाहिये। पहरा देने वाले चार—साधु, शुभसंगित, सम और संतुष्ट—विचार हैं। इनका विचार कर मुक्त पुरी में प्रवेश करना चाहिये।

वसुला—इनमें जग एकहु जो अपनावै।
सुखी प्रभुद्वार प्रवेशहि पावै ॥४६॥

यदि इनमें से एक को भी कोई संसार में अपना ले, तो सुख पूर्वक प्रभु द्वार में प्रवेश कर सकता है।

दोहा—जो इनको संग्रह करै, मनवच छांड़नि छांड़ि।
मिलै आपने रूप को, सकल वासना खांड़ि ॥४७॥

मन, वचन से यदि कोई इनका संहार करे, तो सारी वासनाओं को नष्ट करके अपने रूप में फिर मिल जायगा।

मेरे घर धन पुत्र त्रिय, यह बंधन मनमान।
दृश्यादृश्य सुब्रह्म है, यहै मुक्ति जिय जान ॥४८॥

मेरे घर पर जो भी धन, पुत्र और स्त्री हैं, वह सभी बन्धन हैं, ऐसा मन में समझना चाहिये। जो कुछ भी दिखाई देता है वह सभी ब्रह्म है। यही मुक्ति का स्वरूप है।

जाते उपज्यो ताहि मिलि अनल ज्वाल परिमान।
यह कहि भई सरस्वती, केवल अन्तर्ध्यान ॥४९॥

जिससे उत्पन्न होते हैं और जिसमें विलीन होते हैं उसे अनल ज्वाला मानना चाहिये। इतना कहकर सरवती अन्तर्ध्यान हो गई।

दवी के उपदेश यों, शुद्ध भयो मन नाथ ।
शुद्ध भये कैसी भई, नृपविवेक की गाथ ॥५०॥

सरस्वती देवी के उपदेश से मन शुद्ध हो गया। मन के शुद्ध होने पर नृप विवेक की गाथा सामने आई ।

इति विज्ञानगीतायां चिदानन्दमग्नायां मन शान्ति
वर्णनोनाम चतुर्दशः प्रभावः ॥ १४ ॥

पंचदश प्रभाव

पञ्चदशें मन शुद्धता, जीव विवेक विचार ।
परमदेव पूजा सबै, कहियो चार विचार ॥१॥

पन्द्रहवें प्रभाव में मन की शुद्धता, जीव तथा विवेक पर विचार किया गया है। परमदेव की पूजा के सम्बन्ध में सब प्रकार से विचार करके कहा गया है।

शुद्ध भयो मन जानि जब देवी के उपदेश ।
महा पुरुष की दृष्टि तब, परयो सुकाम सुवेश ॥२॥

देवी के उपदेश से जब मन शुद्ध हुआ, तब सुकाम सुन्दर वेष में महापुरुष को दिखाई दिया ।

पांइन लागे परन जब, प्रभु के आपु नरेश ।
प्रभु वरज्यो हो शिष्य तुम, गुरु कीजे उपदेश ॥ ३ ॥

जब राजा स्वतः भगवान के चरणों पर गिरने लगा, तब प्रभु ने उसे रोक दिया और कहा कि तुम गुरु हो और मैं शिष्य हूँ। अतएव कुछ उपदेश दीजिये ।

विष्णु रक्षा करने वाले हुये, कर्ता ब्रह्मा हुये और शिव जी हरने वाले हैं। धर्म राज दण्ड देने के लिये हुये।

अवलोकत रवि शशि फिरत, निशिदिन धर्माधर्म।
इहि विधि केशव समुझिवे, सब लोकनि के कर्म॥ १४॥

सूर्य और चन्द्र रात दिन धर्म और अधर्म को देखते फिरते हैं। इसी प्रकार से सभी लोकों के कर्मों को समझना चाहिये।

जीव उवाच

सबहीं की जी समान है, ताके जीव स्वरूप।
घटि बढ़ि तेज विलोकियतु, सबके केशव भूप॥ १५॥

यदि उसके सभी रूप समान हैं, तो सभी के तेजों को कम और अधिक क्यों देखते हैं?

विवेक उवाच

जिहि जैसी जा देव की, पूजा करी प्रमान।
ताके तैसे तेज बल, विक्रम भए सुजान॥ १६॥

जिसने जिस देव की जैसी पूजा की है उसके उसी प्रकार का तेज बल और विक्रम हैं।

जीव उवाच

धरि धरि क्यों अवतार प्रभु मारत अपने रूप।
सिखवत शासन भंगते, ज्यों पितु सुत को भूप॥ १७॥

अपने अनेक रूपों को धारण कर प्रभु जीवों को क्यों मारते हैं? वे शासन भँग क्यों सिखाते हैं?

विवेक उवाच

उपजत ज्यों चित रूपते, जीवन तिहि विधि जात
रवितें उपजत अंशु ज्यों, रवि ही माँझ समात॥ १८

जिस प्रकार से चित्त जीव से उत्पन्न होता है, उसी प्रकार वह चला भी जाता है। जिस प्रकार से सूर्य से प्रकाश उत्पन्न होता है और उसी में समा जाता है।

उपजत माया सङ्गते, जोव होत बहु रूप।
उत्तम मध्यम अधम सब सुनि लीजै भवभूप ॥ १९ ॥

माया के साथ उत्पन्न होने से जीव अनेक रूप का हो जाता है। इसी कारण से जीव उत्तम मध्यम और अधम कोटि का होता है।

सुन्दरी—उत्तमते प्रभु शासन संभत।
है जग सो न कहू कबहूँ रत ॥
कौनहुँ एक प्रसाद ते भूपति।
होतु है शासन भंग महामति ॥ २० ॥

प्रभु शासन से उत्पन्न लोग उत्तम होते हैं। वे संसार में कभी भी रत नहीं होते हैं। राजा के किसी भी एक कृत्य से शासन भंग होता है।

आपुहिं आपुनि क्यों करि दण्डहि।
कारज साधत है तिह खंडहि ॥
औरहु आपने पंथ लगावै।
ते सब मध्यम जीव कहावै ॥ २१ ॥

जो लोग अपने आप के लिये सब कुछ करते हैं। उसके लिये दूसरे के काम को भी हानि पहुँचाते हैं। अपने काम के लिये और लोगों को भी उधर खींच कर लाते हैं। इसी प्रकार के सभी लोग मध्यम श्रेणी के कहलाते हैं।

होत जे जीव कछू मन के वश।
भूलत हैं अपने प्रभु के यश ॥
पीडियै आधिनि व्याधिनि के जब।
बकत वेद पुराणन कों तब ॥२२॥

जो जीव मन के वश में हो जाते हैं, वे अपने प्रभु के वश का भी विस्मरण कर देते हैं। जब आधि व्याधियां आकर घेरती हैं, तब वेद और पुराणों को ढूंढते हैं।

दानन दै व्रत संयम कै तप।
सङ्गत जेवत साधत है जप॥
जन्म गए बहु ज्ञाननि पावत।
ते गत जीवन मुक्त कहावत॥ २३॥

दान देते हैं। तप व्रत और संयम धारण करते हैं। अच्छे लोगों के साथ भोजन करते हैं और जप किया करते हैं। मरण के पश्चात् अनेक प्रकार के ज्ञान को प्राप्त करते हैं। संसार में ऐसे लोग ही मुक्त कहे जाते हैं।

जिनको न कछू अपने प्रभु की सुधि।
बहु भांति बढ़ावतु हैं मन की बुधि॥
सुनिहूं सुनि वेद पुराणनि के मत।
होत तऊ बहु पापनि सो रत॥ २४॥

जिन लोगों को अपने प्रभु का थोड़ा भी ज्ञान नहीं है और मन को अनेक प्रकार से बढ़ावा देते हैं वेद और पुराणों के मतों को सुनकर भी अनेक पापों में रत रहते हैं।

दोहा—ते अति अधम बखानियै, जीव अनेक प्रकार।
सदा सुयोनि कुयोनि में, भ्रमत रहै संसार॥ २५॥

इस प्रकार के व्यक्ति अधम होते हैं और ये लोग अनेक योनियों में में भ्रमण किया करते हैं।

उत्तम मध्यम अधम अति, जीवते केशवदास।
अपने अपने औसरे, जो प्रभु के पास॥ २६॥

उत्तम, मध्यम और अधम, सभी जीव अपनी अपनी पारी से प्रभु के पास जाते हैं।

ज्यों रस रूप सुगन्ध मय, पुष्प सदा सुखदाउ ।
पुष्प न जानत जानिये, ताको तनिक प्रभाउ ॥ २७ ॥

रस रूप एवं सुगन्ध से युक्त पुष्प सदा सुख देने वाला होता है। जो पुष्प के इस रूप को नहीं जानता है, उस पर कुछ भी प्रभाव नहीं होता है।

त्यों सब जीव चिदंशमय, वर्णत जीवन मुक्त ।
भूलि जात प्रभुता सबै, महामोह संयुक्त ॥ २८ ॥

उस चित्त के अंश के जीवों का इस प्रकार वर्णन हैं। जीव मुक्त कैसे होता हैं, इस का भी वर्णन है। महामोह से मिलकर सभी जीव प्रभुता को भूल जाते हैं।

महामोह सङ्ग जीव यों, मोहहि मांझ समात ।
लोह लिप्त ज्यों कनक कण, लोहाई ह्वै जात ॥ २९ ॥

महामोह के साथ जीव मोह में ही समा जाता है। जिस प्रकार से सोने का कण लोहे से लिप्त होने पर लोहा ही हो जाता है।

वीरसिंह उवाच

जीव मोहमय लोभमय, कनकते कौन प्रकार ।
मिलिहै कबहूँ आपने, रूपहि तजि जे जार ॥ ३० ॥

जीव मोह और लोभ को छोड़ कभी अपने मूल रूप से भी मिलेगा ?

केशव उवाच

जो क्यों हूँ चित संत की, उपजै कृपा तरङ्ग ।
तिनहीं को तौ जानियो, पारस बोध प्रसङ्ग ॥ ३१ ॥

यदि किसी संत की कृपा से मन में तरंग उत्पन्न हो जाय, तो उसी प्रसङ्ग को पारस समझ लेना चाहिये अर्थात् उस प्रसङ्ग में परिवर्तन करने की क्षमता होती है।

और भाँति क्योंहूँ नहीं, नरकनिते उद्धार ।
राज चक्र चूडेस सुनि, जानों जगदु प्यार ॥ ३२ ॥

और किसी भी प्रकार से नर्क से उद्धार नहीं मिल सकता है । राजा चक्र चुणेश इसे सुनकर संसार से प्यार करने लगे थे ।

विवेक उवाच

रूपमाला छन्द—एक काल गए तपस्याहि श्री वशिष्ट ऋषीश ।
देव देव जहाँ बसे हिमवन्त आपुन ईश ॥
जाइकै तपसा रची तहँ बीतगो बहु काल ।
पार्व्वती पति आपु आए ह्वै कृपालू दयाल ॥३३॥

एक समय वशिष्ट जी तपस्या करने के लिये गये । अनेक देव वहां पर वास कर रहे थे और स्वतः भगवान हिम के रूप में विराजमान थे । वहां पर जानकर तपस्या की और उसमें बहुत सा समय व्यतीत हो गया । शंकर जी कृपालु हो स्वतः वहां पर आये ।

श्रीशिव उवाच

दोहा—साधु वशिष्ट सुनिष्ट मति, ब्रह्म सुनु ऋषिराज ।
भाँगि कहामति चेतिचित, तपकीनों जिहि काज ॥ २४ ॥

हे साधु, ब्रह्म ऋषि, सुनिष्ट मति वशिष्ट ! जिस करण से तूने तप की है उसे मांग लो ।

वशिष्ट उवाच

भुजङ्ग उवाच—सुनो देव देवेश देवादि भर्त्ता ।
प्रभा पूर्ण संसार के दुःख हर्ता ॥
कहो देव पूजा करो ईश कैसे ।
सिखावो सु मोसों महादेव तैसे ॥ ३५ ॥

हे देव ! देवों के ईश, देवों का भरण पोषण करने वाले, प्रकाश से पूर्ण हो और संसार के दुखों का विनाश करने वाले हो । हे देव ! तुम्हारी किस प्रकार से पूजा करें । उस विधि को महादेव जी मुझे भी सिखा दो ।

श्री शिव उवाच

दोहा—केशव छूटे जगत ते, कीजै जाकी सेव ।
सोई देव बताइये महादेव जगदेव ॥३६॥

संसार के बन्धनों से छूटकर संसार की सेवा करनी चाहिये । उसी विधि को महादेव जी मुझे भी बताइये ।

दण्डक—ऋषि ऋषिराज वृद्ध केशव प्रसिद्ध सिद्ध,
लोक लोकपाल सब कोऊ न प्रबल हैं ।
वरुण कुबेर यम अनिल अनल जल,
रवि शशि सुरपति जाको दीने बल हैं ।
कौन सों कहत देव कौन सी सिखावो सेव,
जार कों वासना मूल मलिन धवल है ।
शेख धरु नागधरु[1] नागमुख[2] ब्रह्म,
विष्णु इनको कलेवरु तौ काल को कवरु है ॥३७॥

१ शिव २ गणेश

हे ऋषि राज ! लोक लोक में तुम प्रसिद्ध हों । सभी रक्षक हैं, किन्तु कोई भी प्रबल नहीं है । वरुण, कुबेर, यम, अनिल, अनल, जल, रवि, शशि, इन्द्र, आदि सभी को शक्ति दी है । किस देव के सम्बन्ध में आप कहते हैं और किसी की सेवा की चर्चा करते हैं । मलिन वासना को समूल जलाकर किस प्रकार स्वच्छ हुआ है । शिव, गणेश, शेखधरु, ब्रह्मा, विष्णु का भोजन काल का एक ग्रास है ।

वशिष्ट उवाच

भुजङ्ग प्रयात—सुनों ईश तावत् कहों देव को है ।
सदा सर्व संपूजिबे योग जो है ॥
कृपा कै कहो हों कहा देव जानो ।
महादेव जाको महादेव मानों ॥३८॥

हे ईश ! वह कौन सा देव है जो कि सदैव ही पूजनीय है । कृपा करके कहिये, जिसे कि हम देव समझ सकें और जिसको महादेव भी मानते हों ।

श्रीशिव उवाच

नगस्वरूपिणी—अजन्मु है अमनु है ।
अशेष जंतु सर्न है ॥
आनादि अंत हीनु है ।
जु नित्य ही नवीनु है ॥३९॥

वह देव अजन्मा है । मृत्यु से परे हैं, सभी जन्तु उसकी शरण में हैं । अनादि है और उसका कोई अन्त नहीं है । वह सब प्रकार से नित्य ही नवीन है ।

अरूप है अमेय[1] है ।
अमाय[2] है अमेय है ॥
निरीह निर्विकार है ।
सुमध्य अध्याहार[3] है ॥ ४० ॥

१ सीमा रहित २ माया रहित ३ तर्क वितर्क

वह देव रूप हीन और सीमा रहित है । माया रहित भी हैं । निरीह भी है और निर्विकार भी । वह तर्क वितर्क युक्त भी है ।

अकृत मै अखण्डित त्वै ।
अशेष जीव मण्डि त्वै ॥
एमस्त शक्ति युक्त है ।
सुदेव देव मुक्त है ॥४१॥

कृत्यों से परे और अखण्डित है । अशेष जीवों की रक्षा करता है । सब प्रकार की शक्तियों से युक्त है । वह सब प्रकार से मुक्त भी है ।

दोहा—ताकी पूजा करहु कषि, कृत्रिम देवगण छाँड़ि ।
मनसा वाचा कर्मना, निपट कपट को खाँड़ि ॥ ४२ ॥

कृत्रिम देवों को छोड़कर उस देव की पूजा करो। कपट को नष्ट करके मन, वचन और कर्म से उसकी पूजा करो।

वीरसिंहोवाच

दोहा—देव अरूप अमेय हैं, कहै निरीह प्रकाश।
सर्व जीव मण्डित कहौ, कैसे केशवदास॥

यदि वह देव रूपहीन और सीमा रहित हैं, तो फिर निरीह और प्रकाशमय कैसे है? सब जीवों की रक्षा करने वाला कैसे है?

ज्यों अकाश घट घटनि में, पूरण लीन न होइ।
यों पूरण संदेह में, रहै कहै मुनि लोइ॥ ४४॥

जिस प्रकार से आकाश घटों में लीन नहीं होता है उसी प्रकार से पूर्ण संदेह में वह भी रहता है, ऐसा मुनि कहते हैं।

वशिष्ट उवाच

कहि प्रभु पूरण देव को, कैसे पूजन होइ।
हमैं सुनावो सुगम मग, ज्यो पूजै सब कोइ॥४५॥

पूर्ण देव का पूजन किस प्रकार हो? हमें अत्यधिक सुगम मार्ग बताओ, जिससे सब कोई पूजन कर सकें।

शिव उवाच

दोधक—आनहु ज्योति हिये अविनाशी।
अच्छ निरंजन दीप प्रकाशी॥
निश्चल वेष समाधि विहारै।
वासना अंग पतंगनि जारै॥ ४६॥

अपने हृदय में अविनाशी की ज्योति को लाओ जो कि निरंजन है और सदैव ही प्रकाशित रहने वाला है। निश्चल रूप से समाधि लगावे तो वासना को जला सकता है।

शुद्ध स्वभाव के नीर नहावै।
पूरण प्रेम समाधिहि लावै॥
फल मूल चिदानँद फूलनि पूजै।
औरन केशव पूजन दूजै ॥४७॥

शुद्ध स्वाभाविक जल से स्नान करे, पूर्ण प्रेम से समाधि लगावे चिदानन्द की पूजा फल मूल और फूल से करे ? वह उसकी पूजा को छो कर किसी भी दूसरे की पूजा नहीं करे।

दोहा—इहि पूजन जो पूजई, केशव अर्घ* निमेष।
मनहु सुदच्छिणा बहु करै, राज सूय सविशेष ॥४८॥

* पूजन के १६ उपचारों में से एक

इस प्रकार से यदि कोई निमेष भी पूजन करे, तो मानों उसने बहुत सी दच्छिणायें दे दी हैं और राजसूय यज्ञ कर डाला है।

इहई साधन शुद्ध तप, इहई योगवियोग।
यहै अनन्यनि को मरमु, जानत हैं मुनि लोग ॥४९॥

यह साधना ही शुद्ध तप है और यही योग और वियोग है। यही अनन्य धर्म है, जिसे मुनि लोग जानते हैं।

इहि विधि पूजा हम करत, अनुदिन सुनि ऋषिराज।
कर्त्तुम अन्यथ्या-करण भए सुराज ॥ ५० ॥

इस प्रकार से हे ऋषि राज ! हम रात दिन पूजा करते हैं। इन्द्र देवताओं के राजा हो गये।

अखिल वासना जाति जरि, अखिल जन्म की च्छिप्र।
पूजा शाल ग्राम की, पूजा क्रम क्रम विप्र ॥ ५२ ॥

अनेक जन्मों की वासना शालिग्राम की पूजा करने से नष्ट हो जाती है, किन्तु क्रमपूर्वक विप्र की भी पूजा करनी चाहिसे।

तीन वर्ण पूजै शिला,प्रतिमा शूद्र प्रमान।
महादेव यह कहि भये, ऋषि कों अन्तर्ध्यान॥ ५२ ॥

तीन वर्ण (ब्राह्मण,क्षत्रिय और वैश्य) शिला का पूजन करते हैं और शूद्र प्रतिमा की पूजा करते हैं। इतना कहकर महादेव अन्तर्ध्यान हो गये।

हरिगीतिका—तेहि दिवसते इहिभाँति पूजन पूजि कै दिन राति।
जोवै चहै सोई लहै कहि केशव सु वहु भाँति ॥५३॥

उस दिन से इस प्रकार पूजन करके जो भी अभिलाषा हो उसको पूरा कर सकता।

इति श्री विज्ञानगीतायां विवेक जीव सम्वाद वर्णनो नाम पंचदशः प्रभावः ॥ १५ ॥

षोडस प्रभाव

दोहा—नृपति शिखी ध्वज षोडशें, जीतोगे संसार।
निज तरुणी उपदेश ते, ताको गूढ़ विचार॥ १ ॥

अपनी रानी के गूढ़ विचारवान उपदेश से राजा शिखी ध्वज संसार को विजय करेगा।

रानी के उपदेश ते, ज्यों त्यों नरनाथ।
त्यों अब बुद्धि विलासिनी, वल जीतहु गणनाथ ॥२॥

रानी के उपदेश से जिस प्रकार से विजय की है, उसी प्रकार हे गण-नाथ! अब विलासिनी बुद्धि को भी जीतो।

जीव उवाच

राजा रानी की कथा, कहो कृपा करि आजु।
जाते मेरे चित्त में, उपजै बोध समाजु॥ ३ ॥

आज कृपा करके राजा और रानी की कथा का वर्णन कीजिये, जिस से मेरे चित्त में बोध का उदय हो।

विवेक उवाच

शात अतीने मनु सुमति, द्वापर पूर्व प्रवेश।
नृपति शिखि ध्वज तब भय, केशव मालव देश ॥४॥

मालव देश में शिखी ध्वज राजा द्वापर के प्रारम्भ में हुआ था।

सुराष्ट्र देशाधिपत्ति की, चूड़ाला इहि नाम।
कन्या सकल कलावती रूपशील दुतिधाम ॥५॥

चूडाला राजा सौ राष्ट्र का अधिपति था और कान्ति युक्त कलावती नाम की उसके सुन्दर कन्या थी।

रूपमाला छंद—दामिनी चल चारु खंजन दाड़िमी फटि जात।
चंद्रमा घटि जातु है जिय फूल फुलि कुंभिलात॥
कोकिला को कालिमा तनुमार बान अदृष्ट।
ह्वै गए दुख जासु कै यह जानियै जग इष्ट ॥६॥

बिजली चमक करके फट जाती है। चन्द्रमा घट जाता है। पुष्प खिलकर कुम्हला जाता है। काले वर्ण की होने के कारण कोयल सदैव अदृष्ट रहती है। संसार में यह दुख जिसको हो गये हैं, उनको समझिये।

दोहा—छातिनि छेद मुरार[1] सम, डारत है करि छार।
गए दिगन्त निहंश अरि, ताके दुख तेहि बार ॥८॥

१ कमल की जड़।

छातियों में कमल सदृश छेद हैं, जो कि विनाश कर देते हैं। दिशाओं में निहंश शत्रु के जाने के कारण दुख व्याप्त है।

मुनि कन्यनि सँग सीखियो, तिहिं तब प्राणायम।
ताते पाइ सिद्धि सब, पूरण काम अकाम ॥८॥

मुनि कन्याओं के साथ रहकर उसने प्राणायाम की विधि सीखी। इससे उसे पूरी सिद्धि मिल गई और काम तथा अकाम दोनों में सिद्धस्थ हो गया है।

नृपति शिखीध्वज की भई, रानी रूप समान।
तिनिसों मिलि तिनि भो गए, भूतल भोग विधान ॥९॥

वह रुपवती कन्या शिखी ध्वज को रानी हुई। उससे मिलकर उन्होंने इस पृथ्वी तल के अनेक भोगों का भोग किया।

चामर छन्द—एक काल एक आरसी विषे दुहूँ जने।
आपने मुखार बिन्दी देखियो प्रभासने ॥
कन्त को कहू प्रिया प्रभाव हीन देखियो।
नारि को महा प्रभा समेत देव लेखियो ॥

एक बार दोनों ने ही अपने मुख को शीशे में देखा। पति को कान्ति हीन और रानी को प्रभायुक्त सभी देवों ने देखा।

राजोवाच

दोहा—रानी सुनि या बालते, तेरे तन एक रीति।
काहे ते तुम श्रीमती, रहो कहो करि प्रीति ॥११॥

हे रानी ! बाल्यावस्था से ही तेरा ऐसा स्वभाव है। अतएव स्नेह पूर्वक बता कि तू श्री मती क्यों बनी ?

रानी उवाच

रूपमाला छन्द-सृष्टि को जो प्रकाश नाश विलास जानत मित्त ॥
भोग योग अयोग के सुख दुख मोहिन चित्त।
नित्य वस्तु विचार है न जरा जुरा न कराल ॥
हों रहों तिनि ते सुनो पति श्रीमती सब काल ॥१२॥

सृष्टि के प्रकाश, नाश एवं विलास का ज्ञान है। भोग, योग, अयोग

और सुख-दुख मेरे चित्त में नहीं हैं। नित्य प्रति वस्तु का विचार हृदय में रहता है। इसी कारण से हम सभी कालों में श्रीमती रहती हैं।

राजोवाच

दोहा—सुख है सुन्दरि धर्म फल, ताहि न सादर लेहु।
उदासीन कै भाव में, मिलै मांझ दुःख देउ ॥१३॥

हे सुन्दरी! धर्म का फल सुख है, उसे आदर पूर्वक तुम क्यों नहीं लेती हो? उदासीन के रूप में मिलकर दुख देती हो।

रानी उवाच

राजा कछू दुराइयै, जाके मन कछु और।
नारिनि के एकै शरन, पति सुनियै नृप मौर ॥१४॥

हे राजन्! दुख उसे करना चाहिये, जिसके मन में कुछ और भी साध हो। हे नृप मौर! नारियों के लिये तो उनका पति ही शिर मौर है।

कुबजै कल ही काहली, कुटिल कृतघ्न कुरूप।
सपने हूँ न तजै तरुणि, कोढ़ीहू पति भूप ॥१५॥

पति यदि लड़ाकू, कुटिल, आलसी, कृतघ्न और कुरूप भी हो और और यहां तक कि कोढ़ी भी हो, तो भी स्त्री अपने पति का त्याग नहीं करती है।

श्रीभागवते यथा श्लोक-दुःशीलोतुर्भगो वृद्धो जठो रुग्णोऽध नोपिवा।
स्त्रीभिः पतिर्न हातव्यो लोके नरक भीरुभिः ॥१६॥

स्त्री को चाहे नर्क में भले ही जाना पड़े, किन्तु वह दुःशील, वृद्ध, जठ, रुग्ण पति का भी त्याग नहीं करती है।

दोहा—पुनि तुमसे नृप नाथ शुभ, सुन्दर भव गुण लीन।
सब सुख दाता सर्वदा, एक विवेक विहीन ॥१७॥

फिर हे राजा ! तुम तो शुभ तथा संसार के सुन्दर गुणों में लीन रहने वाले हो। सभी को सदैव ही सुख देने वाले हो, किन्तु एक विवेक ही तुम्हारे पास नहीं है।

राजोवाच

काहे ते तुम प्रीतिमा, उदासीन मय जोग।
राजा ह्वै प्रभु करत हो, रंकनि के सो भोग ॥१८॥

हे प्रियतमे ! तू उदासियों वाले योग क्यों करती है ? राजा होकर भी रंकों के समान भोग करती है।

कालि जु कीने कर्म प्रभु, तेई कीजतु आजु।
आजु राजु सोई करत, कल्हि करहुगे काजु ॥१९॥

कल के दिन जो भी जिसने कर्म किये हैं, उन्हीं को आज भोग करते हैं। आज जो राज करते हो फिर कल वही करोगे।

सवैया—ठाढ़ेहिं खैयतु बैठहिं खैयतु,
खात परेहूँ महासुख पायो।
खातहिं खात सबै भरि जात सुखै,
बोई पीबो मेरे मुनि भायो।
आवत जातनिरे दिवि केशव,
कौनहिं कौन कहा नहिं खायो।
खैबो तऊ न उबीठतु है जग,
श्री जगदीश बुरे ढँग लायो ॥२०॥

ठाढ़े, बैठे, लेटे खाने से अत्यधिक सुख मिलता है। खाते खाते ही सब मर जाते हैं। सुख को बोकर उसे पान करना मुझे अच्छा लगता है। लोग आते और जाते हैं। इस आवागमन में किसने क्या नहीं खाया ? खाने के बाद भी सारा संसार ऊबता नहीं है। हे जगदीश ! यह संसार बहुत ही बुरे मार्ग पर आ गया है।

दोहा—इहि विधि वीते काल बहु, लह्यो जुनहीं अलक्ष्य ।
भक्षत हो प्रभु करम, ज्यों फिरि फिरि भक्ष्याभक्ष्य ॥२१॥

इस प्रकार से अलक्ष्य को देखते देखते बहुत समय व्यतीत हो गया। अपने कर्मों के अनुसार बार-बार सभी भक्षण करते हैं।

जोहीं जानो कर्म सब, मूबै जगत के कंत ।
आदि रस मध्यम विरस, अति नीरस है अंत ॥ २२ ॥

जिस समय संसार के सभी कर्मों का बोध हो जायगा, उस समय प्रारम्भ तो बड़ा सरस लगेगा और मध्यम में कुछ विरसता आ जायगी और अन्त बिल्कुल ही नीरस हो जायगा।

आदि अन्त मध्यहुँ सरस, नित्य न एई भोग ।
तिन्हहिं भोग जो भूप तुम, बूझि बूझि मुनि लोग ॥२३॥

नित्यप्रति भोगों में लीन न रहने पर आदि, मध्य और अन्त सरस रहते हैं। उन्हीं का हे भूप ! तू मुनियों से पूछ पूछकर भोग करता है।

सुनि सुनि सुन्दरि को वचन, भोगनि जानि अशर्म ।
आरंभे नरनाथ तब, नित्य न एई कर्म ॥ २४ ॥

रानी के बार बार इन वचनों को सुनकर राजा ने भोगों को व्यर्थ समझा। राजा ने तब इन कर्मों को छोड़ दिया।

विवेक उवाच

तीरथ न्हाए विधि पुनि, ऊपर बल आरण्य ।
अभय दान सो दान सब, दए नृपति मणिधन्य ॥२५॥

राजा ने अनेक प्रकार से उषर और अरण्य तीर्थों में स्नान किया और राजा ने सभी को अभयदान दिया।

ज्यों ए जम्बू द्वीप के ऋषि ऋषीश सब विप्र ।
जीते देश विदेश नृप, नृप नायक रति क्षिप्र ॥ २६ ॥

जिस प्रकार से जम्बू द्वीप में ऋषि और ऋषीश सभी विप्र हैं, उसी प्रकार से जितने भी देश विदेश के राजा हैं उन सब का नायक रति विप्र है।

यज्ञ अशेष विशेष सो तजि, भजि सुर सुरनाम।
निज मन्दिर आये तबै, राजा उत्तम गाथ॥ २७॥

यज्ञ और अशेष को छोड़ कर सुर सुरनाथ का भजन करना चाहिये। उत्तम गाथ के साथ उसी समय राजा अपने घर आये।

दीन दुःखित कायर कुमति, सूम अनाथ अपार।
गुंग पुंगु बहु मूढ़ जन, अंधलोग अविचार॥२८॥

दीन, दुखित, कायर, कुबुद्धि, कन्जूस, अनाथ, गूंगा, लंगड़ा तथा अन्य अनेक मूढ़ लोग और अन्धे अविचारी हैं।

देश नगरु अरु ग्राम के, कहा पुरुष कह बाम।
मन भायो पायो सबै, कीने सबै अकाम॥२६॥

देश, नगर और ग्राम के क्या स्त्री क्या पुरुष सभी ने मनोंवांछित फल पाया है। सभी ने अकाम किया है।

मंत्री मित्र जु पुत्र जन, मुनि गण प्रथम बनाइ।
पीछे कीनों तिलक शिर, रानी सब सुखदाइ॥ ३०॥

पहले रानी ने मन्त्री, मित्र और प्रजा को पुत्र माना और मुनि-गणों को तिलक दिया और फिर राजा ने शिर पर तिलक दिया। रानी सभी को सुखदायक है।

राजोवाच

मनसा वाचा कर्मना, रानी मन अवदात।
जोई मांगे सुन्दरी, सोई देहै बात॥३१॥

मन, वचन, कर्म से रानी का मन स्वच्छ है, जो कुछ हे रानी! तू मांगेगी वही मैं तुझे दूँगा।

रानी उवाच

जीत्यो जम्बू द्वीप सब, शत्रु मित्र परिवार।
बुधिवल विक्रम साहसे, त्यो जीतो संसार ॥ ३२ ॥

जम्बू द्वीप के सभी शत्रु मित्र परिवारों को आपने जीता है। बुद्धि बल और विक्रम से संसार को जीता है।

दै वर राजा चित्त में, कीनो यहे विचार।
जो छाड़ो घर घरनि अब, तो जीतौं संसार ॥ ३३ ॥

यदि चित्त में वर देने का हे राजन! निश्चय किया है, तो अब घर छोड़कर चल देना चाहिये और संसार को जीतना चाहिये।

सुन्दरी छन्द—सोइ रही जब सुन्दरि जानी।
यामिनि मे बहु जो मनमानी ॥
राज तज्यो सिगरी रजधानी।
जाइ महावन रैनि बिहानी ॥ ३४ ॥

जब राजा ने समझा कि रात्रि में रानी सो गई है, तब उसने राज्य को छोड़ दिया और रात्रि को महावन में जाकर व्यतीत किया।

मंदर के तट पर्ण कुटी करि।
तामहिं दण्ड कमण्डलु को धरि॥
माल हियो मृग चर्म धरयो तन।
दोइक तौ फल फूल के भोजन ॥ ३५ ॥

मंदर के किनारे एक पर्णकुटी बनाई। उसमें दण्ड और कमण्डल रखा। गले में माला पहनी और शरीर पर मृग चर्म धारण किया। फल फूल का भोजन करने लगे।

दोहा—स्नान करत पहिले पहर, कुसुम गहत युग याम।
तीजे पूजत देव फल, मूलनि चौथे याम ॥ ३६ ॥

पहले पहर में ही स्नान कर लेते हैं. युग याम में पुष्प तोड़ते हैं, तीसरे याम में देवोपासना करते हैं और चतुर्थ में फल-मूलों का पान करते है।

दोधक—जागि उठी जब ही निशि रानी।
पी बिनु सेज विलोकि डरानी॥
प्रीतम की पनहीं जब देखी।
कोरिक युक्ति हिये महि लेखी॥ ३७॥

रात्रि में रानी जब जग उठीं, तब उसने पति को खाट पर नहीं पाया। पति के जूतों को जब देखा, तब उसके मन में एक युक्ति आई।

मोकहँ छोड़ि गए नृप काननु।
ज्यों नलिनी तजि भौंर गजानन॥
हो अब जाऊँ जहां कहुँ भूपति।
है पत्नी कहँ पीव सदा गति॥३८॥

मुझे राजा छोड़कर वन उसी प्रकार से चले गये, जिस प्रकार से कमलिनी को छोड़कर भौंर चला जाता है। अब मैं उसी स्थान पर जाऊँगी जहां पर पति हैं। पत्नि की सुगति पति के साथ ही है।

दोहा—पत्नी पति बिनु दीन अति, पति पत्नी बिनुमन्द।
चन्दबिना ज्यों यामिनी, ज्यों यामिनि बिनु चंद॥३९॥

पत्नि पति के अभाव में दीन है और पति पत्नी के अभाव में मंद है। दोनों की स्थिति उसी प्रकार की हो जाती है जिस प्रकार से चांद के बिन रात्रि की और रात्रि के बिना चांद की।

पत्नी पति बिनु तनु तजै, पितु पुत्रादिक काइ।
केशव ज्यों जलमीन त्यों, पतिबिनु पत्नी आइ॥४०॥

पिता, पुत्र आदि के होने पर भी पत्नी पति के न होने पर अपने शरीर का त्याग कर देती है। जिस प्रकार से जल के बिना मछली है उसी प्रकार पतो के बिना पत्नी है।

मनसा वाचा कर्मणा, पत्नी के पति देव ।
अन्न दान तप सुरनि की, पति बिनु निःफल सेव ॥४१॥

मन, वचन, कर्म से पत्नी का देवता पति ही है। पति के बिना अन्न-दान तप आदि का सब फल निष्फल हो जाता है।

राज काज जिनिको लगैं, बोले मन्त्री मित्र ।
तिनके शिर सुख पाइ कै, शोचे राज चरित्र ॥ ४२ ॥

जिन भी मंत्री और मित्रों के पास राज काज था, वे सभी राजा के चरित्र पर विचार करने से सुखी हुये।

चंचरीक—जोग के विलाश नारि जाइ कै अकाश सो ।
देखियो प्रकाश ईश ऐनचर्म बास सो ।
मण्डियो दरी निवासु आसु छाँडु सुन्दरी ।
ऐन नामि लेप लाल ऐन की तुचाधरी ॥४३॥

योग के द्वारा नारी ने आकाश से जाकर देखा। उसने प्रकाश से देखा कि राजा ने चर्म धारण कर लिया है। अपने निवास के लिये कुटिया बना ली है। ऐसा देखकर रानी के आंसू निकल आया। सम्पूर्ण शरीर पर भस्म लगा रखी है।

दोहा—ईश कुमण्डल छाँड़ि कै, लयो कमँडलु आनि ।
जग दंडनि के दंड तजि, दारु दंडले पानि ॥ ४४ ॥

पतिदेव ने कुमण्डल को त्याग कर कमण्डल धारण कर लिया है। संसार को दण्ड देने की नीति को छोड़कर स्वतः दण्ड धारण कर लिया है।

विवेक उवाच

नर देवी नर देव पै, देव पुत्र के रूप ।
गई प्रगट तिहि निकट तब, अवलोकी पट भूप ॥४५॥

रानी राजा के पास देव पुत्र का रूप धारण करके गई। जब राजा के निकट वह पहुँची, तब उसने उसके वस्त्र देखे।

हरिगीतिका छन्द—अति गौर गूढ़ अनंग के अङ्ग अङ्ग रूप तरङ्ग
मुकुतान के उरहार लोचन श्वेत चारु सुरङ्ग ॥
उपवीत उज्जवल श्वेत अम्बर बालवेष कुमार।
नरदेव आसन तेउठ अवलोकि देव कुमार ॥४६॥

गौर वर्ण में काम देव की तरंगे अङ्ग अङ्ग में हिलोरे ले रही हैं। मुक्ताओं के हार गले में पड़े हैं। नेत्र सुन्दर श्वेत लाल रङ्ग के हैं। स्वच्छ स्वेत जनेऊ पड़ा हुआ है। देव कुमार को देखकर राजा अपने आसन से उठा।

दोहा—दीने आसन अर्घ नृप, कीने दीह प्रणाम।
बैठे दोऊ देव दुति, पूछि सकल गुण गाम ॥४७॥

राजा ने प्रणाम करके आसन और अर्घ दिया। सकल कुशल प्रश्न पूछकर दोनों ही कान्ति युक्त देव बैठे।

प्रगटत पर शुभ अपर शुभ, परशुराम से व्यक्त।
शोभित वेद व्यास से, सकल लोक व्यासक्त ॥४८॥

दोनों ही अत्यधिक शुभ परशुराम के सदृश दिखाई दे रहे हैं। वेद व्यास के समान शोभित हैं। सारा संसार उनपर व्यासक्त हैं।

नारच—शुक प्रकाश है हिये सुज्योति रूप लीन हो।
विचित्र बुद्धि अत्रि हो त्रिलोक शोक हीन हों ॥
वशिष्ट हौ कि निम्मि हो कि आदि ब्रह्म देवसो।
पराशरै पराश बुद्धि विज्ञ देव देव सों ॥४९॥

हे शुकदेव ! हृदय में प्रकाशित होकर उसी प्रकाश में तुम लीन हो। आप विचित्र बुद्धि वाले अत्रि हो। तीनों लोकों में शोक से हीन हो। आप वशिष्ट, निम्मि, आदि ब्रह्म, पराशर में से क्या हैं ?

चचरी—गर्ग हो निशर्ग भाव सर्व अप्रमान।
अंगिरा गिरा घिरा गिरीश के प्रमान हो ॥

कश्यपू कि वश्यकै अदेव देव छंड़ियो।
जन्हु हो कि भूवि श्रृज्य दुष्ट दण्डियो ॥ ५० ॥

गर्ग, निशर्गभाव, अंगिरा (जिन्होंने वाली को स्थिर कर दिया था) गिरीश, कश्यप, जन्हु (जिन्होंने पृथ्वी के सभी दुष्टों को दण्डित किया था) में से आप क्या हैं ?

गीतिका—यमदग्नि होकि शमग्नि, उत्तम शुद्ध सन्त कमानियो।
सिन्धु सोषिलयो सबै कि अगस्त्य, ए मन मानियो॥
मुनि मारकण्ड विहीन हो, मुनि मारकण्ड वखानियो।
मनि श्रोत इन्द्रिनि धोत, गौतम केश मानकि मानिये ॥५१॥

आप यमदग्नि या शमग्न में से क्या हैं ? आप अगस्त्य तो नहीं है जिन्होंने सारे समुद्र को ही पी लिया था। हे मुनि ! मारकण्ड से विहीन होकर भी मारकण्ड हो।

दोहा—कैधों विश्वामित्र हो, संतत विश्वामित्र।
पूज्ये पूजक ते भए, जिनिके अमित चरित्र ॥५२॥

या तो तुम विश्वामित्र हो, जिनका पूजन द्वारा ही अमिट चरित्र हो गया।

यद्यपि चतुरानन महा, चतुरानन करिहीन।
सोहत वेद व्यास से, नाहिन माया लीन ॥५३॥

यद्यपि ब्रह्मा जी महान है किन्तु ब्रह्मा जी का मुख आपके मुख से कान्ति में हीन है। आप वेद व्यास के समान शोभायमान है। माया से आप निर्लिप्त हैं।

कैहो ऋषि ऋषिराज तुम, देव अदेव कि सिद्ध।
हमसो प्रकट सुनाइयै, अपनो नाम प्रसिद्ध ॥५४॥

या तो तुम ऋषि या ऋषिराज हो या देव अदेव में सिद्ध हो। मुझसे अपने नाम को बताइये।

देव पुत्र उवाच

तोमर—सुनि शुद्ध मानस अंश ।
नरदेव देव प्रशंश ॥
सुलोकते मति धीर ।
हम आइयो तवतीर ॥५५॥

तुम्हें शुद्ध मानस का अंश और नर तथा देवों के द्वारा प्रशंसित जानकर, मैं सुलोक से आप के पास आया हूँ ।

दोहा—महादेव को पुत्र हौं, मानसीक सुनुराज ।
कौन काज आए कहो, काननमे मुनि साज ॥५६॥

हे मानसीक ! मैं महादेव का पुत्र हूँ । हे मुनि ! आप किस कारण से बन में आये हैं ।

राजोवाज

रूपमाला छन्द—जीति देश विदेश त्यों,
जग जीति बैशह काज ।
हों शिखीधुज नाम,
मालव देश को अधिराज ॥
जीति हो जगु क्यों कहो,
गुरु के विना उपदेश ।
पकनाहिन चक्षु भूपति,
ज्ञान को न प्रवेश ॥५७॥

मैंने देश विदेशों को जीत लिया है और उसी प्रकार संसार को भी जीत लूँगा । शिखीध्वज मेरा नाम है । और मालव देश का राजा हूँ । लेकिन गुरु के उपदेश के बिना संसार को कैसे जीतोगे । अभी तुम्हारे नेत्र भी पक्व नहीं हुआ है और ज्ञान का प्रवेश भी नहीं हुआ है ।

दोहा—ज्ञान गुरु पै सीखियै, जब उपजै विज्ञानु।
तब अधिकारी होहुगे, भूपति जिय में जानु ॥५८॥

पहले गुरु से ज्ञानार्जन कीजिए और फिर जब विज्ञान उत्पन्न हो, तब आप विश्व विजय के अधिकारी होंगे। हे राजन्! इसे अच्छी प्रकार समझ लो।

राजोवाच

तारक छन्द—तुमहीं मुनि मित्र पिता युत मेरे।
सिखवो उपदेश सबै हित केरे॥
जिहिते सब ज्ञान प्रयोगनि जानो।
अति श्री परमाँनद को सुखमानो ॥५६॥

तुम्हीं मेरे मुनि मित्र और पिता हो। मेरे हित के सभी उपदेशों को सिखाओ, जिससे ज्ञान के सभी प्रयोगों को समझ सकूं। श्री परमानंद का सुख मानो।

देव पुत्र उवाच

दोहा—राजा एक कथा सुनो, सहसा कर्म विधान।
जाते सहसाकर्म सब, छांड़ौ बुद्धि निधान ॥६०॥

हे बुद्धि के निधान राजा! जिसके कारण से सहसा कर्म होते हैं उसे छोड़ दो।

तारक—हुतो इक भूपके वारन नीको।
अति सुन्दर शूर मनोहर जी को॥
तेहि ऊपर एक महावन सोहै।
जनु मेघ चढ़्यो मघवा मनु मोहै ॥६१॥

एक बार एक राजा बहुत ही सुन्दर था। अत्यन्त ही सुन्दर शूर और हृदय का बड़ा अच्छा था। उसके ऊपर एक महावत शोभा दे रहा था। उसे देखकर ऐसा लगता था कि मानों मेघों के ऊपर इन्द्र शोभित हो।

अधरात भए वन की सुधि आई।
गजराज गिरयो जब ग्रीव कँपाई ॥६२॥

आधीरात होने पर वन का स्मरण आया, जब हाथी गरदन हिलाकर गिर पड़ा।

रूपमाला छंद—छोड़ि जीवत ताहि खंभहि तोरि गौ वन माँह।
स्यो जंजीरनि सोइ ग्यो गिरिके गुहा गुरु माँह॥
मुरछाहि जागे उठि गयो गजपाल राजदुवार।
संग लें चतुरंग सेनहि आइगो तिहि बार ॥६३॥

उसे जीवत ही छोड़ कर खंभे को तोड़कर वन को गया। पर्वत की गुफा में जंजीरों से बंधा हुआ सो गया। मुर्छा हटने पर हाथी राजद्वार पर गया। साथ में चतुरंगिनी सेना लेकर आ गया।

दोधक—देखि तिन्है तरु के गणतोरे।
मारे मनुष्य घने घन घोरे॥
जोर घटाइ गए नगरी लें।
राखियो दीरघ खान दरी लें ॥६४॥

उन्हें देखकर वृक्ष के समूहों को तोड़ा और अनेक मनुष्यों को मार डाला। लोग शक्ति कम करके उसे नगर को ले गये। उसे बड़ी खान दरी में रखा।

आवै न जाइ तहाँ जन कौनो।
लाजत लै रह्यो खात के कोनो ॥६५॥

वहाँ पर कोई भी व्यक्ति न तो आता था और न जाता था। लज्जावश एक कोने में बैठे बैठे खाया करता था।

दोहा—सुखविलास सन्मान अति. तोई गए सुजान।
भूषण भोजनहूँ मिटे, सबै राज सुख काम ॥६६॥

सुख, विलास, सम्मान आदि सभी कुछ नष्ट हो गया। राज्य सुख के सब भूषण भी चले गये और भोजन भी नहीं मिला।

तारक—गज पाल सुतो गज को मनु जानै।
खंभ नहीं नृप मोह बखाने॥
शंकर होइ न वास न जानो।
भूपति चित्त अहष्ट न आनो॥६७॥

गजपाल को गज समझिये और खंभों को राजा का मोह मानिये। इस अवस्था में शंकर का वास नहीं हो सकता। हे भूपति! इसलिए अपने चित्त में अहंकार को मत धारण करो।

नाहिं ने मोह समूल उखारयो।
नाहिने शत्रु बड़ो मनु मारयो॥
कानन माँझ सुवासन आए।
कैसे अहष्ट पै जात बचाये॥६८॥

मोह का अभी तुमने विनाश तक नहीं किया है। मन जो सबसे बड़ा शत्रु है उसे भी अभी नहीं मारा है। वन में वास करने के लिए चले आए हो। किस प्रकार से अहष्ट द्वारा बचाये जाते हो।

केशव कैसेहु कर्म के लीने।
देशहिं जाहु जो योग विहीने॥
लोक करै उपहास तुम्हारे।
रोके रहैं न बड़े अरु बारे॥६९॥

किसी भी प्रकार से कर्म में लीन हो। देश में यदि योग से अनभिज्ञ जाओगे, तो सभी छोटे बड़े तुम्हारा उपहास करेंगे।

दोहा—ज्यों न होइ गज की कथा, सो कीजो नृप नाथ।
ज्ञान विना वन घोर है, जौ लो लज्जा साथ॥७०॥

गज वाली दशा न हो, वही काम हे राजा करो। जब तक लज्जा साथ है और ज्ञान नहीं तब तक वन भयावह है।

सुख ही में दुख जीति हो, घर ही में वन मानि।
क्रम क्रम होउ उदास नृप, तब सेवो वन आनि ॥७१॥

घर को ही बन मान कर। सुख में दुख को भी जीत लोगे धीरे-धीरे पहले उदास बनो और फिर वन की सेवा के लिए आओ।

सहसा कर्म न कीजई, सहसा ज्ञान विज्ञान।
जब केवल हिंसा घटी, छाड़िये भव ध्यान ॥७२॥

एकाएक न तो कोई कर्म करना चाहिए और न ज्ञान विज्ञान की ओर ही बढ़ना चाहिए। जब हिंसा कम हो जायगी तभी संसार का ध्यान कम हो जायगा।

ताते राजा छाँड़ि हठ, जैये अपने धाम।
ज्ञानसीखि वन आइये, तब पूजे मन काम ॥७३॥

हे राजन्! इस कारण से हठ छोड़कर अपने घर चले जाइये और वहाँ से ज्ञान सीख कर वन में आइये और फिर अपने मन के कामों को पूरा करो।

एक कहों अज्ञान की, औरो कथा विचारि।
तब कीजो विज्ञान को, संग्रह मनतम जारि ॥७४॥

अज्ञान की एक और कथा कहता हूँ। मन के अन्धार को जलाकर फिर विज्ञान का संग्रह करना।

एक हुतो धरणी धनिक, सब सुख पूरण गेह।
छाँड़ि गयो वन गह वरनि, चिंतामणि सदेह ॥७५॥

एक धरणी धनिक था। उसके घर में सब प्रकार का सुख था। वह सदेह सब कुछ छोड़कर चला गया।

दोधक—संपति सुन्दरि के सुख छाड़े।
जाइ महागिरि के पद मांड़े॥
देखि मनै मन मोह्यो महाई।
चिंतामणि मग में तिहि पाई ॥७६॥

सपत्ति और स्त्री के सुखों को छोड़ कर महागिरि में जाकर उपासना की। उसे देखकर जो अधिक मोहित हुआ उसे मार्ग में ही चिंतामणि मिल गयी।

दोहा—चिंतामणि को पाइ कै, छूवै नहीं जु हाथ।
अन जानत ताके मते, छोड़ि गयो नरनाथ ॥७७॥

चिंता मणि को पाकर, जो उसे हाथ से भी न छूता उसे नरनाथ (ईश्वर) ने ऐसा दिया कि उसे कुछ ज्ञात हीं नहीं हुआ।

कौनहुँ एक अभाग ते चिंतामणि ते भागि।
काई आगे काच मणि, सो लीनी पौ लागि ॥७८॥

किसी अभाग्य से चिन्तामणी से भागा और कांच की मणि को उठा लिया।

दोधक—ता मणि हेतु कछू न विचारयो।
बालक ते बढ़ियों धन डारयो ॥
निर्द्धन ह्वै करि बेचन धायो।
पाई फजीहति वित्त न पायो ॥७६॥

उस मणि के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं सोचा और लड़कपन के कारण सबसे सुन्दर धन जो था उसे डाल दिया। निर्धन होकर के उस कांच को बेचने के लिये दौड़ पड़ा। बेचने में धन तो नहीं मिला किन्तु फजिहत अवश्य हाथ लगी।

दोहा—तैसे परमानन्द लगि राज तज्यो सुखकन्द।
बढ़ी फजीहति होइ ज्यों सुक्खु न परमानन्द ॥८०॥

वैसे ही तुमने राज्य छोड़कर परमानन्द से स्नेह किया। यदि परमानन्द से सुख नहीं मिला तो बड़ी फजीहत होगी।

ताते तुम गृह जाहु नृप, सीखहु गुरु सों ज्ञान।
पुनि तुम सवस त्याग कै, जीतो जगत प्रमान ॥८१॥

इस लिये हे राजन ! आप घर जाइये और गुरु से ज्ञान का अर्जन कीजिये। फिर तुम सर्वस्व छोड़कर सारे संसार को जीतो।

राजोवाच

हों न मुरयो वा बालते कबहुँ कौनहुँ कर्म।
अबहों कैसे मुरकिहों, राज पुत्र इहि धर्म ॥८२॥

किसी भी काम को करने से अभी तक पीछे नहीं हटा हूँ। हे राजन्! अब इस धर्म से कैसे पीछे हटूंगा।

राजा जी की शासना, दान प्रतिज्ञा भङ्ग।
तोको करै मरै नहीं, श्वान सियार प्रसङ्ग ॥८३॥

राजा का शासन दान और प्रतिज्ञा को मरकर भी भङ्ग नहीं करना चाहिये।

राजतज्यों सब बंधुजन, धन धरणी वर नारि।
और जो सर्वस त्याग है, मोसों कहो विचारि ॥८४॥

राज्य को छोड़ दिया, बंधु, धन, पृथ्वी और नारी को छोड़ दिया है। और भी जो त्याग हो, उसे भी विचार कर कहिये।

देवपुत्र उवाच

दोहा—जाको राजा सङ्ग, है ताको तजि अनुराग।
पर्णकुटी खग मृगनि छिति, कैसो सर्वस त्याग ॥८५॥

जो कुछ साथ में है, उसका भी अनुराग छोड़ देना चाहिये। पर्णकुटी खग और मृगों के लिये हैं। फिर यह आप का सर्वस्व त्याग कैसा है ?

यह सुनि राजा तजि गयो, पर्णकुटी तर खंड।
जाइ शिला तल पौढ़ियो, मनमे बोध अखण्ड ॥८६॥

यह सुनकर राजा ने पर्णकुटी को छोड़ दिया और जाकर पत्थर की शिला पर लेट गया उससे मन को बोध हुआ।

देवपुत्र तहँई गयो, जहँ राजा मतिवन्त ।
देखि देव पुत्रहि भयो, उर आनंद अनन्त ॥८७॥

जहां पर राजा था, देव पुत्र उसी स्थान पर गया । पुत्र को देखकर राजा को अत्यधिक आनन्द हुआ ।

राजोवाच

पर्णकुटी दै आदि में, कीनों सर्वस त्याग ।
छांड़ो दण्ड कमण्डल, मृगज तुचा अनुराग ॥८८॥

पर्णकुटी आदि सभी को छोड़ कर त्याग किया है । दण्ड, कमण्डल, मृग, चर्म का अनुराग भी छोड़ दीजिये ।

छांड़ि दियो तिनहूँ तबै, महाराज मतिधीर ।
देव पुत्र तहँई गयो, जहँ नृप धरे शरीर ॥८९॥

महाराज जहां पर उन सभी को छोड़ कर बैठे थे, वहीं पर देव पुत्र गया ।

राजोवाच

दण्ड कमण्डलु मृग तुचा, एऊ तजे सुभाग ।
दुख सुख क्षुधा पिपाश छिन्न, कैसे सर्वस त्याग ॥९०॥

दण्ड, कमण्डल मृग चर्म को भी छोड़ दिया है, किन्तु दुख सुख क्षुधा पिपास तो है ही, फिर सर्वस्व त्याग कैसा है ?

विवेक उवाच

देवपुत्र तहँई गयो, जहँ नृप द्वंद्वज हीन ।
यथा लाभ सन्तोष तो, सर्वस त्याग प्रवीन ॥९१॥

देव पुत्र वहीं गया जहां राजा द्वंदों से परे था । वह उचित लाभ सन्तोष एवं सब प्रकार के त्याग में प्रवीन है ।

देवपुत्र उवाच

जाते इन्द्रिय व्याकुला, तासों तजि अनुराग ।
तब कहिबो नरदेव मणि, सांचो सर्व त्याग ॥६२॥

जिस कारण से इन्द्रियां व्याकुल हों, उसी के अनुराग को छोड़ देना चाहिये । हे नर देव ! उस समय ही मैं सच्चा त्याग कहूँगा ।

विवेक उवाच

जब लाग्यो देहे तजन, महाराज मतिधरि ।
देव पुत्र तब बरजियो, बोल्यो वचन विचारि ॥६३॥

जब मतिधीर महाराज शरीर का त्याग करने लगा, तब देव पुत्र ने उसे रोक दिया और विचार करके कहा ।

देव पुत्र उवाच

देह त्याग नहिं कीजई, कीजै चित्तहि त्याग ।
चित्त त्याग ते जानिबो, साँचो देही त्याग ॥६४॥

देह का त्याग नहीं करना चाहिये वरन चित्त का त्याग करना चाहिये । चित्त के त्याग से ही सच्चे शरीर के त्याग का ज्ञान होगा ।

राजोवाच

दोधक—चित्त सरूप सुमोहिं सुनावो ।
क्यों तजिये वहई समुझावो ॥

चित्त के उस स्वरूप को सुनाओ । उसे क्यों छोड़ना चाहिये, इसे भी समझाइये ।

देवपुत्र उवाच

वासना चित्त सरूप है सांचो ।
ताको अहंपद वीर वाचो ॥६५॥

चित्त वासना का स्वरूप है । वीरज उसका अहंपद है ।

दोहा—चित्त अहंपद वीरज, कीजै पाश विनाश।
नृपवर तबहीं होइगो, सर्वस त्याग प्रकाश ॥९६॥

अहं के पद रूपी बीज का चित से विनाश करना चाहिये। हे नृपवर! उसी समय सच्चा सर्वस्व त्याग होगा।

विवेक उवाच

इहि विधि सर्वश त्यागि के, भयो परम पद लीन।
देवपुत्र उपदेशते, सुनि प्रभु प्रगट प्रवीन ॥९७॥

इस प्रकार से सर्वस्व त्याग कर राजा परम पद में लीन हो गया। देव पुत्र के उपदेश से ही यह सब कुछ हुआ।

तृष्णा कृष्णा षटपदी, भय भ्रमरनि मति मंडि।
को जाने कित उड़ि गई, हृदय कमल को छंड़ि ॥९८॥

हृदय कमल को छोड़कर पता नहीं कहां तृष्णा कृष्णा, षटपदी भाग गईं जो कि सदैव भय को ही पैदा करने वाली थीं।

राज श्री मुनि संपिनी, क्रोधादिक अहि लीन।
आवत उर गरुडध्वजै, कब ह्वै गई बिलीन ॥९९॥

राज श्री सर्पणी है और वह क्रोध आदि में ही लीन रहती है। गरुण के आते ही वह पता नहीं कहां विलीन हो गई?

अमित अविद्या राक्षसी, प्रेत सहित पाखंड।
राम निरंजन रटत मुख, उतरि गई सतखंड ॥१००॥

अमिट अविद्या राक्षसिनी है। प्रेत के साथ पाखण्ड है। राम का नाम ही रात दिन रटते हैं। इस प्रकार से वह सातों खण्ड पार कर गई।

सुन्दरी छन्द—नैननि मीलन कै अघमोचन।
जाइ मिल्यो अपने पदसों मन॥
संतत निश्चल ह्वैहि तह्यो तनु।
काढयउ कीर ।श तनु सों जनु ॥१०१॥

यह नेत्रों का बन्द करना है अथवा पापों का विनाश है। अपने पद से जाकर मन मिल गया। मन अत्यधिक शुद्ध और निश्चल हो गया। ऐसा लगा कि मानों किसी ने पत्थर से कीड़ा निकाल कर रख दिया हो।

सुन्दरि ऐसि दशा जब देखी।
आपने भाग दशा मन लेखी॥
राज जगावन को मति कीनी।
सिंहनि नादनि[1] सों मति मीनी॥१०२॥

१ शब्द।

सुन्दरी ने जब ऐसी अवस्था देखी, तब उसने अपने भाग्य को सराहा। राजा को जगाने का विचार किया, किन्तु सिंहों के नाद के कारण साहस नहीं हुआ।

कैसहुँ ध्यान विधान[1] न छूटै।
अच्युत[2] को रस अद्भुत लूटै॥
देवज[3] शामज[4] शब्द सुनायो।
या क्रम हीं क्रम भूतल आयो॥१०३॥

१ नियंत्रण २ निर्विकार, परमेश्वर ३ साम का एक भेद ४ साम

नियंत्रणों से किसी प्रकार ध्यान छूट जाय और निर्विकार ईश्वर का रसास्वादन करने लगे। साम का कोई शब्द भी सुनाई पड़ा है या यों ही धीरे-धीरे पृथ्वी तल पर आ गये।

देव तनूज[1] तहीं ढिग देख्यो।
मित्र मनो वच काइ कै लेख्यो॥
तेरे प्रसाद महा प्रभु पायो।
मो जयके यश भूतल छायो॥१०४॥

१ पुत्र।

देव पुत्र उसी समय अपने पास देखा। मन, वचन और कर्म से उसे देखा। तेरे प्रसाद से ही मैंने ईश्वर को पाया और मेरा पृथ्वी तल पर यश फैल गया।

और कछू अब जो उपदेशो ।
पूरण ज्ञान महामन लेशो ॥
जानिवे हों सुसबै अब आन्यो ।
मोहि मिटी सब को पहिचानो ॥१०५॥

अब यदि और कोई उपदेश दीजिए तो उसे पूर्ण ज्ञान मान कर अपने मन में रखूंगा । अब जो कुछ भी मुझे जानना था वह सभी जान गया हूँ क्योंकि अब मेरा मोह नष्ट हो गया ।

आइ गए तबहीं सुरनायक ।
संग लिये त्रिय को गणमायक ॥
सुन्दरि नाचति वीन बजावति ।
पंचम के सुर उत्तम गावति ॥१०६॥

उसी समय सुरनायक, इन्द्र आ गये । वे अपने साथ में स्त्री को लिए हुए थे । अनेक सुन्दरियाँ उत्तम ढग से पंचम स्वर में गा और वीणा बजा रही थीं ।

हाव विभाव प्रभाव करें सब ।
मोह विधान थकी करि कै अब ॥
राजहि यों जग मोहन के रस ।
क्योंकहि जात कहो तिनसो वस ॥१०७॥

उन सुदरियों ने अनेक प्रकार से हाव विभाव करके अपना प्रभाव जमाना चाहा किन्तु मोहित करने के उनके सभी विधान थक गये । राजा ईश्वर के रस में लीन था, फिर उससे कैसे वश चल सकता था ।

इन्द्र उवाच

साधु अगाधु चल्यो नृप नायक ।
देवपुरी अब है तुम लायक ॥
भाँतिनि भाँतिनि भोग करो सब ।
देव पुरी अभिलाष करौ अब ॥१०८॥

हे अगाध साधु, नृपनायक ! अब यहां से चलिए। देवपुरी तुम्हारे ही योग्य है। अनेक प्रकार के वहाँ पर चलकर भोग करो और उस देवपुरी में अपनी सब प्रकार की अभिलाषा की पूर्ति करो।

राजोवाच

देव पुरी को देव कौ, को भोगी को भोग।
हमयों प्रगट सुनाइये, साधु असाधु जे लोग ॥१०९॥

देवपुरी में रहने वाले देव कौन हैं? भोगी कौन है? भोग पदार्थ क्या हैं? साधु और असाधु कौन हैं? इनका रहस्य मुझे भली प्रकार से समझाइये।

करि प्रणाम यह बात सुनि, इन्द्र गए उठि धाम।
रानी मन सुख पाइयो, सफल भए मन काम ॥११०॥

इस बात को सुनकर, इन्द्र ने प्रणाम किया और अपने घर चला गया। रानी के मन को अत्यधिक प्रसन्नता हुई और उसने समझा कि अब मेरे मन के सभी काम पूरे हो जायँगे।

देवज[१] को तनु छाँड़ि कै, चूड़ाला धरि रूप।
गई प्रगट जहँ शोभियै, भूतल भूषण भूप ॥१११॥

१ देव पुत्र।

देवपुत्र के शरीर को छोड़कर चूड़ाला रुप को धारण कर उस स्थान पर जाकर अपने रुप को प्रकट किया, जहाँ पर पृथ्वी का राजा सुशोभित है।

राजोवाच

दोधक—रानि विलोकि कह्यो नृप साँई।
सुन्दरि ह्याँ किहि कारण आई॥
पूजि सबै तुव चित्त की इच्छा।
और कछू अब देहि न शिक्षा ॥११२॥

राजा ने रानी को देखकर कहा कि हे सुन्दरी ! तुम यहाँ पर किस कारण से आई हो ? तेरी सभी मनोभिलाषा को मैंने स्वीकार किया है। अब क्या तू मुझे कुछ और शिक्षा नहीं देगी ?

रानी उवाच

जानु न देवज को बपु मेरो।
मैं प्रभु सङ्ग न छाड़ि हौं तेरो॥
मैं जुदई ढिठई तजि लाजा।
सोक्षमिवी विनती यह राजा॥११३॥

मेरे इस शरीर को देव पुत्र का मत समझो। हे प्रभु ! मैं तुम्हारा साथ नहीं छोड़ूंगी। मैंने लज्जा को त्याग कर जो भी उच्छृङ्खला की है उसे हे राजन् ! क्षमा कर देना।

राजोवाच

नाराच—उधारि[1] नर्कते सुधारि दिव्य लोक ते दियो।
अलभ्य लाभ मोहिए अदृष्ट दृष्ट देखियो॥
अशेष भावसों विशेष देवि सेव तैं करी।
भई न है न होइगी न तो समान सुंदरी॥११४॥

१ निकल कर

तू ने मुझे नर्क से निकाला और मुझे सुधार कर द्विव्य लोक दिया। मैंने तो अपने हृदय में अप्राप्त ऐसा लाभ पाया है, जिससे मैं अदृष्ट वस्तुओं का भी साक्षातकार कर लेता हूं। सभी भाव से हे देवी ! मैंने तेरी सेवा की है। तेरे समान सुन्दरी अभी तक न तो हुई है और न भविष्य में ही होगी।

दोहा—तो प्रसाद मैं जीतियो, सुंदरी सब संसार।
मांगि सुलोचनि और कछु, अपने चित्त विचार॥११५॥

सारे संसार को मैंने तेरे ही प्रसाद से जीत लिया है। हे सुलोचनी ! जो कुछ भी तेरे चित्त में हो वह मांग ले।

रानी उवाच

जग जीत्यो त्यों जीतियै, वैरी नरक अजीत।
लोक लोक गावै जग, श्री विदेह को गीत ॥११६॥

जिस प्रकार से संसार को विजय किया है, उसी प्रकार अजय शत्रु नर्क को भी जीत लीजिये। सारा संसार विदेह के गीतों का गान करेगा।

तेरो मत धरिहों उरसि, करों निषेध न हान।
अमल कमल लोचनि सदा, मन प्रतिबिंब समान॥११७॥

तुम्हारे विचारों को अपने हृदय में धारण करूँगा और निषेध को किसी प्रकार नहीं छोड़ूँगा। स्वच्छ कमल नेत्रों वाली तू मेरे मन के प्रतिबिम्ब के सामान है।

विवेक उवाच

मदिरा—बूडि गई वट जोक चतुर्दश भूतल लै यश बेलि धई।
देखत देवि भली पति प्रेम पतिव्रत की यह रीति नई॥
लोक जिताइ विलोकि जिताइ विदेह की कीरत जीति लई।
लोक पुरंदर लै वह सुंदरि मंदर ते निज देश गई॥११८॥

संसार को सभी दिशाओं में वट की बेल बूड़ गई और पृथ्वी तल पर यश को बेलि को लगा दिया। अनेक देवियाँ पतिव्रता की इस नई रीति को देखती हैं। लोक और विलोक को जिता कर विदेह तक की कीर्ति को जीत लिया। वह सुन्दरी इन्द्र के देश को मंदर से लेकर अपने देश को गई।

दोहा—दश हजार वरषैं हरषि, कीनो भोग अशोक।
राज भार दै पुत्र शिर, गये निरंजन ओक॥११९॥

दस हजार वर्षों तक बिना किसी शोक के भोग किया। पुत्रों के शिर पर राज्य का भार देकर निरंजन (ईश्वर) के घर गये।

ऐसे तुमहूँ जीति जग, राज्य करो संसार।
मिलता अपने रूप को, लागत नाहीं बार ॥१२०॥

इसी प्रकार से तुम भी संसार को जीतकर संसार के ऊपर राज्य करो। अपने रूप को प्राप्त करने में समय नहीं लगता है।

भयो जीत जड़ शुद्ध अति, बहु विवेक उपदेश।
तुम प्रताप जो शत्रु, तुव राजा वीर दिनेश ॥१२१॥

विवेक के उपदेशों से जड़ जीव अत्यधिक शुद्ध हो गया। तुम्हारे प्रताप से ही शत्रु हैं और तुम्हीं से वीर राजा बने हुए हैं।

वीरसिंह उवाच

पाइ शुद्धता जीव तब, कीनो कहा विचार।
कहियै हमसों करि कृपा, सुनि समुझै संसार ॥१२२॥

जीव ने शुद्धता को पाकर क्या विचार किया? मुझसे कृपा करके कहिए और जिसे सुनकर सारा संसार समझ सके।

राजारानी की कथा, कहै सुनै नर कोइ।
संपति पावै लोक इहि, मरे परमगति होइ ॥१२३॥

राजा और रानी की कथा को जो भी मनुष्य कहेगा और सुनेगा उसे इस संसार की सभी सम्पति प्राप्त होगी और परमगति को प्राप्त हो सकेगा।

इति श्री विज्ञानगीतायां विवेक जीव सम्वाद वर्णनं नाम षोडशः प्रभावः ॥१६॥

सप्तदशः प्रभावः

दोहा—वेद सिद्धि सो जीव सों, सप्तदशौं सम्बाद।
अज्ञान ज्ञान की भूमिका, बर्णत जाइ विषाद ॥१॥

सिद्धि वेद और जीव का सत्रहवें प्रभाव में सम्वाद है। विषाद युक्त अज्ञान और ज्ञान की भूमिका का वर्णन करते हुए चले जाते हैं।

इहि उपदेश विवेक के, जीव भयो जब शुद्ध।
श्रद्धा शान्ती आइ जहँ, बैठे राज प्रसिद्ध ॥२॥

विवेक के इस उपदेश से जीव जब शुद्ध हो गया, तब श्रद्धा और शान्ति उस स्थान पर आईं, जहां पर विवेक राज बैठे हुए थे।

श्रद्धा उवाच

हाथ भयो मन जीव को, जानाते बड़ भाग।
अब विवेक सों जीवसो, बाढ़े गो अनुराग ॥३॥

बड़े भाग्य से जीव के वश में मन हुआ। अब विवेक और जीव का अनुराग बढ़ता ही जायगा।

शान्ति उवाच

रूपमाला छंद-दुष्ट जीवन को जहाँ प्रभु करत आसु विनाशु।
साधु लोगनि को जहाँ अवलोकियै वशु वाशु ॥
दास सेवत ईश को जहँ प्रेम सो दिन राति।
जानियै तहँ नित्य आनन्द को उदै बहु भांति ॥४॥

दुष्ट जीवन का जहां पर प्रभु जी सृजन और संहार करते हैं, जहाँ पर साधु लोगों का ही बास रहता है, जहाँ पर दास बड़े ही प्रेम से ईश्वर की नित्य प्रति उपासना किया करते हैं, वहाँ पर नित्यप्रति ही आनन्द का उदय होता रहता है।

दोहा—दोऊ प्रभु जब एक रस जानै शांती ऐन।
गई तब हरि भक्ति पै. वेद सिद्धि को लेन ॥५॥

हे प्रभु! जब एक ही रसको दोगे तो शान्ति को उसका कुछ पता चले। हरिभक्त के पास वेद सिद्ध को लेने गया।

महाराज तुमको सखी, बोलत है करि प्रीति ।
मनसा वाचा कर्मना, वेगि चलौ रस रीति ॥६॥

हे महाराज ! तुम्हें अत्यधिक स्नेह से बुला रही है । मन, वचन और कर्म से इसकी रीति को स्वीकार कर शीघ्र ही चलो ।

वेदसिद्धि—निष्ठुर प्रीतम त्यौं सखी, क्यो करि हौ अवलोक ।
इत युवती जो जिनि दयो, मोहि विरह मय शोक ॥७॥

जिस प्रकार से प्रीतम निष्ठुर है, उसी प्रकार से सखी होगी । इसलिए उसे क्यों देखूँगा । इस प्रकार की युवती मुझे नहीं दी । मुझे विरहयुक्त शोक ही प्राप्त हो सका ।

देवी उवाच

यह अपराध अगाध सब, महामोह को जानि ।
दोष कछू न विवेक को, काल वाल अनुमानि ॥८॥

यह अगाध अपराध महामोह का है । इसमें विवेक का कुछ भी दोष नहीं है ।

शान्ती उवाच

पियदेवीहि उराहनो[1], ऐसे थल जिनि देहु ।
तून कछू जानति सखी, हौं जानति कै देहु ॥९॥

१ उलाहना ।

ऐसे स्थल पर प्रिय देवी को कुछ भी उलाहना नहीं देना चाहिये । हे सखी ! तुझे इस सब का कुछ भी ज्ञान नहीं है । मैं इसे भली प्रकार जानती हूं ।

गीतिका—शील है कुल नारि को वह आपदा सहि लेइ ।
काल कटै काल पै नहि नेकु काटन देइ ॥
हाव भाव विभाव करिकै वश्य कै पति लेइ ।
जाइयै सुप्रबोध पुत्रहि नित्य आनँद देइ ॥१०॥

नारी के कुल की सबसे बड़ी वस्तु शील है। वह सब प्रकार की विपत्तियों को सहन कर लेती है। काल सब कुछ काटने की कोशिश करता है किन्तु उसे कुछ भी काटने नहीं देती है। अपने अनेक हाव, भाव, विभावों के द्वारा पति को वश में कर लेती है। वह अपने पुत्र को नित्य ही आनन्द के साथ प्रबोध दिया करती है।

दोहा—वेद सिद्धि हँसि उठि चली, शांती जननी साथ।
जहां विवेक विशेष मति, कहत जीव सों गाथ ॥११॥

शान्ति मा के साथ वेद सिद्ध उठकर चल दी। वे उस स्थान पर पहुँची, जहां पर विवेक जीव के साथ वार्तालाप कर रहा था।

शान्ती उवाच

रूपमाला छन्द—वेद सिद्धि करे प्रणामहिं ईश नेकु निहारि।
मातु है यह ज्ञानदा अब चित्त माहँ विचारि॥
देवि सों जननीनि सो दिन दोह अंतर मानि।
मातु बंधति मोह बंधन देवि काटति जानि ॥१२॥

वेद सिद्धि प्रणाम कर रही है, हे ईश! थोड़ा उधर तो देखिये। यह माता ज्ञान को देने वाली है, इसे अपने चित्त में भली प्रकार समझ लीजिये। देवी और जननी में रात दिन का अन्तर मानना चाहिये। माता मोह के बंधन में बांधती है और देवी मोह के बन्धनों को काटती है।

केशव उवाच

मनहीं माँझ विवेक को, करै प्रणाम अशेष।
अवनत मुख बैठी अवनि, वेद सिद्धि शुभवेष ॥१३॥

विवेक को मन में ही सभी ने प्रणाम किया। शुभवेश में वेद सिद्धि मुख नीचा करके बैठ गई।

जीव उवाच

माता कहिये दिवस बहु, कीने कहाँ व्यतीत।
वेद ग्रहनि मठ शठनि मुख, सुनि मुनि मानसभीत ॥१४॥

हे माता! बहुत दिन तूने कहां पर व्यातीत कर दिये। हे मानस के मीत! दुष्टों के मुख से वेदों को ग्रहण करती रही।

तत्त्व तुम्हारो तब तहां, काहु शम दवों मात।
नहि नहिं द्राविड़ दक्षिणी, अक्षर स्वच्छ बचात ॥१५॥

हे माता! तुम्हारे शम तत्व को किसे देता। द्राविण और दक्षिणी लोगों को अक्षरों तक का तो ज्ञान नहीं था।

भुजंग प्रयात—धरें एन चर्मस्सदा देह सोहैं।
जहाँ अग्नि तीनों द्विजातीनि मोहै॥
चहूँ ओर यज्ञ क्रिया सिद्धि धारी।
चले जात में वेद विद्या निहारी॥१६॥

शरीर के ऊपर चर्म धारण किये सदैव शोभा देते हैं। जहाँ पर तीनों अग्नियां है, वहां पर द्विजातियों को मोहित किया करते हैं। चारों ओर यज्ञ की क्रिया सिद्धि का कर्म चला करता है। वेद की विद्या को देख देख सभी चले जाते हैं।

दोहा—मोसों बूझी बात तिनि, कौने हो तुम लीन।
मैं उनको उत्तर दयो, सुनियै नित्य नवीन॥१७॥

मुझसे उन लोगों ने पूछा कि तुम किसमें लीन हो? मैंने उन्हें उत्तर दिया कि मैं उसी में लीन हूँ, जिसे तुम नित्य ही नवीन सुना करते हो।

सरस्वती छंद—नारायणादिक सृष्टि है, जिनते प्रसिद्ध प्रवीन।
निर्लेप निर्गुण ज्योति, अद्भुत ताहि में मनदीन॥

नारायण की सृष्टि जिस कारण से प्रसिद्ध और पूर्ण है और वह ज्योति अद्भुत, निलर्प्ति और निर्गुण है, उसी में मैं लीन रहती हूं।

दोधक—ज्योति निरीह निरंजन मानी ।
तामहिं क्यों ऋषि इच्छ बखानी ।।
क्यों तिहिते भव भेदहि जामो ।
ईश अकर्त्तहि जो जिय मानो ।।१८।।

ज्योति को निरीह और निरंजन मानने के पश्चात, उसमें ऋषि की इच्छा कैसे हो सकती ? उससे संसार के भेदों को कैसे स्वीकार किया जा सकता है ? जब कि ईश्वर को अकर्ता स्वीकार करलें ।

विवेक उवाच

दोहा—यज्ञहु की विद्या भई, निपट कुतर्क्कनि लीन ।
होम धूप ते मलिन तनु, यद्यपि हुती प्रवीन ।।१९।।

यज्ञ का विधान हुआ, किन्तु फिर भी कुतर्की लोगों ने कहा कि होम धूप से शरीर मलिन हो जाता है । यद्यपि उससे प्रवीणता प्राप्त होती है ।

रूपमाला छन्द–ज्योति अद्भुत भावते भए विष्णु पूरक मानि ।
मायाहित्यों अवलोकिये जग भयो मायकु जानि ।।
जो कहो वह जानिये जड़ क्यों करै जग जोइ ।
पाइ चुम्बक तेज ज्यों जड़ लोह चेतन होइ ।।२०।।

उस अद्भुत ज्योति के कारण से ही विष्णु पूरक हुए हैं । माया को उसी प्रकार देखने के कारण ही सारा संसार माया से पूर्ण हो गया । जैसा कहता हूँ वैसा ही समझना चाहिये, किन्तु ससार देख करके जड़ वैसा क्यों करे ? जिस प्रकार से चुम्बक को पाकर जड़ लोहा भी चेतन हो जाता है ।

दोहा—ताते यज्ञनि की सखी, जानो जगत प्रकाश ।
जो फल दीजै ईश को, तौ तबही भव नाश ।।२१।।

इससे हे यज्ञों की सखो ? इसे भली प्रकार समझ लो कि जो फल ईश्वर को दोगी उससे ही संसार की भव-बाधाओं का विनाश होगा ।

यह सुनि तब हों उठि चली, ता यज्ञनि की सृष्टि ।
एक देश तिथि परि गई, मीमाँसा मम दृष्टि ॥२२॥

यह सुनकर के यज्ञों की सृष्टि उठकरके चली गई । मिमाँसा तिथि एक देश में मुझे दिखाई पड़ गई ।

रूपमाला छंद—कर्तृ कर्म विभाव को अधिकार भोजन पाइ ।
देखि अंगन सों मिली उपदेश देति बनाइ ॥
मोंहिं पूछि उठी कहौ तुम कर्तृ कौन विचार ।
मै कह्यो उनसों वहै सब उत्तरनि को सार ॥२३॥

अपने कर्मों के अनुसार अधिकृत भोजन पाकर के उसने अपने शरीर के अंगों को देखा, फिर उसने अनेक प्रकार से बनाकर उपदेश दिया । मुझसे वह पूछ उठी कि तुम कौन सा विचार कर रहे हो ? मैंने सभी उत्तरों के उसी सार को उससे कह दिया ।

दोहा—अन्ते वासिनि सुनतहीं, तन मन पायो मोद ।
देखि परस्पर तब करयो, मेरो अति अनुमोद ॥२४॥

वहाँ के सभी वासियों ने मेरे उत्तर को सुनते ही तन मन से सुख पाया और एक दूसरे को देखकर मेरा बड़ा आदर-सत्कार किया ।

हरि—एक जीव अंध एक जगत साखि कहत हैं ।
एक काम सहित एक नित्य काम रहित हैं ॥
एक कहत परम पुरुष दंड दान लीन है ।
एक कहत संग रहित क्रिया कर्महीन है ॥२५॥

संसार को साक्षी करके कहता है कि एक जीव है और एक अंधा है । एक में काम है और दूसरे में नहीं है । एक कहता है कि ईश्वर दंड दान मे लीन है । एक कहता है कि उसके साथ कोई है ही नहीं और क्रिया कर्म से वह बिल्कुल हीन है ।

हा—विदा मांगि तबहीं चली, हों तिनते अकुलाइ ॥
देखी विद्यातर्क की, बहुत शिष्य युत जाइ ॥२६॥

उनसे व्याकुल होकर उसी समय मैं विदा मांग करके चल दी।
मय विद्यातर्क को अनेक शिष्यों के साथ बैठा हुआ देखा।

पमाला छंद—एक विश्व विशेष वस्तु विकल्पना जिय जानि।
एक नाथ परायना अरु वाद वृद्ध वखानि॥
एक थापतु आपने परपच्छ दीष बितानि।
एक मायहि ईशसों हैं कि एक चित्त प्रमानि ॥२७॥

एक अपने जिय को विकल्पना के अनुसार विश्व को विशेष वस्तु ानता है। एक ईश्वरोपासना में लीन है और अनेक वादों का वृद्ध खान करते हैं। दूसरे पत्त के दोषों को कहकर एक खण्डन कर रहा है। क चित्त के आधार पर माया रूपी ईश्वर से कहता है।

ोहा—तिनिमो बूझी देवि कहि, कौनहिं हौ तुमलीन।
यह सुनि मैं उत्तर दयो, उनको वहै प्रवीन ॥२८॥

उनमें से कुछ ने मुझसे प्रश्न किया कि हे देवी! तुम किसमें लीन ो। यह सुनकर के मैंने उनको वही श्रेष्ठ उत्तर दिया।

उन मोसों उपहाससों, बात विचारि कही सु।
विश्व होत परमानते निर्मित कारण ईशु ॥२९॥

अत्यधिक उपहास से उन्होंने मुझसे कहा कि विश्व परमान से होता ै और ईश्वर निर्माण का कारण मात्र है।

क्यों अविनाशी अरु मो, करि कै रूप प्रकार।
अविनाशी सो करत अब, युक्ता मुक्त विचार ॥३०॥

अविनाशी अरूप क्यों अनेक रूप धारण करता है? उस अविनाशी पर अधिक युक्ति पूर्वक विचार क्यों करते हो?

विवेक उवाच

एकत कै विद्या सबै, यहां न जानत मूढ़ ।
मूढ़ौ बौलों शश्व सो, जौलौं सत्य न गूढ़ ॥३१॥

यहाँ पर मूर्ख यह नहीं जानते हैं कि सब विद्या एक ही है । मूढ़ उस समय तक शश्व की भाँति है, जब तक उसे सत्य गूढ का ज्ञान नहीं होता है ।

भ्रम हीने जो शुक्ति में, होति रजत की मुक्ति ।
केशव संभ्रम नाशते, प्रगट शुक्ति की शुक्ति ॥३२॥

भ्रम के कारण ही शुक्ति रज में मिल जाती है । संभ्रम के विनाश से शुक्ति अलग निकल आती है ।

रजत जानि ज्यों शुक्ति में, भ्रमते मन अनुरक्त ।
भ्रम नाशेते रजत हूँ, छीवत नहीं विरक्त ॥३३॥

शुक्ति में रजत को जान कर उसमें मन अनुरक्त रहता है किन्तु भ्रम के विनाश होने पर रजत का भी स्पर्श व्यक्ति नहीं करता है ।

अविकारी जगदीश है, भ्रम हीते सविकार ।
केशव कारी रजनि में, सूझत सर्प विकार ॥३४॥

जगदीश अविकारी है किन्तु भ्रम के कारण से वह सविकारी ज्ञात होता है । काली रात्रि में काला सर्प सभी को दिखाई दे जाता है ।

रूपमाला छंद—निकलंक है सु निरीह,
निर्गुण शान्त ज्योति प्रकाश ।
मानि हैं मन मध्य ताकहूँ,
क्यों विकार विलाश ॥
होति विष्णु पदीन म्लान,
कलि कल्मषादिक पाइ ।
राह छाह छुवै न श्यामल,
सूर क्यों कहि जाइ ॥३५॥

निरीह, निर्गुण, शान्त एवं ज्योति मे ज्योतिर्मय सदैव हो निष्कलंक
। विकारों में लिप्त मन उसे किस प्रकार स्वीकार करेगा । अनेक कल्मषों
ो पाकर विष्णु के पद पर असीन व्यक्ति भी कलुपित हो जाता है। इसी
ारण से कालिमा का स्पर्श सूर्य नहीं करता है ।

देव्युवाच

ोहा—गह्यो गहो तब सबनि मिलि, मोसों कह्योरिसाइ ।
गई दण्डकारण्य हों, भांतिनिते अकुलाइ ॥३६॥

मुझसे रुष्ट होकर उसने कहा कि इसे पकड़ लो । इस प्रकार से व्या-
ुल होकर में दण्डकारण्य में चली गई ।

लई राम रक्षा तबै, हों बचाइ मुनि साखि ।
कंठ लगाइ लई लपकि, गीता के गृह राखि ॥३७॥

उस समय मुझे राम रक्षा ने बचा लिया और कंठ से लगा कर गीता
 घर में रख दिया ।

गीतोवाच

अप्रमाण मन तुम करे, माता जे जग जन्तु ।
नरक परहि जे जन्म बहु, जिनको नाहीं अन्तु ॥३८॥

हे माता ! जितने भी संसार में जीव हैं, उस सभी को तुमने
अप्रमाणित कर दिया । तुम्हारे अनेक जन्म नर्क में पड़ेंगे, जिसका कोई
आदि अन्त नहीं है ।

इहि विधि हों अपनी कथा, कहों कहाँ लगि ईश ।
तुम अंतर्यामी सदा, जानत हो जगदीश ॥३९॥

हे ईश ! इस प्रकार से अपनी कथा को कहां तक कहूं । हे जगदीश !
तुम अन्तर्यामी हो और इसलिये सब कुछ जानते हो ।

सुनि सुनि देवी के वचन, उर आयो कहु ज्ञान ।
प्रश्नकरी तब ज्ञान की, जिहि उपजै विज्ञान ॥४०॥

देवी के वचनों को कुछ सुनकर हृदय में ज्ञान आया। तब ज्ञान सम्बन्धी प्रश्न किये, जिससे हृदय में विज्ञान का उदय हो।

जीव उवाच

ज्ञान ज्ञान की भूमिका, हमहिं सुनाउ सुजान।
सुनत नशै अज्ञान सब, जाते बाढ़े ज्ञान ॥४१॥

ज्ञान की भूमिका क्या है, उसे मुझे सुनाओ। जिसे सुनते ही अज्ञान का विनाश हो जाय और ज्ञान बढ़े।

देव उवाच

जीव जु जाग्रत एक अरु, दूजो जाग्रत जानु।
महाजुजाग्रत तीसरी, जाग्रत स्वप्न बखानु ॥४२॥

एक जाग्रत जीव है और दूसरा जाग्रत है, तीसरा महा जाग्रत है और जाग्रत जीव को स्वप्न समझना चाहिए।

स्वप्न पाँचई है सुमुझि स्वप्नो जाग्रत षष्ठ।
प्रभा सुषप्ता सातंई, सुनो सदा मति निष्ठ ॥४३॥

स्वप्न पाँचवां है और जाग्रत स्वप्न छठा है, प्रभा सुषुप्ता सातवाँ है, इसे अच्छी प्रकार समझ लेना चाहिये।

सात भाँति को मोह, यह मिले अनेक प्रकार।
बाँधि महा प्रभु आनिये, सोहतु भाँति अपार ॥४४॥

यह सात प्रकार का मोह है जो अनेक प्रकार से मिलता है। अनेक प्रकार से उसे बांधने पर अत्यधिक शोभा देता है।

सहित वासना गर्भ में, प्रथम मोह अज्ञान।
बीजे जगत युक्त यह, ताको नित्य बखान ॥४५॥

पहले अज्ञान, मोह और वासना गर्भ में रहते हैं। वीज रूप में होने पर यह जाग्रत होते हैं।

गर्भ थंभ[1] वरु आपनो, कहि जानत मनमोह।
महा जाग्रत ज्ञान है, पूर्व वासना छोह[2] ॥४६॥

१ स्तंभ २ ममता

मनमोह गर्भ स्तंभ करके उसे अपना जानता है। ज्ञान महाजाग्रत है किन्तु पूर्व से प्राप्त वासना ममता मात्र है।

सोहो जाको यह सबै, हों प्रभु ए सबदास।
महा जाग्रत मोह यह, वर्णत केशवदास ॥४७॥

यह सब जो कुछ शोभित है, वह सब दास है। केशवदास महाजाग्रत मोह का वर्णन करते हैं।

तन्मय ह्वै कै करत है, मन अभिलाष विलाश।
जानो चौथे नाम यह, जाग्रत स्वप्न प्रकाश ॥४८॥

यह तन्मय होकर मन की अभिलाषा की पूर्ति के लिए विलास करता है। इसका चौथा नाम जाग्रत स्वप्न है।

समुझाये समुझै हिये, भूलि जाइ पुनिचित्त।
स्वप्न जाग्रत मोह को, छठी भूमिका मित्त ॥४९॥

समझाने से मन समझ जाय और फिर उसे चित्त भूला दे, यह जाग्रत स्वप्न मोह की छठी भूमिका है।

आया पर नहिं जानई, कहै और की और।
यहै सुषुप्ता* सातई, मोह कहत शिर मौर ॥५०॥

* गहरी नींद

आने पर भी जिसका ज्ञान न हो, और वह और से और ही कहा करे, यही सुषुप्ता है, जो कि सब का शिरमौर है।

ज्ञान ज्ञान की भूमिका, वरणी सविशेष।
कहों ज्ञान की भूमिका, सात सुनो शुभ वेष ॥५१॥

विशेष रूप से मैंने ज्ञान की भूमिका का वर्णन किया है। अब ज्ञान की सात भूमिकायें बताता हूँ।

प्रथम शुभेच्छा जानवी, पुनि सुविचारन आन।
तीजो है तन मानसा, केशवराइ प्रमान ॥५२॥

पहली शुभेच्छा, दूसरी सुविचार और तीसरी मानस है।

चौथी सत्त्वापत्ति पुनि, अंश शक्ति को जानि।
छठी अर्थ अभावना, सप्त तुर्यको मानि ॥५३॥

चौथी सत्त्वापत्ति, पांचवीं अंश शक्ति, छठी अर्थ अभावना और सातवीं तूर्य है।

श्रवण मूढ़ जौ हौं रहों, बूझो शास्त्र सुसाधु।
याही सों सब कहत हैं, शुभ इच्छातम बांधु ॥५४॥

यदि श्रवणों से मूढ़ रहूँ अर्थात बाहर की चीजों का सुनने के बाद कुछ भी प्रभाव न पड़े, तो अनेक शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त हो सकता है। इसी कारण से सभी शुभेच्छा को धारण करने के लिए कहते हैं।

इच्छायुत वैराग को, करै जु चित्त विचार।
सदाचार को वेद मत, यह विचार नाचार ॥५५॥

इच्छा युत वैराग को यदि कोई चित्त में धारण करे, तो यही वेद का सदाचार सम्पूर्ण विचार है।

अति विचार ते होति है, इंद्रिय कर्म विरक्त।
सूक्ष्म रूप हिये धरे, तन मानसा प्रसक्त* ॥५६॥

* स्थायी

अत्यधिक विचार करने से इन्द्रियां कर्म से विरक्त हो जाती हैं। यदि कोई सूक्ष्म रूप को हृदय में धारण करे, वही तन मानस में स्थायी होता है।

सूक्ष्म रूप प्रकाशते, महाशुद्ध मन होत।
शुद्ध सत्व हिय आवई, सत्वापत्ति उदोत ॥५७॥

सूक्ष्म रूप को हृदय में धारण करने से मन अत्यधिक शुद्ध हो जाता

है। शुद्ध सत्व जब हृदय में आता है तब परिणामतः सत्वापत्ति का उदय होता है।

केशव सत्वापत्ति ते, छूटि जात सब संग।
झूठो जानै जगत को, आसंशक्ति भुजङ्ग ॥५८॥

सत्वापत्ति के कारण से सभी संग छूट जाते हैं। सारा संसार असत्य और आसक्ति सर्प के समान है।

रमे आत्मा राम मन, दुख सुख भूलहि चित्त।
पर इच्छा इच्छा करै, छठो भूमिका मित्त ॥५९॥

चित्त के दुख सुख को भुलाकर राम में अपनी आत्मा को भुला दे। दूसरे की इच्छा ही सब कुछ है, ऐसा समझना ही छठी भूमिका है।

तुर्यावस्था[1] सातई, जाते जीवन मुक्त।
ताते ऊपर होति है, अति विदेहता युक्त ॥६०॥

१ वेदान्त के अनुसार एक अवस्था जिसमें आत्मा ब्रह्म में लीन हो जाती है।

तुर्यावस्था सातवीं है, जिसके उदय होने पर जीवन मुक्त हो जाता है। उसके ऊपर विदेहावस्था ही है।

सुनि विदेह की युक्ति, जग राज करयो प्रहलाद।
तैसे तुमहूँ शुद्ध मन, राज्य करो अविषाद ॥६१॥

विदेहावस्था में पहुँचने के कारण ही प्रहलाद ने संसार पर राज्य किया। उसी प्रकार से तुम भी अपने मन को शुद्ध करके राज्य करो।

राजावीरसिंह उवाच

एक भूमिका दूसरी, तीजी आवै कोइ।
काल वश्य भयो बीचहीं, ताकी का गति होइ ॥६२॥

एक भूमिका से दूसरी और उससे तीसरी भूमिका के बीच में प्रवेश करते ही यदि किसी की मृत्यु हो जाय, तो उसकी क्या गति होगी?

केशव उवाच

रूपमाला—लोक लोक रमै विमान चढ़यो बढ्यो बहु रंग ।
मेरु मंदर भूमि में सुर सुंदरी बहु संग ॥
कर्म उत्पन्न ह्वै शुभ पंडितनि के गेह ।
धर्म शास्त्र पढ़ै रटै बहु ज्ञान ही सनेह ॥६३॥

लोक लोकों में वह विमान पर सवार होकर घूमता रहता है । सुमेरु पर्वत और भूमि में उसके साथ अनेक सुर सुन्दियां रहती हैं । शुभकर्म के परिणाम स्वरूप उसका जन्म ब्राह्मण परिवार में होता है । वह अनेक धर्म शास्त्रों का अध्ययन करता है और ज्ञान का सस्नेह अर्जन करता है ।

दोहा—केशव पूरण ज्ञानते, परिपूरण विज्ञान ।
चिदानंद के रूपसों, जाइ लगो मति मान ॥६४॥

पूर्ण ज्ञान के पश्चात ही पूर्ण विज्ञान की उत्पत्ति होती है । विज्ञान की प्राप्ति होने पर चिदानंद के स्वरूप में मिलन हो जाता है ।

इति श्री चिदानन्दमग्नायां विज्ञानगीतायां अज्ञान ज्ञान चतुर्दस भूमिका वर्णनं नाम सप्तदशः प्रभावः ॥१७॥

———

अष्टदश प्रभाव

जीव उवाच

दोहा—क्यो विदेह की रीति सों, राज्य करयो प्रहलाद ।
देवी हमैं सुनाउ ज्यों, ज्ञान बढ़ैं अविषाद ॥ १ ॥

विदेहावस्था में प्रहलाद ने राज्य क्यों किया है ? इसे देवी मुझे सुनाओ जिससे विषाद रहित ज्ञान बढ़े ।

देव्यु उवाच

हिरण्य कश्यपु हति प्रभु, जब भय अन्तर्ध्यान ।
उपज्यो उर प्रहलाद को, शोक विलास अमान ।। २।।

जब भगवान हरिण्यकश्यप को मारकर अन्तर्ध्यान हो गये, तब प्रहलाद के हृदय में अत्यधिक शोक हुआ ।

प्रहलाद उवाच

नमो नारायणाय यह मंत्र, वसो ममचित्त ।
केशवदास अकाश* ज्यों, सदा बसत सब चित्त ।।३।।

* ब्रह्म

मेरे चित्त में 'नमो नारायणाय' मंत्र बस गया है। वह मेरे मन में उसी प्रकार बस गया है जिस प्रकार से सभी के चित्त में ब्रह्म वास करता है ।

केशव अब हो विष्णु ह्वै, करो विष्णु की सेव ।
विष्णु भये विनु विष्णु को, सेवा निःफल देव ।।४।।

अब विष्णु होकर विष्णु की सेवा करो । विष्णु होने पर भी यदि विष्णु की सेवा न की जाय, तो सभी सेवायें निष्फल हो जाती हैं।

रूपमाला छंद–विष्णु ह्वै पुनि विष्णु मूरति को हिये महँ आनि ।
सर्वभावनि सर्वदा करि पूजियो हरिमानि ।।
राति द्योस मनो भई हरि सेव सो रति मण्डि
राज काजनि छांड़ कै अरु और ग्रंथनि छंड़ि ।।५।

विष्णु होकर अपने हृदय में विष्णु की मूर्ति को धारण करना चाहिये सब प्रकार से और सभी भावों से विष्णु की पूजा करना चाहिये । रात दि विष्णु की सेवा ही दिखाई पड़े । इस सेवा को राज काज और ग्रन्थों अध्ययन को छोड़ कर भी करना चाहिये ।

देश के अरु ग्राम के सब लोग एक प्रकार ।
विष्णु भक्त भये महाचित मांह् हीन विकार ॥
देव लोक प्रसिद्ध केशव ह्वै गई यह बात ।
क्षीर सागर को गए सब देवता अवदात ॥६॥

नगर और ग्राम के सभी लोग एक ही प्रकार के हैं। विष्णु भक्त होने पर चित्त में हीन विकारों को नहीं आने देना चाहिये। देव लोक में भी यह बात प्रसिद्ध हो गई है। सभी देवता अब क्षीर सागर को चले गये हैं।

देव उवाच

दोधक छन्द—हौ प्रभु देवनि के रखवारे।
देव विदूषण* भारनि हारे।
होत जुदैयत भक्त तुम्हारे ॥
देवनि पै तेइ जात न मारे ॥७॥

* दोषारोप करना

हे प्रभु जी ! आप देवों की रक्षा करने वाले हैं, किन्तु देव दोषारोप के भार से स्वतः हार गये। यदि आप का कोई भक्त हो जाता है, तो फिर वह देवों से नहीं मारा जा सकता।

श्री विष्णु उवाच

देव विषाद तजो जिय भारे।
भक्त सदा प्रहलाद हमारे ॥
दैयत भक्त अभक्त सदाई।
मोकहँ जानहु देव सहाई ॥८॥

देव तुम्हें अपने मन के विषाद को छोड़ देना चाहिये। प्रहलाद सदैव ही हमारे भक्त हैं। भक्त और अभक्त दोनों की ही मैं सहायता करता हूँ, किन्तु देवों की तो मैं सदैव सहायता करने वाला हूँ।

देव्यु उवाच

श्री भगवंत जहां पगु धारे।
आपु तहां प्रहलाद विचारे ॥
विष्णुहिं देखत ही सुख पायो।
पूरण कै बहुधा गुण गायो ॥९॥

श्री भगवान ने जहां कहीं भीं अपने चरण रखे, प्रहलाद स्वतः ही वहां पर पहुँच गये। विष्णु को देखते ही उन्हें अत्यधिक सुख मिला और उनके अनेक गुणों का गान किया।

प्रहलाद उवाच

रूपमाला छन्द—नाथ नाथ विनाथ[1] नाथ अनाथ नाथ सुसिद्ध।
देव देव विदेव[2] देव अदेव देव प्रसिद्ध।
लोक पालक हो सब काल काल मुरारि ॥
देहु जू वर विश्व नायक चित्त विचारि ॥१०॥

१ परित्यक्त २ राक्षस

नाथों के भी नाथ, परित्यक्तों के भी नाथ और अनाथों के भी तुम नाथ हो। आप देवों के भी देव, राक्षसों के भी देव और अदेवों के देव के रूप में भी प्रसिद्ध हैं। सब कालों में आप लोक-पालक हैं। अपने चित्त में विचार करके हे विश्व नायक! वर दो।

दोहा—सुरकुल कमल दिनेश सुनि, दिति कुल कमल हिमेश।
देहु देहु नाइकु निरखि, चित्तवृत्ति लवलेश ॥११॥

चित्त वृत्ति में विचार करके हे देव वंश के सूर्य, राक्षस कुल के हिमेश! देखकर के वर दो।

दास चित्त चातकहि प्रभु, बोलि उठे घनश्याम।
मांगि सुमति प्रहलाद वरु, जासो तुमसों काम ॥१२॥

दास के चातक चित्त को देखकर घनश्याम बोल उठे। हे प्रहलाद! जो कुछ तुम्हारी इच्छा हो, उसे मांग लो।

प्रह्लाद उवाच

सुनि सर्वज्ञ सर्वज्ञ निज, नित्य सत्य सुवेस।
सबते नीको होइ कछु, सो दीजै उपदेश ॥१३॥

हे सर्वज्ञ और सभी समय सत्य रूप में रहने वाले, जो सबसे अच्छा उपदेश हो, वही मुझे दीजिये।

श्री विष्णु उवाच

परम भक्त प्रह्लाद सुनि, सरस बिष्णु पद इष्ट।
परमानँद मय देख पुनि, परमानँद की सृष्टि ॥१४॥

हे परम भक्त प्रह्लाद ! विष्णु के पदों को इष्ट रूप में रखो। उसे परमानन्द के रूप में देखो। वह परमानन्द की सृष्टि करता है।

देव्युवाच

विष्णुहि होत अदृष्ट पुनि, तबही श्री प्रह्लाद।
पद्मासन सों बैठि कै, करि विचार अवदात ॥१५॥

विष्णु के अदृष्ट होते ही प्रहलाद न पद्मासन धारण करके विचार करने लगे।

प्रलाद उवाच

जाहि विश्व में हो नहीं, अरु ब्रह्म परयन्त।
सब में है सब बाहिरो, होतिहि रूप अनन्त ॥१६॥

जो कुछ भी संसार में नहीं है और न ब्रह्म पर्यन्त है उन सभी में और उसके बाहर भी आप का रूप है। वह बाहर होते ही अनेक रूप धारण कर लेता है।

दोधक—चंचल जौन प्रमान जु देखो।
रूप न अपनो रूपक लेखो ॥
शब्द न गंध न है रस नीको।
हेरतु वा रस लागत फीको ॥१७॥

उसमें चंचलता नहीं है। यद्यपि उसमें कोई भी रूप नहीं है फिर भी उसका कोई रूपक नहीं है। न तो उसमें कोई शब्द है और न गंध और नहीं किसी प्रकार का रस है। रस देखते ही फीका लगता है।

निर्मम शब्द सबै तन शोभै।
भूलिहुँ इंद्रिय लोभ न लोभै॥
बाहर भीतर व्यापक जोहै।
एक निरीह निरंजन सोहै॥१८॥

सब प्रकार के निर्मम शब्द उसके शरीर पर शोभा देते हैं। भूल करके भी इन्द्रियों का लोभ उसे अपनी ओर आकर्षित नहीं कर पाता है। बाहर और भीतर जो व्यापक है, वही एक निरंजन शोभा देता है।

मोमहिं है जुहों जामें रहोंजू।
आपुहि आपने काम लहोंजू॥
दूसरे और न जाकहँ बूझों।
एक चिदानंद रूप अरूझों॥१९॥

जो मुझ में है उसी में मैं अनुरक्त रहूं और अपने ही कामों में लगा रहूँ। दूसरे को बिल्कुल ही न पूछूं। उसी एक चिदानन्द स्वरूप में अनुरक्त रहूँ।

दोहा—चिदानंद संभोगमय, एक रूप अति शुद्ध।
अखिल दृष्टि ऊपर लसै, मेरी दृष्टि प्रबुद्ध॥२०॥

चिदानंद संभोगमय हैं, उसका एक रूप अत्यधिक शुद्ध है। मेरी प्रबुद्ध दृष्टि उसी अखिल दृष्टि के ऊपर लगी हुई है।

दंडक—जाको नाहीं आदि अंत अमित अवाधि युत,
अकल अरूप अज चित्त में अतुर है।
अमर अजर अज अद्भुत अवर्ण अग,
अच्युत अनामय सुरसना ररतु है॥

अमल अनंग अति अछ्र असंग अरु,
अस्तुत अदृष्ट देखिबे को परसुतु है।
बिधि हरि हर वेद कहत जोसि सोसि,
केशौ राई ताकहँ प्रणामहि करतु है ॥२१॥

भगवान को अनेक विशेषणों से केशव ने सम्बोधित करके कहा है कि उन सभी विशेषताओं से युक्त भगवान से प्रार्थना करता हूं।

दोहा—महामोह अहिराज सों, कोप कंचुकनि गात।
आवत हीं गरुड़ ध्वजै, जान्यो नहीं बिलात ॥२२॥

सर्प रूपी महामोह का सारा क्रोध गरुणध्वज के आते ही समाप्त हो गया।

निपट अहंकृत पक्षिणी, मम उर पिंजर छाँड़ि।
को जाने कित उड़ि गई, तृष्णा राजनि खाँड़ि ॥२३॥

अहंकार से सराबोर पक्षिणी (महामोह) मेरे हृदय रूपी पिंजड़े से तृष्णा को मारकर पता नहीं कहां उड़ गयी।

देव्युवाच

दोहा—यहि विधि श्रीप्रहलाद सब, केशव चित्त बिचारि।
चिन्तत रूप समाधिवित, रहे शरीर बिसारि ॥२४॥

इस प्रकार से प्रहलाद अपने चित्त की सभी गतियों को तथा शरीर को भुलाकर समाधिस्थ है।

रूपमाला छंद—गिरि शृंग से प्रभु चित्त,
कारक चित्रियो जनु चित्र।
तहँ वर्ष पंच सहस्र,
बीति गए सुनो भख मित्र ॥

इस प्रकार से जब पांच हजार वर्ष व्यतीत हो गये, तब गिरश्रंग प्रभु जी ने देखा।

दोहा—भयो सबै पाताल में, महाराज कुल देव।
भयो विष्णु के चित्त में, कछू सोच को लेश ॥२५॥

पाताल लोक, देवकुल और विष्णु के चित्त में कुछ शोक हुआ।

श्री विष्णु उवाच

तोरक छन्द—प्रभु को प्रह्लादलीन भए।
दिति सून सबै इहि पंथ रए॥
निर्वेद भये दिवि देवनि को।
अस्तभयो शशि सूरज को ॥२६॥

प्रभु जी प्रहलाद मे लीन हो गये। परिणामतः सभी दिशायें बिल्कुल शून्य हो गयीं। सभी दिशाओं के देव शान्त हो गये। सूर्य और चन्द्र भी अस्त हो गये।

विनु सूरज क्यों भुवलोक लसे।
भुव लोकन से सब लोक नसें॥
हम एक इहां केहि भाँति बसें।
अब ऊरधहूं जल जाल ग्रसें ॥२७॥

सूरज के अभाव में संसार क्योंकर शोभा देगा? अन्तरिक्ष लोक के विनाश से सभी लोकों का विनाश हो जायगा। हम यहां पर अकेले किस प्रकार बास करें, जब कि अध और ऊरध, दोनों विपत्ति ग्रस्त हैं।

दोहा—हमको देवी शासना, सुनियत है इति रीति।
रक्षहु जग आकल्प* लों, दुष्ट अनेकनि जीति ॥२८॥

* कल्प

हे देवी! मैंने शासन की इस रीति को सुना है। अनेक दुष्टों को जीतकर कल्प पर्यन्त संसार की रक्षा करो।

दत्युवाच

रूपमाला छंद—चित्त मध्य विचारियो हरि सर्व देव समेत ।
पक्षिराज[1] चढ़े गए प्रहलाद भक्त निकेत ॥
चौर ढारत सिंधुजा[2] जय शब्द बोलत सिद्ध ।
नारदादिक विप्रमान अशेष भाव प्रसिद्ध ॥२९॥

१ गरुड़ २ लक्ष्मी

सभी देवों के सहित विष्णु को धारण किया । प्रहलाद के निकेत पर गरुड़ जाकर बैठ गया । लक्ष्मी चँवर चलाने लगी और सिद्धियां जय शब्द का उच्चारण करने लगीं । सब प्रकार के भावों से नारद आदि विप्रों ने प्रहलाद को स्वीकार कर लिया ।

श्री विष्णु उवाच

दोहा—परम भक्त प्रहलाद तुम, संतत जीवन मुक्त ।
देह त्याग यह काल सुनि, तुमको नाही युक्त ॥३०॥

हे प्रहलाद । तुम परम भक्त और सब प्रकार से जीवन से मुक्त हो । इस समय शरीर को छोड़ाना तुम्हारे लिये उपयुक्त नहीं है ।

राज दयो आशिष दयो, नारायण सविशेष ।
सूरज शशि जौ लगि रहैं, तौलौ राज अशेष ॥३१॥

नारायण ने प्रहलाद को राज्य और आशीर्वाद दिया । तुम्हारा यह सम्पूर्ण राज्य उस समय तक रहेगा, जब तक सूर्य और चांद ससार में हैं ।

राज्य कर्यो प्रहलाद यो, अहंकार को छांड़ि ।
त्यों तुमहूँ या लोक में, राज्य करो अरि खांड़ि ॥३२॥

अहंकार को छोड़कर प्रहलाद ने राज्य किया । उसी प्रकार से तुम भी इस संसार में राज्य करो ।

वीरसिंह उवाच

लीन परम पद सों हुती, पूरण दृष्टि विशुद्ध ।
फिरि तब ह्वोते बूझिये, कैसे होहि विरुद्ध ॥३३॥

उसने परमपद के कारण विशुद्ध पूर्ण दृष्टि को प्राप्त कर लिया था फिर कोई वस्तु कैसे विरुद्ध हो सकती थी ।

केशव उवाच

शुद्ध वासना रहति है, इहई बात प्रमान ।
निज आतम सम सब लखत, नीचरु ऊँच महान ॥३४॥

यही बात प्रमाण है कि वासना भी शुद्ध रहती है। अपनी आत्मा की भांति ही वह ऊँच और नीच आत्मा को भी देखता है ।

वाते जीवन मुक्त सम, फिरत जगत सानंद ।
चाहे तज्यो शरीर को, तबहिं तजै नृप चंद ॥३५॥

मुक्त जीवन की भांति इस संसार में सानन्द घूमता है। राजा की जब इच्छा हो तब वह अपने शरीर को छोड़ सकता है ।

इति श्री विज्ञानगीतायां प्रह्लाद चरित्र वर्णनं नाम अष्टदशः प्रभावः ॥१८॥

एकोनविंशतितम प्रभावः

दोहा—उनईसे में वर्णिवो, बलि को अति विज्ञान ।
ब्रह्म भक्त हरि भक्त को, कहिवो सबै विधान ॥१॥

उन्नीसवें प्रकाश में बलि के विज्ञान, ब्रह्म भक्ति और हरिभक्त के सभी विधानों, का वर्णन करूँगा ।

ज्यों साध्यो बलि आपुही, त्यों साधो विज्ञान ।
कहिये माता करि कृपा, वलि विज्ञान विधान ॥२॥

जिस प्रकार से बलि ने विज्ञान की साधना की, उसी प्रकार से आप सब भी करें । हे माता ! कृपा करके वलि के विज्ञान के विधान को कहिये ।

देव्युवाच

सुंदरी छन्द—पुत्र विलोचन के बलि दानव ।
वंदत ताहि सुरासुर मानव ॥
ख्यालहिं लोकविलोक लये सब ।
एकहि छत्र त्रिलोक छए तब ॥३॥

विलोचन का पुत्र बलि दानव था । उसकी मनुष्य, देव और राक्षस सभी वंदना करते थे । विचार मात्र से ही उसने तीनों लोक को अपने वश में कर लिया । तीनो लोकों को एक ही छत्र छाया के अन्तर्गत रखा ।

भक्ति के वश्य करे हरि श्री हरु ।
दैयतु* भूतल स्वर्ग महाभरु ॥
राज्य अकंटक तीनिहुं लोकनि ।
दैयत्रवास विदेश के ओकनि ॥४॥

* दैत्य

भक्ति के वश में भगवान को कर लिया । दैत्य लोक और स्वर्ग को वश में करके तीनों लोकों में अकंटक राज्य किया । उन लोगों को विदेशों में रहने का स्थान दिया ।

दोहा—वरषै दशकोटिक करयो, भलो राज्य वलिराज ।
धर्म्म चल्यो चौहूँ चरण, तिहूँ लोक सुखराज ॥५॥

दश करोड़ वर्षों तक बलिराज ने अच्छी प्रकार से राज्य किया । चारों दिशाओं में धर्म का राज्य रहा है और तीनों लोकों में सुख व्याप्त था ।

रूपमाला छन्द—रत्न शृंग सुमेरु के, पर बैठि कै इक काल ।
बुद्धि वृद्धि भई हिये, महँ भाँति भाँति विशाल ॥

जब एक बार सुमेरु पर्वत की चोटी पर बैठा, तब उसकी बुद्धि का विकास अनेक प्रकार से उसके हृदय में हुआ।

बलिराज—भोग में बहु भोगए, तिहुँ लोक को करि साज।
तृप्ति होतिन चित्त में, यह कौन है सुखसाज ॥६॥

तीनों लोकों में राज्य करके अनेक प्रकार से भोग किया, किन्तु चित्त को किसी भी प्रकार से संतोष नहीं होता है। यह किस प्रकार का सुख राज्य है ?

दंडक—चलिकै विमान दिशि दिश जसु मढ़ि बढ़ि,
बढ़ि युद्ध जुरि बैरी बहु मारे हैं।
केशौदास भूषण विधान परिधान गान,
भामिनी सहित तिहुँ लोकनि निहारे हैं॥
जल, दल, फल, फूल मूल षट रस युत,
व्यंजन अनेक अन्न खाइके बिगारे हैं।
तदपिन भागी भूख चित्त न विशुद्ध होत,
सकल सुगंध दुरगंध कै कै डारे हैं॥७॥

सभी दिशाओं में विमान पर चढ़कर वैरियों का विनाश किया है। अनेक आभूषणों को धारण किया और संगीत का आनन्द भी लिया है तथा भामिनी के साथ तीनों लोकों को देखा है। सभी प्रकार के फल फूलों का स्वाद लिया है और षट रस व्यंजयों का भी पान किया है। फिर भी चित्त से भूख नहीं भागती है। सुगंध का आनन्द लेते लेते उसमें दुर्गन्ध आने लगी है।

देव्युवाच

दोहा—यह बिचारि गुरु पै गये, कीने विविध प्रणाम।
बात आपने चित्त की, कहन लगे गुणग्राम ॥८॥

यह विचार करके गुरु के पास गये और उन्हें अनेक प्रकार से प्रणाम किया। फिर अपने चित्त की बात को कहने लगे।

बलिराज उवाच

तारक—सुनियै चितदै यह बात महा गुरु ।
सब दूरि करे सुरलोकनि के सुर ॥
अब मोमत लीन चले हर श्रीहरि ।
विधि वश्यकरे बहुयज्ञनि को करि ॥६॥

हे गुरु ! मेरी इस बात को मन लगाकर सुनिये । सभी लोकों के देवताओं को भी दूर कर दिया है । अब महेश और विष्णु भी मेरी इच्छानुसार ही चलते हैं । अनेक यज्ञों को करके ब्रह्मा को भी वश में कर लिया है ।

भय भागि हरी निदरयो सुरनायक ।
और है जीतिवे को कोइ लाइक ॥
कहियै सुकृपा करि ताहि करों वश ।
अति सोध करों जगती अपने यश ॥१०॥

भय भाग गया है और इन्द्र का भी निरादर कर दिया है । अब क्या और भी कोई जीतने योग्य बचा है ? अब कृपा करके कहिये तो उसे भी वश में कर लूं । अपने यश को सारे पृथ्वी मण्डल में फैला दूं ।

शुक्र उवाच

है इक देश विशाल महा मति ।
सब देशनि ऊपर देश महाअति ॥
सूरज सोम को अस्त उदोतु न ।
नित्य प्रकाश निशानिश होतु न ॥११॥

एक बहुत बड़ा देश है, जो कि सब देशों से बड़ा है । सूर्य और चन्द्र का वहां पर कभी अस्त ही नहीं होता है । उस में दिन और रात दोनों बने रहते हैं ।

है न तहाँ सरिता गिरि कूप न।
भूमि अकाश न सिन्धु सरूप न॥
काम न क्रोध न लोभ न मोह न।
बंधन पाप अपाप प्रबोध न ॥१२॥

वहां पर सरिता, पर्बत और कूप नहीं हैं। भूमि, अकाश और सिन्धु भी नहीं है। काम, क्रोध, लोभ और मोह नहीं है। पापों के लिए बंधन है और पुण्य के निमित्त प्रबोध है।

दोहा—राजा है ता देश को, सब समान सर्वज्ञ।
अजित अनन्त अमेय है, जानत नाहिं न अज्ञ ॥१३॥

उस देश का राजा सभी के लिए समान है और सर्वज्ञ भी है। वह अजेय, अनन्त शक्तियों वाला और सीमा रहित है। उसे अज्ञानी लोग नहीं जानते हैं।

ताके मंत्री एक है, कर्त्तम कर्त्तु समर्थ।
प्रगट अन्यथा करन अरु, जानत अर्थ अनर्थ ॥१४॥

उसके एक मंत्री है, जो कि सब कुछ करने में समर्थ है। प्रगट में वः सब कुछ विरुद्ध ही करता किन्तु वह अर्थ और अनर्थ दोनों को ही: जानत है।

बलिराजउवाच

नाम कहा ता देश को, मंत्री कहि आसु।
कौन धाम वा राजको, मोते अजित प्रकासु ॥१५॥

उस देश का नाम क्या है और मंत्री कौन है? उस राजा का कौन सा स्थान है? मुझे बताओ।

शुक्र उवाच

रूपमाला छंद-आनंदमय वह देश है तिहुँलोक को अतिइष्ट।
राजा तहाँ द्विवल पूरण सर्व भाइः निदिष्ट॥

मंत्री प्रभाव प्रसिद्ध है इहि नाम अद्भुत भेष।
कर्त्तार पालक विश्वबालक युक्ति शक्ति अशेष ॥१६॥

वह संसार आनन्द से पूर्ण है और तीनों लोकों को अत्यधिक प्रिय है। वहाँ का राजा अत्यधिक ही शक्ति शाली है और सभी को निर्दिष्ट है। उसके मंत्री का प्रभाव सभी को विदित है। वह कर्त्ता भी है और विश्व का पालन करने वाला भी है।

शासना जिनकी भवैं शशि सूर बासर राति।
शेषनाग सदा रहैं धरणी धरे इक भांति ॥
मेड छाँड़ि सकै न सिन्धु बहै निरन्तर वायु।
छ्वै सकै काल न बीच प्राणनि क्षीणता विनु आयु ॥१७॥

जिसके शासन के कारण सूर्य और चन्द्र रात और दिन बनाये रहते हैं, शेषनाग एक ही स्थिति में पृथ्वी को धारण किये रहते हैं, सिन्धु अपनी मर्यादा को नहीं छोड़ता है और वायु का वहन सदैव हुआ करता है, बिना आज्ञा के काल किसी के पास नहीं जाता है।

सवैया—केशवदास आकाश[1] में शब्द,
आकाशन शब्द[2] प्रकाशु न जानतु।
तेज वसे तरु[3] खण्डनि में तरु,
खण्डनि ते जनि को पहिचानतु।
रूप विराजत चित्रनि में,
परिचित्रन रूप चरित्र बखानतु।
त्यों सब जीवनि मध्य प्रभाव,
सुमूढ़ न जीव प्रभाव न मानतु ॥१८॥

ब्रह्म सदैव बोला करता है फिर भी उसके प्रकाश को नहीं जानते हो। उसका तेज वृक्ष के खण्डों में भी बास करता है। तरु खण्डों से उसके

तेज को नहीं पहचानते हो। सौन्दर्य चित्रों में रहता है, किन्तु परिचित्रों के रूप का वर्णन करते हो अर्थात् सौन्दर्य परमेश्वर में है। इसलिये उसी का वर्णन होना चाहिये। उसी के प्रकाश का सभी जीवों के अन्तःकरण में प्रभाव रहता है किन्तु उसे मूढ़ नहीं जानते हैं।

दोहा—जाकी सत्ता ते लगतु, साँचो सो संसार।
जैवै को तादेव नृप, कीजै चित्त विचार ॥१९॥

जिसकी सत्ता के कारण सारा संसार सच्चा लगता है, उसी देवका हे राजन! अपने चित्त से विचार कीजिये।

बलिराज उवाच

जौ दई प्रभुता सबै प्रभु ह्वै कृपालु सभाउ।
मोंहिं देहु बताइ सो थल वेगि दै जिहि जाउ ॥
कौन भाँति सुजीतिये प्रभु दीजिये समुझाय।
मंत्र यंत्र तपादिते तेहि मांह चित्त लगाय ॥२०॥

जिसने कृपालु होकर सब प्रकार को प्रभुता दी हैं, उसके स्थान को कृपा करके बता दीजिये, जिससे मैं वहां पर पहुँच जाऊँ। उसपर विजय किस प्रकार पाई जा सकती है, इसे भीं बता दीजिये। मन्त्र, यन्त्र, तप आदि में से किसे चित्त में धारण किया जाय।

शुक्र उवाच

दोहा—ब्रह्म भक्ति हरिभक्ति, प्रभु कैसे होहिं प्रसन्न।
सोई मति उपदेशिए, मन क्रम वचन प्रसन्न ॥२१॥

ब्रह्म भक्ति अथवा हरि भक्ति से प्रभु कैसे प्रसन्न होंगे? उसीं भक्ति को प्रसन्न होकर मन, कम तथा वचन से बता दीजिये।

ब्रह्म भक्ति कीने नृपति, उपजि परे हरि भक्ति।
ताते पहिले ही तुम्हैं, हो सिखाऊँ द्विज भक्ति ॥२२॥

ब्रह्म भक्ति करने से ही हरि भक्ति की उत्पत्ति होती है। इसी कारण से पहले तुम्हें द्विज भक्ति सिखाता हूँ।

दोधक—विप्रनि की सब सीख सुनो जू।
ब्राह्मण ब्रह्म समान गुनो जू।
देहु सबै इक दुःख न दीजे।
आशिषसो चरणोदक लीजे ॥२३॥

ब्राह्मणों की सारी शिक्षा को सुनना चाहिये। ब्राह्मण को ब्रह्म के समान मानना चाहिये। सब कुछ लोगों को दो, लेकिन एक दुख किसी को भी मत दो। आशीर्वाद के समान ही चरणोदक लेना चाहिये।

छांड़ि अहंकृत विप्रनि पूजो।
भूतल में एइ देवन दूजो।
काम सबै तेहि पूजन पूजै।
ब्राह्मण पावहु पूजन दूजै ॥२४॥

अहंकार को छोड़ कर ब्राह्मणों की पूजा करो। पृथ्वीतल पर देवताओं के बाद ये हैं। इनके पूजन से सभी काम पूरे हो जाते हैं। ब्राह्मण को पाकर दूसरे की उपासना नहीं करना चाहिये।

रूपमाला छन्द—निग्रहानुग्रह जो करे अरु देइ आशिषगारि।
सो सबै शिरमानि लीजै सर्व्वथा मनुहारि ॥
जानि उत्तम विष्णु जू भृगु कर्यो उर तात।
सर्व भाव अजेयता तिन पाइयो यह बात ॥२५॥

यदि ब्राह्मण निग्रह और अनुग्रह दोनों करे और अशीर्वाद दे, तो उस सब को सब प्रकार से स्वीकार कर लेना चाहिये। भृगु महराज ने विष्णु जी को उत्तम पात्र पाकर उनके हृदय पर लात मारी थी। सब प्रकार के भावों के अजयी ने इस बात को पाया था।

पंगु ब्राह्मण गुंग अंध अनाथ राज कि रंक।
अज्ञ होहि कि विज्ञ भेद न मानिये करि शंक।
पूजिये मन बचन कर्मनि प्रेम पुण्य प्रमान।
सावधान ह्वै सेइए सब विप्र ब्रह्म समान ॥२५॥

लंगड़ा ब्राह्मण, गूंगा, अन्धा, अनाथ, राजा, रंक, ये सब अज्ञ हों अथवा विज्ञ इनमें किसी प्रकार का अन्तर नहीं करना चाहिये। इनकी पूजा मन, बचन एवं कर्म से प्रेम पूर्वक करनी चाहिये। सावधान होकर सभी ब्राह्मणों की सेवा करनी चाहिये। सभी ब्राह्मण एक समान हैं।

दोहा—कहै भगवत मै असम, गीता कहै समान।
अप्रमान कौनहिं करौं, कौनहिं करो प्रमान ॥२७॥

भागवत में असमान कहते हैं और गीता में समान। दोनों में किस को प्रमाण माना जाय ?

शुक्र उवाच

दोहा—दोऊ वचन प्रमाण हैं, अपनो विषयनि पाइ।
इह जानो हरि भक्त पर, समुझो सुख सुखदाइ ॥२८॥

अपने विषय के अनुसार दोनों के ही वचन प्रामाणिक हैं। इसे हरिभक्त पर आधारित समझना चाहिये, जो कि सब प्रकार से सुखद है।

गायत्री संयुक्त हैं, सबै विप्र हरि भक्त।
वेद पुराणनि में कहे, चारों विप्र अभक्त ॥२६॥

गायत्री से संयुक्त सभी ब्राह्मण हरिभक्त हैं। वेद पुराणों में चारों विप्रों को अभक्त कहा गया है।

तिन्है छांड़ि सपूजिये, वामन ब्रह्म सरूप।
कबहूँ भेद न मानियै, विप्र होत युग रूप ॥३०॥

उन्हें छोड़ कर वामन के ब्रह्म स्वरूप का पूजन करना चाहिये। कभी भी भेद को नहीं स्वीकार करना चाहिये, क्योंकि ब्राह्मण युग रूप होता है।

श्रुति स्मृति शास्त्रनि सुनि समुझि, कर्म करै प्रतिकूल ।
हरिपद विमुख जो विप्र हैं, नरकनि को अनुकूल ॥३१॥

श्रुति, स्मृति, शास्त्र को सुन और समझकर भी प्रतिकूल कर्म करे और हरिभक्त से विमुख हो, वे ब्राह्मण नर्क गामी होते हैं ।

पति संगा अपवित्र नृप, तिनिहूँ को हित हेरि ।
स्मृति श्रुति शास्त्रनि करत है, ताकी निन्दा टेरि ॥३२॥

पति सङ्गा अपवित्र राजा के हित को भी देखना चाहिये जो कि स्मृति, श्रुति एवं शास्त्रों की निन्दा किया करता था ।

चारि कर्म युत विप्र कुल, जो कैसोई होइ ।
सब ही को गुरु को सर्वदा, सबते पावन सोइ ॥३३॥

चार कर्मों से युक्त ब्राह्मण होता है, वह चाहे भी जैसा हो । वह सभी का गुरु है और सदैव पवित्र रहता है ।

बलिराज उवाच

चारि कर्म ते कौन है, तिनते होत अभक्त ।
हमसो कहि समुझाइयै, जिय में ह्वै अनुरक्त ॥३४॥

वह कौन से चार कर्म हैं, जिन के कारण अभक्त हो जाता है । अपने मन में अनुरक्त होकर उसे मुझे समझा दीजिये ।

शुक्र उवाच

हरि को हिय जानै नहीं, द्विज कर्मनि अनुरक्त ।
जनक जननि कहँ देत दुख, माठापत्य अभक्त ॥३५॥

हृदय में ईश्वर को तो जानता नहीं है, द्विज कर्मों में अनुरक्त रहता है । माता-पिता को दुख देता है और मठयति भी अभक्त होता है ।

इनको तूर[1] न छाड़िये, कीजै द्विज आशक्ति ।
त्रिविध पाप मिटिं जाहिं, उर उपजै परे हरिभक्ति ॥३६॥

1 शीघ्रता

इन को शीघ्रता से कभी भी नहीं छोडना चाहिये । ब्राह्मणों पर आसक्ति होनी चाहिये । इससे हृदय में उत्पन्न होने वाले तीनों पापों का विनाश हो जाता है और हरिभक्ति का उदय होता ।

अकल अविद्या रहित, श्रद्धायुत हरिभक्त ।
साधो नवधा अङ्ग सों, तजि सवसों आशक्त ॥३७॥

बुद्धि और अविद्या दो से रहित श्रद्धायुक्त हरिभक्ति है । सभी प्रकार की आसक्तियों को छोड़कर नवधा भक्ति को धारण करो ।

नवरस मिश्रित साधि नृप, नवधा भक्ति प्रमानु ।
दानव मानव देव गण, भक्त कमल हरि भानु ॥३८॥

नवधा भक्ति को नवरसों से युक्त करना चाहिये । राक्षस, मनुष्य, देवता सभी हरिभक्त को मानते हैं ।

जीतहुं अद्भुत श्रवण सों सुमिरण करुणा जानि ।
सहित युगुप्सा दासता, पाद भजन भय मानि ॥३९॥

करुणा का स्मरण कर श्रवण से सभी को जीत लो । युगुप्सा युक्त दासता करो और पाद भजन से भय मानना चाहिये ।

वंदन वीर शृंगार सो, अर्च्चन सख्यसहास ।
रौद्र कीर्त्तन सम सहित, आत्म निवेद प्रकाश ॥४०॥

शृंगार से वंदन वीर करना और सख्य भाव से अर्चना करना तथा रौद्र कीर्तन द्वारा अपने आत्म विवेदन से प्रकाश करना चाहिये ।

रूपमाला छन्द—दीन स्मर दीन वत्सल नाम नाम निदान ।
कर्म अद्भुत भावसों सुनि वेद पुरान ॥
छांड़ि मानज मानसो उपमा न कीजै दास ।
पाद सेवहु ब्रह्म तजि सर्व भावनि वास ॥४१॥

आप दीनों का स्मरण करने वाले हैं । इसीलिये दीन वत्सल आप का नाम है । वेद और पुराणों में तुम्हारे अद्भुत कर्मों को सुनते हैं ।

सब प्रकार की उपमाओं को छोड़कर, सभी भावों से ब्रह्म के चरणों की सेवा करनी चाहहिये।

दोहा—कीरति पठि नीरस कहै, रुद्र रूप मनुजीतिं।
मन जीते उर उपजि है, परब्रह्म सो प्रीति ॥४२॥

रुद्र रूप की जीत की कीर्ति नीरस कहै, किन्तु मन को जीतने से हृदय में परब्रह्म के प्रति प्रेम का उदय होगा।

रुपमाला छन्द—काम क्रोधहिं जीति कै मद लोभ मोह निवारि।
मित्र ज्यों हँसि मग्न आनँद अर्चि साजि शृङ्गार॥
रूप संवर संदि सों बहु आपुयो अनयास।
पाइ पूरण रूप को रमि भूमि केशवदास।।४३॥

काम और क्रोध को जीतकर मद और लोभ का निवारण करना चाहिये। मित्र जिस प्रकार से प्रसन्न होकर अर्चना करता है और सभी प्रकार के श्रंगारों का सृजन करता है, उसी प्रकार से तुम भी करो और पूर्ण रूप को पाकर इसी भूमि में उसी में रमण करो।

देव्युवाच

दोहा—शुक्राचारज के कहे, बलि साधी सब रीति।
शुद्ध भयो मन सर्वथा, बढ़ी ब्रह्म सो प्रीति ॥४४॥

शुक्राचार्य के कहने पर बलि ने सब प्रकार की साधना की। उसका सब प्रकार से मन शुद्ध हो गया और ब्रह्म से प्रीति बढ़ गई।

तैसे तुमहूँ छाँड़ि भ्रम, होउ ब्रह्म सों लीन।
पावहु परमानंद ज्यो, संतत नित्य नवीन ॥४५॥

उसी प्रकार से तुम भी भ्रमों को छोड़कर ब्रह्म में लीन हो जाओ। नित्य ही नवीन रहने वाले परमानन्द को तुम भी प्राप्त कर सकोगे।

इति श्री चिदानंदमग्नायां विज्ञानगीतायां बलि चरित्र वर्णनं नाम एकोनविंशतितमः प्रभावः ॥१६॥

विंशतितमः प्रभाव

जीव उवाच

दोहा—सृष्टि वीज के वीज को, ताके वीजनि जानि ।
कौन वीज ता वीज को, ताको वीज बखनि ॥१॥

सृष्टि को जन्म देने वाला जो बीज है, उसी बीज को सत्य मानों । वह कौन सा बीज है ? उसे कहो ।

देव्युवाच

युक्त शुभाशुभ अंकुरनि, बीज सृष्टि को देहु ।
भावाभाव सदानि में, सुख दुखदा इह गेहु ॥२॥

सृष्टि का बीज शुभ और अशुभ दोनों होता है । भाव और अभाव के कारण सदैव यह सुख-दुख का घर बना रहता है,

चंचरी—वीज देह को विदेह चित्त वृत्ति जानिए ।
जाहि मध्य स्वप्न तुल्य सम्भ्रमादि मानिए ॥
दोइ वीज चित्त के सुचित्त ह्वै सुनो अबै ।
एक प्राण सानन्द है द्वितीय भावना सबै ॥३॥

जीव का बीज विदेह चित्त वृत्ति है । उसके बीच में संभ्रम को स्वप्न के समान समझना चाहिये । चित्त के दो बीज हैं, उसे अब सुनिये । एक सानन्द प्राण है और दूसरी भावना है ।

रूपमाला छन्द—चंद सूरहि चंद कै भग सुष्मनागत दीश ।
प्राण रोधन को करै जेहि हेत सर्व ऋषीश ॥
चित्त शोधन प्राण रोधन चित शुद्ध उदोत ।
व्याधि आदि जरे जरायुत जन्म मरण न होत ॥४॥

जिस कारण से सभी ऋषि प्राण का रोधन करते हैं । चित्त का शोधन और प्राण का रोधन करने से चित्त शुद्ध हो जाता है । इसके कारण व्या-

धियों का विनाश हो जाता है और सदैव यौवन बना रहता है। जन्म और मरण से भी छुट्टी मिल जाती है।

याद़ाकुल—यद्यपि तीरथ नीरनि सेवहु।
सकल शास्त्रमय देवनि देवहु॥
यद्यपि चित्त प्रबोध न बोधिय।
तद्यपि चित्त निरोधन रोधिय॥५॥

सारे तीर्थों की सेवा की जाय और शास्त्रानुसार अनेक देवों की उपासना की जाय, तो भी चित्त में निग्रह वृत्ति उत्पन्न नहीं होगी, जब तक चित्त प्रबोध नहीं होगा।

यद्यपि ज्ञान वियोग धरा बढ्यो।
तबहूँ सोदर साथ सदा बढ्यो॥
यद्यपि जर्जर शेष बखानिय।
तबहूँ चित्त सुमित्त न मानिय॥६॥

यद्यपि पृथ्वी पर ज्ञान बढ़ गया है और उसके साथ ही सोदर भी बढ़ गया है। शेष ने जर्जर रूप में वर्णन किया है फिर भी चित्त को सुमित्त नहीं मानना चाहिये।

दोहा—दोइ बीज हैं चित्त के, ताके बी जनि जानि।
सो संवेद[1] बखानिये, केशवराइ प्रमान॥७॥

१ अनुभूति

चित्त के दो ही बीज हैं, उन्हें ही बीज जानना चाहिये। उसे अनुभूति कहते हैं।

बीजु सदा संवेद को, संविद[1] बीज विधान।
संविज[2] अरु संघात को, छांड़त हैं मति मान॥८॥

१ चेतन, २ अचेतन।

अनुभूत्ति का बीज चेतन है। अचेतन और संघात को सभी बुद्धिमान व्यक्ति छोड़ देते हैं।

संविद को चितु बीज है, ताके सत्ता होइ।
केशव राइ बखानियै, सो सत्ता विधि दोइ ॥९॥

चेतन चित्त बीज का है। उसकी सत्ता है। वह सत्ता दो प्रकार की है।

एक सु नाना रूप है, एक रूप है एक।
एक रूप संतत भजो, तजियै रूप अनेक ॥१०॥

एक सत्ता के तो अनेक रूप हैं और एक सत्ता का एक ही रूप है। अनेक रूपों को छोड़कर एक ही सत्ता का भजन करना चाहिये।

एक काल सत्ता कहैं, विमति चित्त को ताहि।
एक वस्तु सत्ता कहैं, चित सत्ता चित चाहि ॥११॥

एक काल की सत्ता को मूर्ख चित्त वाले चाहा करते हैं। वस्तु सत्ता एक है, जिसे चित सत्ता सदैव चाहा करती है।

ताको बीजु न जानियें, जाकी सत्ता साधु।
हेतु जु हैं सब हेतु को, ताही को आराधु ॥१२॥

जिसकी साधु सत्ता है, उसके बीज का पता नहीं है। जो सभी हेतु का कारण है, उसी का आराधना करनी चाहिये।

सुन्दरी छन्द—संगुवे अर्थ अनर्थ बढ़ावत।
संगुवे वस्तु विचार पढ़ावत ॥
संगुवे मुक्त लता कहं वारण।
ताते करौं प्रभु संगु निवारण ॥१३॥

साथ में रहने पर अर्थ और अनर्थ दोनों को ही बढ़ाता है। साथ में रहने पर वस्तु विचार को पढ़ाता भी है। साथ मुक्ति की प्राप्ति का भी निषेध करता है और इस कारण से हे प्रभु! साथ का निवारण करना चाहिए।

जीव उवाच

दोहा—संशय तृण चपदाहि कै, देवि सुनो सुखदाइ ।
संग कहावतु है कहा, कहि माता समुझाई ॥१४॥

संशय के तृण को यदि नष्ट कर दिया जाय, तो वह सदा ही सुख देने वाला होता है। संग क्या है ? हे माता ! इसे समझाकर कहो ।

दोधक छन्द—एक सुराज सुसंगु कहावै ।
एक संग इन देह कहावै ॥
और वासना संग तजो जू ।
जीवन मुक्त प्रभाव भयो जू ॥१५॥

एक सुराज का सग होता है, दूसरा इस देह का होता है। वासना के संग को छोड़ देने पर जीवन मुक्त हो जाता है ।

दोहा—नशे वासना गंध को, संग सबै नशि जात ।
निशा नशे नशि जात ज्यों, निशिचर को संघात ॥१६॥

वासना के विनाश से सभी प्रकार के संगो का विनाश हो जाता है, जिस प्रकार से रात्रि के नष्ट होने पर निशाचरों का संघात रुक जाता है ।

जीव उवाच

महामोह तम चंद के, तिनकी संगति ज्योति ।
ता दैही को देह की, कहो कौन गति होति ॥१७॥

महामोह की ज्योति से संग होने पर क्या गति होती है ?

देव्युवाच

संगनसै जिहि भाँति ज्यों, उपजै पाप अपाप ।
तिनि सों लिप्त न होहिं ते, ज्यों उपलानि को आप ॥१८॥

संग का जिस प्रकार से विनाश होता है, उसी प्रकार से पाप और पुराय दोनों ही उत्पन्न होते हैं। उनसे उसी प्रकार कभी भी लिप्त नहीं होना चाहिये, जिस प्रकार से ओला अपने में कभी लिप्त नहीं होता है ।

वीरसिंह उवाच

वेद कहै शिव सो सदा, सब विधि जीवन मुक्त।
कहि केशव कैसे भयो, ब्रह्म दोष संयुक्त ॥१९॥

वेद सदैव ही शिव से कहा करते हैं कि जीवन सब प्रकार के मुक्त है। यदि ऐसा है तो ब्रह्म दोष से संयुक्त कैसे हुआ ?

केशव उवाच

अकस्मात जो अशुभ शुभ, उपजिपरे कहुं आनि।
तौ वह लिप्त न होइ जो, शिव कीनो यह जानि ॥२०॥

अकस्मात ही शुभ और अशुभ कहीं पर पैदा हो गये। शिव ने यह जानकर ऐसा किया, जिससे वह उसमें लिप्त न हो।

वीरसिंह उवाच

महा प्रलय करतार को, कैसे बंधन होइ।
हम सों कहि समुझाइये, कहिय दोष क्यों होइ ॥२१॥

महा प्रलय करने वाले को किस प्रकार से बाँधा जाय। हमसे यह बताइये कि दोष कैसे होता है ?

केशव उवाच

रूपमाला छन्द–ईश को जगदीश को यह शासना सब काल।
मारि आशु अधर्म को करि धर्म को प्रतिपाल॥
पाप को तिहि हेत ते तिनि करयो आशु विनाशु।
धर्म को जगमध्यमे सुनि कीन पुंज प्रकाश ॥२२॥

सभी कालों में ईश्वर का ही शासन रहता। अधर्म को शीघ्र ही मार करके सभी कालों में धर्म का पालन करना चाहिये। पाप का इसी कारण से शीघ्रता से विनाश किया। संसार के बीच में धर्म का कौन सा प्रकाश है ?

दोहा—दुहूँ भाँति की शासना, मनो भाव भय मानि ।
जौं न मानिये सर्वथा, प्रभु को देहु बखानि ।।२३।।

दोनों प्रकार का शासन है, उसका मनोभाव से भय मानना चाहिये यदि उसे सर्वथा नहीं मानते तो प्रभु को बता दो ।

प्रभु को कह्यो कै न, यह अधिकारीनि अधर्म ।
तातें राखे लोक में, लोकाधिप को धर्म ।।२४।।

प्रभु का कहा हुआ नहीं करते हैं, यह अधिकारियों का अधर्म है इसी कारण से संसार में लोकाधिप के धर्म को रखा है ।

देव जुरायो ईश को, रूप सुताहि प्रकाश ।
तेहीते संसार को, ह्वै है आशु विनाश ।।२५।।

ईश्वर का ही सभी जगह प्रकाश है । उसी से संसार का शीघ्र विनाश होगा ।

जैसे देवनि देवमणि, करत यदपि जगदीश ।
तैसे अपने रूप को, जतन करो तुम ईश ।।२६।।

जिस प्रकार से भगवान देवों में भी देव मणि करते हैं, उसी प्रकार तुम भी अपने रूप को युक्ति पूर्वक करो ।

जीव उवाच

जो हरि भक्ति वियोग की, कैसे साधत साधु ।
कैसो तिनको रूप है, कहियै देवि अगाधु ।।२७।।

यदि हरि भक्ति वियोग की है, तो उसकी साधना साधु लोग किस प्रकार करते हैं ? हे देवि ! उनका कैसा रूप है ? कहिये ।

देव्युवाच

रूपमाला छंद—एक जीव प्रवृत्त, एक निवृत्त जानि सुजान।
सर्व सो अपवर्ग* सों रत, होत हेत बखान ।।

हैं कहाँ अपवर्ग केशव नित्य संश्रुति लोक ।
स्वर्ग भोगनि भोगवै जगते निवृत्ति विलोक ॥२८॥

१ मोक्ष ।

एक जीव प्रवृत्त है और दूसरा निवृत्त है। अपने लिए सब प्रकार से मोक्ष में रत होता है। अपवर्ग कहाँ है ? वह संश्रुति लोक में है। संसार में निवृत्ति होने पर स्वर्ग का भोग करने को मिलता है।

स्वर्ग नर्कनि जात आवत को फजीहति होइ।
आइये जिहि लोक ते नहि जीव चारै कोइ।
आगिले मरिहैं मरत अब पाछिले परतच्छ।
मेटिये मरिबो बखानु निवृत्ति ये मति अच्छ ॥२९॥

स्वर्ग और नर्क से आते जाते समय फजिहत होती है। जिस लोक से जीव होता है, उसमें उसका कुछ भी वश नहीं होता है। आगे मरेंगे अब भी मर रहे हैं, किन्तु पीछे का तो प्रत्यक्ष ही है। निवृत्ति के द्वारा इस मृत्यु क जा सकता है।

दोहा—क्यों तजिये कुल राग, अरु क्यों तजिये संसार।
या विचार ते होति है, प्रथम भूमिका चार ॥३०॥

क्यों कुल के प्रति आसक्ति को छोड़ा जाय ? संसार का त्याग किस लिये किया जाय ? इस विचार से प्रथम चार भूमिकायें होती हैं।

रूपमाला छन्द—लोभ दंभ मदादि मान विमोह क्रोध विहीन।
वेद भेद विचार धारण ध्यान कर्महि लीन॥
वस्तु सिद्ध प्रसिद्ध साधन साधिवे कहँ युक्त।
भूमिका वह दूसरी जब होइ जी अनुरक्त ॥३१।

लोभ, दंभ, मद, मान, विमोह तथा क्रोध से विहीन होना और वे तथा भेद विचार को धारण कर नित्य ही कर्मों में लीन रहना तथ

प्रसिद्ध वस्तु-सिद्ध की साधना करने की मन में अभिलाषा रखना, यह दूसरी भूमिका है।

त्रिभंगी छंद—निर्दै बहु बारनि करि निद्धारनि,
वस्तु विचारनि संसारनि।
फल फूल अहारी विपिन विहारी,
तजि विविचारी मति बारनि।
तजि दुख सुख साधनि नाथ अनाथनि,
गुणगण साधनि श्री नाथनि।
भ्रममार अमीतनि मोह वितीतनि,
इन्द्रिय जीतनि दिन बीतनि ॥३२॥

निर्दय रूप का त्याग कर वस्तु विचार करना, फल फूलों को खाना, वनों में बिहार करना, विचारहीनता को छोड़ देना, सुख दुख के भावों को छोड़ देना, गुणों को अपनाना, भ्रम को मारना, मोह को समाप्त करना और इन्द्रियों को जीतना चाहिये।

दोहा—पाइ तीसरी भूमिका केशव होत प्रबुद्ध।
असंसंभ द्वै भांति के, मोपै सुनि मति शुद्ध ॥३३॥

तीसरी भूमिका को पाकर व्यक्ति प्रबुद्ध हो जाता है। असंसंभ दो प्रकार के होते हैं, उन्हें मति को शुद्ध करके सुनो।

एक होइ साधारणों, दूजो संश्रृति जानि।
तिनके रूप प्रकार अब, तुमसों कहो बखानि ॥३४॥

एक साधारण होता है और दूसरा संश्रित होता है, उनके रूप और प्रकार को अब तुमसे कहता हूँ।

रूपमाला छंद—भोगता करता न हो अब वाध बाधक होन।
व्याधि आधि वियोग योग अभोग भोगनि कोन ॥
संपदा विपदा सबै सुख दुःख आवत जात।
एक पूरब कर्म ते भ्रमिये न कौनहुँ जात ॥३५॥

भोगों में तुझे अब प्रवृत्त नहीं होना चाहिये वरन् व्याधियों को समाप्त करने वाला होना चाहिये। व्याधि, आधि, वियोग, योग, अभोग, भोग क्या है ? संम्पत्ति और विपत्ति, सुख तथा दुख आते जाते रहते हैं। पूर्व कर्म के कारण ही किसी प्रकार भ्रम नहीं होता हैं।

चारि[1] चहुँ भीतर जजो[2], अध[3] ऊरधन[4] दिशानि।
नाहीं अर्थ अनर्थ में, नाजड़ अजड़नि मानि ॥३७॥

१ आचरण २ पूजन ३ पाताल या नर्क लोक ४ आकाश लोक या स्वर्ग लोक।

यह साधारण असंगति का परिणाम है। अब दूसरा कहता हूँ, उसे चित देकर सुनों।

दोहा—इह सधारण जानिबो, असंसंगु इत्यादि।
कहों दूसरों चित्त दै, सुनिये देव अनादि ॥३७॥

आचारण द्वारा उसकी आराधना अन्तःकरण में करनी चाहिये। वह नर्क या स्वर्ग में नहीं रहता है। न तो वह अर्थ और अनर्थ में होता है और न उससे जड़ या चेतन माननाचाहिए।

जाकी प्रभा प्रकाशिये, अस्ति अन्नत असाधु।
सबते न्यारो सर्वदा, असंसंगु सो साधु ॥३८॥

जिसकी प्रभा से अस्ति तथा अनेक साधु भी प्रकाशित रहते हैं, वह सदैव ही सबसे न्यारा रहता है। वह साधु और असंसगु दोनों के लिए समान हैं।

विजय—चित्त सुनाल[1] से अग्रल से बहु,
कंठव कष्ट विलास विलासे।
कारण कोमल पल्लव केशवदास,
सन्तोष सबासनि वासे।

भूत[२] असङ्ग की तीसरी भूमि मिले,
अलि अद्भुत संश्रृतिनासे।
भूप विवेक हिये सरसी माँह,
मित्र विचार प्रकाश प्रकाशे।।३६।।

१ लाल कमल २ शिव।

लाल कमल का अग्रभाग सदैव ही बहुत सुन्दर लगता है क्योंकि मोकल पल्लव संतोष की सुवास से सदैव सुवासित रहता । संश्रति का विनाश करने से तीसरी भूमिका, शिव की प्राप्ति होती । मित्र के विचारों से भूप के हृदय में विवेक का उदय हुआ।

दोहा—प्रथम भूमिका अंकुरै, दूजी हो प्रकाश।
फले तीसरी भूमिका, फल अद्भुत अविनाश।।४०।।

प्रथम भूमिका के अंकुरित होने पर दूसरी का प्रकाश होता है। तीसरी भूमिका में फल आता है। यह फल अद्भुत होता है और अविनाशी भी।

भासतु है अद्वितीय उर, द्वैतनु से अकुलाइ।
लोक विलोके स्वप्नवत, भूमि चतुर्थी पाइ।।४१।।

द्वैत से व्याकुल होकर हृदय में अद्वितीय रूप में दिखाई देता है। सारे संसार को स्वप्न के रूप में चतुर्थ भूमिका प्राप्त है।

तृतिया जाग्रत सम लसै, चौथी स्वप्न समान।
जानि सुषुप्तक पांचई, भूमि विभाग प्रमान।।४२।।

भूमि के विभागों को प्रमाणित करके कहता है कि तृतीय जाग्रत के समान चौथा स्वप्न के समान और पाँचवां सुपुप्ता के समान दिखाई देता है।

छूटि जात है आपुते, ग्रंथि सुसब अनयास।
जीवन मुक्त दशालसे, छठो भूमि भ्रमनास।।४३।।

अनायास ही सभी ग्रंथियाँ अपने आप ही छूट जाती है। जीवन मुक्ति की अवस्था छठी भूमिका है, जो भ्रमों के विनाश के बाद उत्पन्न होती है।

सुबद सप्ती भूमिका, निश्चल चित्त विलास।
चित्र दीप की ज्योति, तब पूरण परम प्रकास ॥४४॥

निश्चल चित्त सातवीं भूमिका है। इस अवस्था में चित्र दीप की ज्योति से पूर्ण प्रकाश रहता है।

अंतर बाहिर हीन है, पूरण बाहिर अन्त।
जल थल घट आकाश ज्यों, पूरण पूरणवन्त ॥४५॥

उसका अंतर और बाहर नहीं है, जल, थल, घट और आकाश सभी में वह व्याप्त है।

पाइ सप्तमी भूमिका, भक्ति न होत विदेह।
देवरूप स्वच्छंद जग, रहत विपिन अरु गेह ॥४६॥

सप्तमी भूमिका को पाकर भक्ति अचेत नहीं होती है। देवरूप संसार में घर और वन दोनों में स्वच्छन्द रहता है।

जीव उवाच

हमको देवी करि कृपा, कहो देवको नाम।
जिनको करि उच्चार मुनि, पल पल करत प्रणाम ॥४७॥

हे देवी! कृपा करके उस देव का नाम मुझ से बताओ, जिसका मुनि उच्चारण करके प्रत्येक समय प्रणाम किया करते हैं।

देव्युवाच

भुजंग प्रयात—कहैं एक तासों शिवे शून्य एकै।
कहैं काल एकै महाविष्णु एकै ॥
कहैं अर्थ एकै परब्रह्म जानो।
प्रभा पूर्ण एकै सदा शून्य मानो ॥४८॥

कोई उसे शिव कहता है और कोई शून्य। एक उसे काल कहता है और दूसरा महाविष्णु। कुछ कहते हैं कि ये सब परब्रह्म के ही स्वरूप हैं। वह सदैव प्रभा से पूर्ण रहता है और उसे शून्य मानना चाहिए।

दोहा—एक आतमा कहत हैं, एक कहैं चित भक्त।
इहि विधि नाना नाम जग, लसत सबै अनुरक्त ॥४९॥

एक उसे आत्मा कहता है और भक्त उसी को चित्त कहते हैं। इस प्रकार से उसके अनेक नाम है, जो कि संसार में सुशोभित रहते हैं।

अमित अमेय अरूप के, ऐसे हैं सब नाम।
मुनि भक्तनि हैं गहि लए, महाराज गुणग्राम ॥५०॥

उस चिरन्तन सीमा रहित तथा अरूप के इस प्रकार से अनेक नाम हैं। मुनि भक्तों ने उसके अनेक गुणों को ग्रहण कर लिया है।

भक्ति योग की भूमिका, इहि विधि साधन साधु।
होत पार संसार के, यदपि अनंत अगाधु ॥५१॥

भक्ति योग की भूमिका की साधना इस प्रकार से करनी चाहिये। यद्यपि संसार अनंत और अगाध है फिर भी लोग उसे पारकर जाते हैं।

सवैया—पाइ पदारथ कुंभ निरै दिवि,
सुंडित्रिधा वारूनी जनिएजू।
कर्म अकर्म दियो बन जीभ पियास,
क्षुधा भव में गनिए जू ॥
लोक विभेदति वासना तासु,
दरी मनु दीरघ में गनिएजू।
इच्छ गजी मदमत्त वनी तनमेशर,
धीरज सों हनिए जू ॥५२॥

संसार के अनेक पदार्थों को वारुनी समझना चाहिये। कर्म और अकर्म दोनों ही प्राप्त हुए हैं। इस संसार में क्षुधा ही सब कुछ है। उसके

कारण वासना बहुत ही अधिक बढ़ गयी है। तनमेशर मनमत्त हो गया है, उसका विनाश धीरे से करना चाहिये।

दोहा—जीवन इच्छहि मन, आवत कब जब दीन।
इच्छा तजि जे चलत हैं, परम इच्छ परवीन ॥५३॥

दीनता होने पर ही जीवन में इच्छायें आती हैं, किन्तु जो उनको छोड़ कर चलते हैं वे परम इच्छा में प्रवेश करते हैं।

तजे न करिबो कर्म को, जब लगि जगत प्रकाश।
ह्वै जैहै जब एकता, सहजै कर्म विनाश ॥५४॥

जब तक संसार में प्रकाश है, तब तक कर्म को नहीं छोड़ूँगा। जब सभी में एकता हो जावेगी, तब स्वभावतः ही कर्मों का विनाश हो जायगा।

इति श्री चिदानंदमग्नायाँ विज्ञानगीतायाँ योग सप्त भूमिका वर्णन नाम विंशतिमः प्रभावः ॥२०॥

एकविंश प्रभाव

दोहा—एकवीश में वर्णिबो, महामोह परिहार।
उत्तर मनुको सृष्टि को, राम नाम विस्तार ॥१॥

इक्कीसवें प्रभाव में महामोह के परिहार का वर्णन करूँगा। मनु की सृष्टि का वर्णन हैं और राम नाम के विस्तार के साथ वर्णन है।

अहंकार द्वै भाँति हैं, ताहि तजों केहि भाव।
कहो देव तुम करि कृपा, उपजै ज्ञान प्रभाव ॥२॥

अहंकार दो प्रकार का है, उसे किस प्रकार छोड़ा जाय ? हे देव ! तुम कृपा कर के कहो जिससे ज्ञान उत्पन्न हो।

देव उवाच

तीनि भांति त्रैलोक्य में अहंकार के भेव ।
द्वै शुभ संतत समुझियो, अशुभ तीसरो देव ॥३॥

तीन लोकों में अहंकार तीन प्रकार का है, उसमें से दो शुभ है और तीसरा अशुभ है ।

रूपमाला छंद–हो अरूप अमेय हो जड़ चेतनादिहु अनंग ।
शोभिये जग मध्य हो जगुमोहिं मांझ लसंत ॥
भोगता करता न हो अब टोहिये सु उपाउ ।
हो भवो जिहि ते सुहों कि रहौं कि जाउँ ॥४॥

अरूप, अमेय, जड़ और चेतन हो । संसार के बीच में शोभा देते हो । न तो भोग करते हो और न कर्त्ता ही हो । इसलिए अब और उपाय को ढूँढ़ना चाहिये । जिससे हुआ हूँ, उसी में रहूँ, कि दे दूं या चला जाऊँ ।

अथ अशुभ

देश ग्राम पुरीन को पति बड़ो है सुनरेश ।
पुत्र मित्र कलत्र को प्रभु भलोशुभवेश ॥
सूर हों सर्वज्ञ हो बशवान हो धनवान ।
मोहिं पूजहू भो बिना जग और को भगवान ॥५॥

देश ग्राम और पुरियों का वह बड़ा राजा है । पुत्र मित्र और कलत्र का वह प्रभु है । सूर, सर्वज्ञ, बलवान और धनवान भी है । अतएव संसार में भगवान की पूजा के अतिरिक्त और किस की पूजा की जाय ?

दोहा—आदि अहंकृत द्वै भले, परमानन्द निकेत ।
अहंकार जो तीसरो, सोई बन्धन हेत ॥६॥

दो अहंकार भले हैं, वे परमानन्द के घर हैं । तीसरा अहंकार ही बन्धन का कारण है ।

सात्विक राजस तामसे, एक होत गति धीर।
तजियै राजस तामसै, सतगुण भजिये वीर ॥७॥

सात्विक, राजस और तामस हैं, उनमें से एक ८ कारण गति धीर हो जाती हैं। इसीलिये तामस और राजस को छोड़कर सतगुण का स्मरण करना चाहिये।

सब मेरोई रूप हैं, सब को हों हितवन्त।
अहंकार कासों करों, तजि पूरण भगवन्त ॥८॥

सभी मेरे ही रूप हैं और सभी का हित चाहता हूं। पूर्ण भगवान को छोड़कर किससे अहंकार करूँ।

जहों अहंमन जीति हों, अखि लोक मणि मित्र।
धूम घोर हरि से नहीं, देखो अमित चरित्र ॥९॥

जिस समय संसार में अहंकार को जीत लोगे, उसी समय से भगवान का चिरन्तन चरित्र देखने को मिल जायगा।

सकल लोक ए बसत हैं, अहंकार आधार।
ताहि नशत ज्यों, पटु प्रबोध भ्रममार ॥१०॥

सारा ही संसार अहंकार के आधार पर बसा हुआ है। उसका विनाश उसी प्रकार के सम्भव हैं, जिस प्रकार से चतुर प्रबोध भ्रम का विनाश करता है।

तारक—कबहूं यह सृष्टि महाशिव ते सुनि।
कबहूँ विधिते कबहूँ हरिते गुनि॥
कबहूँ विधि होत सरोरुह के भग।
कबहुं जल अंबर ते कहिये जग ॥११॥

कभी इस सृष्टि का सृजन महाशिव से सुनते हैं और कभी ब्रह्म से और विष्णु से। कभी ब्रह्मा कमल सदृश शिव का रूप धारण कर लेते हैं। कभी संसार के सृजन को जल और अंबर से कहते हैं।

कबहूँ धरनी पल में मय पाहन ।
कबहूँ जल मय मृश में अरु कंचंन ॥

कभी सारी पृथ्वी थोड़ी देर पत्थर सी हो जाती है और कभी जलमय हो जाती है और कभी मणि और कचन से पूर्ण हो जाती है ।

हरते विधि हैं कबहूँ विधिते हर ।
हरते हरि जू कबहूँ हार ते हर ॥१३॥

कभी शिव से ब्रह्मा और कभी ब्रह्मा से शिव और कभी शिव से विष्णु और कभो विष्णु से शिव होते हैं ।

दोहा—करियै करता मारियै, कबहूँ भार निहार ।
कबहूँ पालक पालियै, बिना नियम संसार ॥१४॥

कभी भार को देखकर कर्ता को ही मारते हैं । कभी पालक का ही पालन करते हैं । यह संसार बिना नियमों का है ।

पालक संहारक खन, भक्षक भक्ष अपार ।
सबही को सब जानियै, बिना नियम संसार ॥१५॥

पालक और संहार, भक्षक और भक्ष अनेक हैं । सब को सब कुछ समझना चाहिये । यह संसार बिना नियमों का है ।

पालक संहारक रचक, रक्षक रक्ष अपार ।
सबकी सब को होत है, को जानै कै बार ॥१६॥

पालक और संहारक, रक्षक और रक्ष अनेक हैं । हर एक सब कुछ होता होता, किन्तु पता नहीं कितनी बार ।

बड़ो फजीहति जगत की, भांति अनेक अरूप ।
एक रूप तवते जुहै, अच्युत रूप अनूप ॥१७॥

अनेक प्रकार के रूप होने से संसार की बड़ी फजिहत है । केवल परमेश्वर का ही एक रूप है ।

नृपवीरसिंह उवाच

ऐसोई जो जीव है, अज[1] निरीह[2] निर्लेप[3] ।
कोजग वद्ध अवद्ध है, कीजै भ्रम विच्छेप ॥१८॥

१ अजन्मा २ विरक्त ३ असक्त रहित ।

अजन्मा, विभक्त और आसक्ति रहित जीव है । इस संसार में वद्ध और अवद्ध कौन है । भ्रम का विच्छेद कर देना चाहिये ।

केशव उवाच

जगको कारण एक मन, को जीत अजीत ।
मन को सुनि शत्रु हैं, मन ही को मन मीत ॥१९॥

जग का एक कारण मन है । मन को जीत लेना ही विजय है । मन का शत्रु मन ही है और वही उसका मित्र भी है ।

मन को रूप अरूप है, जैसो है आकाश ।
बढ़त बढ़ाए बुद्धि के, घटत घटाए आस ॥२०॥

ब्रह्म की भांति मन भी रूप और अरूप है । बढ़ाने से बढ़ता और घटाने से घटता है ।

मन की दीन्ही गांठि प्रभु, मन ही पैछुर आउ ।
ज्यों मल मलही धोइए, विषही विष सु उपाउ ॥२१॥

मन में लगी हुई गांठ मन से ही छूटती है । मल से मल साफ होता है और विष का विनाश भी विष से ही होता है ।

वीर सिंह उवाच

संतत जीव चिदंश जग, पाप पुण्य के भोग ।
कहो कोन को होत हैं, ज्यों समुझै सब लोग ॥२२॥

संसार के जीव चिदानन्द के अंश हैं, पाप पुण्यका भोग क्या है ? यह किस में होते हैं ? इसे इस ढङ्ग से कहो, जिससे कि सारे लोग समझ सकें ।

केशव उवाच

जोई करै सुभोगवै, यह समुझो नृपनाथ ।
स्वर्ग नर्क बंधन मुकुत, मानों मन की गाथ ॥२३॥

जो जैसा करता है वह उसी प्रकार से भोग भो करता है। स्वर्ग, नर्क, ुक्ति, की प्राप्ति मन पर निर्भर करती है ।

ीर सिंह उवाच

अङ्ग भङ्ग है देह को, पीड़ित देखिय देह ।
मन को केसे मानियै, मेरो यह संदेह ॥२४॥

सम्पूर्ण देह अङ्ग भङ्ग है। सारी देह ही पीड़ित है। मन को किस कार स्वोकार किया जाय ? इस संदेह का निवारण करिये ।

केशव उवाच

जिनि जिनि अंगनि सों मिलै, करत शुभाशुभ चेत ।
भोग करत तिनही मिल्यो, सह सङ्गति को हेतु ॥२५॥

जिन जिन अङ्गों से मिलकर शुभ और अशु भ कृत्यों को करते हो । वसर मिलने पर तुम उन्हीं का भोग करते हो ।

हरे हरे मुन ऐंचि कै, कीजै मन को हाथ ।
इन्द्रिय सर्प समान हैं, गारुड मन के साथ ॥२६॥

धीरे धीरे मन को खींच क र अपने वश में कर लेना चाहिये। इन्द्रियां र्प के समान हैं और मन गरुड़ के प्रकार का है ।

वैया—फूलत हो मुख देखि न भूलहु,
लाभु यहै भली बात सिखावो ।
जौ ललकै अपमारग को मनु,
तौ दुख दै सतमारग लावो ।
मूढ़न साथ परे फिरि हाथ न आई है,
नाथन माथ नशावो ।

तो कुल को अवलोकि कै केशव,
बालन ज्यों मन क्यों न पढावो ॥२७॥

संसार को देखकर अत्यधिक प्रसन्न होते हो। यहां के लोगों में अपने को मत भुलाओ। अच्छी बातों को सीखो। यदि मन अपमार्ग की ओर चलना चाहता है तो उसे दुख देकर सतमार्ग पर लावो। मूढ़ लोगों के साथ पड़ने पर मन फिर हाथ नहीं लगेगा। मन को देखकर उसे बालकों की भांति क्यों न पढ़ाया जाय ?

दोहा—कौन तजै मन सङ्ग जो, कौन सङ्ग मन होइ।
सदा जीव उन सङ्ग है, जग परिपूरण सोइ ॥२८॥

मन किसका साथ छोड़ दे और किसका ग्रहण करे। जीव सदा उसके साथ रहता है और वही संसार में परिपूर्ण है।

रूपमाला छन्द—जीव सों चिद्रूप सों इतनो सुअन्तर जानि।
विष्णु सों अरु जीव सों तितनों महामति मानि ॥
जीव सों मानसों तितोमनु सों विकल्पनि जानि।
संकल्प सों अरु सृष्टि सोतितनों विशेष बखानि॥२९॥

जीव और चिद्रूप में इतना अन्तर समझना चाहिये, जितना जीव और विष्णु में है। जीव और मन, मन और विकल्प का अन्तर समान है। संकल्प सृष्टि में भी उतना ही विशेष अन्तर है।

दोहा—क्रम क्रम सब को छांड़िये, ममता प्रभु मति युक्त।
अहंकार परिहार कै, हूजै जीवन मुक्त ॥३०॥

धीरे धीरे प्रभु से युक्त ममता को छोड़ना चाहिये। अहंकार को छोड़ने से जीव को मुक्ति मिलती है।

जीव उवाच

हमसों कहि समुझाइये, जीवन मुक्त विदेह।
जाहि सुने ते होइगो, शुद्ध भाव इहि देहँ ॥३१॥

जीव की विदेह मुक्ति की अवस्था क्या है ? मुझ से कहिये, जिससे सुनने से मन में शुद्ध भाव पैदा होगा ।

देव्युवाच

सवैया—लोक करै सुख दुखनि कै जिनि,
राग विरागनि यामहँ आने ।
जरै उपारि समूल अहंतरु,
कंचन काचन जो पहिचाने ।
बालक ज्यों भवै भूतल में,
भव आपुन से जड़ जंगम जाने ।
केशव दास पुराण प्रमाण तिन्हँ,
सब जीवन मुक्त बखाने ।

इस संसार के सुख दुख तथा राग और विराग को यहाँ पर मत आने दो । अहंकार को सभूल उखाड़ डालो और सोने को कांच के समान समझो । बालक की भांति संसार की सभी बातों को जड़ जंगम समझो । वेद और पुराण में जिन बातों को जीवन मुक्ति का आधार कहा गया है, उन्हें भी मानो ।

विदेह उवाच

सवैया—देखन हूँ अनदेखव हूँ लिपि[१],
रूपक सेन सरूप को धावै ।
आपु अनिच्छ चल पर इच्छ,
को केशवदास सदापति पावै ।
कर्म अकर्मनि लीन नहीं निज,
पायज ज्यों जल अङ्कनगावै ।
ह्वै अति मत्त चिदानंद मध्यनि,
लोग सदेह विदेह कहावै ॥३३॥

१ ब्रह्म रूप ।

प्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष, दोनों ही प्रकार से वाह्य रूप सेस्वरूप पर नहीं ौड़ता है। स्वतः इच्छा रहित रहता है, दूसरे की इच्छाओं का ध्यान खता है। कर्म और अकर्म में वह लीन नहीं है। जल की भांति पायज ो अङ्क लगाता है। एक चिदानन्द के स्वरूप में ही सदैव लीन रहकर ादेह होता हुआ भी विदेह ही रहता है।

ृरिगीतिका—जीवन मुक्त विदेह के सुनि सकल लक्षण जानिये।
छाँड़ि जगत मिथ्याकल महात्यागी मानिये॥
लोभ मोह का मद काम क्रोध की कामना उपजेडरे।
लोक अलोक विलोकत जे सब साधना समेत गुरे॥
सुनिये कछू अरु देखिये वाणी वस्तु बखानिये।
छाड़े जु मानि मिथ्या जगत महा त्यागा मानिये॥३४॥

जीवन मुक्ति के सारे ही लक्षण विदेह पर भी लागू होते हैं। संसार की सारी ही चीजों को मिथ्या जानकर छोड़ने वाले को महात्यागी समझना ाहिये। लोभ, मोह-मद, काम, क्रोध की इच्छा उत्पन्न होने में भय का अनुभव हो। लोक अलोक दोनों को साधना की दृष्टि से देखना चाहिये। ंसार को मिथ्या मानकर जो छोड़ दे, वही महात्यागी है।

केशव उवाच

ोहा-—यह सुनि सब झूठे लग्यो, दयो परमपद वित्त।
उपजी विद्या बोधमय, भूलि गयो सुत मित्त॥३५॥

यह सुनकर के सब कुछ झूठ मालूम हुआ। परमपद को दिया और ोधमय विद्या उत्पन्न हुयी। पुत्र मित्र सभी को भूल गये।

नराच—नशी कुबुद्धि राति निन्द कल्पना समेतही।
विमोह अंधकार गो पताल के निकेतही॥
विभाति ज्ञान नित्य के विनोद लोभहे भयो।
प्रबोध को उदै विलोक ज्योतिवन्त ह्वै गयो॥३६॥

कुबुद्धि का विनाश हो गया और निन्दा कल्पना सहित लुप्त हो गयी, विमोह और अंधकार पाताल लोक को चले गये । नित्य के चमत्कृत ज्ञान के परिणाम स्वरूप विनोद प्राप्त हुआ । यह सब प्रबोध का उदय होने के कारण से हुआ ।

दंडक—जैसे भट साजि ऐन हाथ लै हथ्यार रण मारे ।
मारे आर गण जीति जीते मनको ॥
मारतंड मंडल को भेदत अखंड मति भूलि ।
जात पुत्र मित्र सब देव गन को ॥
तैसे सत संग श्रद्धा विवेक वैराग बुद्धि ।
छाड़ि के धरेई वेद सिद्धि सो साधन को ॥
केशौदास हरि की भगति के प्रसाद भयो,
जीवन मुकुत मिलि आत्मा के जनको ॥ ३७॥

जिस प्रकार से योधा रण में सेना को सजाकर हथियारों से शत्रु को पराजित करते है, उसी प्रकार तुम भी अपने मन को जीत लो । पुत्र, मित्र तथा देव गणों को भुलाकर मारतण्ड मंडल को भेदने का प्रयास करना चाहिये । सत्संग, श्रद्धा, विवेक, वैराग्य और बुद्धि को छोड़कर वेद सिद्धि के किस साधन को अपनाया जा सकता है ? भगवान की भक्ति के प्रसाद स्वरूप ही जीवन को मुक्ति मिलती है ।

दोहा—जैसे बंधन हेत तन, चेत्र:छुरीन से मारि ।
बंधन काट वंदि के, छूटे भगति बिसारि ॥३८॥

बंधनों को काटने के लिए छुरी का प्रयोग करना पड़ेगा। वंदि के बंधनों को काटकर भक्ति को भुला दिया ।

तौलों तम राजै तमी, जौलौ नहिं रजनीश ।
केशव ऊगे तरणि के, तमु न तमीन तमीश ॥३९॥

उस समय तक रात्रि में अंधकार रहता है, जब तक चन्द्रमा नहीं रहता है । चन्द्रमा के उगने पर अंधकार नहीं रहता है ।

काहू सो ह्वै जग मे रहै, काहूसो वैर न नेह।
छांडयो चाहै जगत को, तबही छाड़े देह ॥४०॥

संसार में न किसी से शत्रुता रखे और न किसी से स्नेह ही। जब कभी भी संसार को छोड़ना चाहे तभी देह छोड़ दे।

यहि विधि सो हरि भक्ति करि, साधु होत सब भक्त।
सबै ब्रह्मचारी गृही, दान प्रशस्त विरक्त ॥४१॥

इस प्रकार से भक्ति करके सभी साधु भक्त हो जाते हैं। ब्रह्मचारी, गृहस्थ आदि सभी दान में लगे रहते हैं।

वीरसिंह उवाच

ऐसा ह्वै है जब दशा, तब तौ अति बड़ भाग।
कौन भांति वनवास बिन, घर हीं हरिसों राग ॥४१॥

इस प्रकार की जब अवस्था होगी, तब तो बड़ा भाग्य होगा। बनवास क्यों किया जाय? घर में भी हरि से राग किया जा सकता है।

केशव उवाच

सवैया–निशि वासर वस्तु विचारहिं,
कै मुख सांचु हिये करुणा धनु है।
अघ निग्रह संग्रह धर्म कथानि,
परिग्रह साधुनि को गनु है।
कहि केशव भीतर योग जगै,
अति बाहिर भोगनिसो तनु है।
मन हाथ सदा जिनके तिनके,
वनहीं घर है घर ही वंनु है ॥४३॥

राति दिन वस्तु विचार किया करे और मुख में सत्य और हृदय में करुणा रक्खे। पापों का विनाश और धर्म का संग्रह तथा कथाओं का परिग्रह किया करे। अन्तःकरण में योग का उदय हो और बाहर भोग भले ही हों। जिन

लोगों का मन उनके हाथ में रहता है उनके लिए घर भी वन रहता है और वन भी घर हो जाता है।

वीरसिंह उवाच

दोहा—कठिन रीति यहऊ कही, घर ही माँझ विरक्ति।
हमसनि पर ज्यों होइ त्यों, कहियै श्री हरि भक्ति ॥४४॥

आपने यह रीति भी कठिन ही कही। घर में ही विरक्ति रखी जाय। हमसे जिस प्रकार हरिभक्ति हो सके, उसे ही कहिये।

केशव उवाच

चंचरी—आदि देव पूजि पुंज राम नाम लीजिई।
न्हान दान धर्म कर्म छद्म छाँड़ि कीजई॥
सत्य बोलियै सदा विपत्ति संपदानि सों।
राज राज वीर सिंह चित्त शुद्ध होइसो ॥४५॥

आदि देवों की उपासना करके रामनाम लिया करिये। स्नान, और धर्म को छल कपट छोड़ करके किया करें। विपत्ति पड़ने पर भी सत्य ही बोला करें। इस प्रकार से हे वीरसिंह! चित्त शुद्ध हो जायगा।

वीरसिंह उवाच

दोहा—राम नाम को तत्त्व सब, हमसों कहो अशेष॥
चित्त हमारो सुनतही. शुद्ध होत सविशेष ॥४६॥

राम नाम के तत्व को मुझसे पूरा कहो। उसको सुनते ही मेरा चित्त शुद्ध होता है।

केशव उवाच

ऋषि वशिष्ठ सों विनय कै, बूझेहु हे मुनि मग्न।
राम. नाम महिमा सुनहु, वीरसिंह शत्रुघ्न ॥४७॥

इसे वशिष्ट ऋषि से पूछिएगा। उनसे राम नाम की महिमा सुनियेगा।

शत्रुघ्न उवाच

कहो वशिष्ठ कुल इष्ट मति, राम नाम को भेद।
जाहि सुने ते जाइगो, सबै चित्त को खेद ॥४८॥

राम नाम के भेद को हे वशिष्ट कहो, जिसके सुनने से चित्त का सारा दुख समाप्त हो जाय।

वशिष्ठ उवाच

जब वेद पुराण नसैहैं, जप तीरथ मध्य बसैहैं।
सो उपदेश जुमारि किवारे, तब कलि केवल नाम उधारे ॥४९॥

जब वेद और पुराणों का नाश हो जायगा। जप तीर्थ में आस्था नहीं रहेगी। उपदेशों की ओर लोग ध्यान नहीं देंगे, उस समय कलियुग में केवल राम नाम ही उद्धार करेगा।

दोहा—मरण काल कोऊ कहै, पापी सो भय भीत।
सुख ही हरिपुर जाइगो, गावै सब जग गीत ॥५०॥

यदि मरते समय राम नाम का उच्चारण कोई पापी भी करेगा, तो वह भी हरिपुर चला जायगा और संसार उसका गान करेगा।

राम नाम के तत्त्व को, जानत को न प्रभाउ।
गंगाधर के धरनिधर, बाल्मीकि मुनिराज ॥५१॥

राम नाम के तत्व के प्रभाव को कौन नहीं जानता है? इस पृथ्वी पर गंगाधर से बाल्मीकि हो गए हैं।

केशव उवाच

वीरसिंह नृपसिंह मणि, मैं वरणी हरि भक्ति।
जाहि सुने सहसा सुमति, ह्वै हैं पाप विरक्ति ॥५२॥

हे वीरसिंह, नृपसिंह! मैंने हरिभक्ति का वर्णन किया है, जिसके सहसा सुनने से भी पापों से छुटकारा मिल जायगा।

जीत्यो मोह विवेक ज्यों, पाइ बोध को भेव।
त्यौं तुम जीतौ शत्रु सब, राजवीर सिंह देव ॥५३॥

प्रबोध को पाकर जिस प्रकार से विवेक ने मोह को जीत लिया उसी प्रकार तुम भी सभी शत्रुओं को जीत लो।

भुजंग प्रयात—लहै संपदा आपदा को नसावे।
सदा पुत्र पौत्रादि की वृद्धि पावै ॥

पढ़े बुद्धि वैराग्य कारी अभीता।
सुनावै सुनै नित्य विज्ञान गीता ॥५४॥

नित्य विज्ञानगीता को वैराग्य बुद्धि से पढ़ने सुनने और सुनाने से संपत्ति मिलेगी, आपत्तियों का नाश होगा, पुत्र और पौत्र आदि की वृद्धि होगी।

दोहा—सुनि सुनि केशव राइसों, रीझि कह्यो नृप नाथ।
माँगि मनोरथ चित्त के, कीजै सबै सनाथ ॥५५॥

वीर सिंह केशव से सुनकर अत्यधिक प्रसन्न हुए और कहा कि जो कुछ भी तुम्हें रुचिकर हों, उसे माँग लो।

केशव उवाच

वृत्ति दई पुरुखानि की, देऊ बालकनि आसुख्य।
मोहि आपनो जानि कै, गंगा तट देउ बासु ॥५६॥

पूर्व पुरुषों को वृत्ति को दे दीजिए और बालकों को सुख दीजिए। मुझे अपना समझ करके गंगा के किनारे वास दे दो।

वृत्ति दई पदवी दई, दूरि करो दुख त्रास।
जाइ करो सकलत्र, श्री गंगा तट वास ॥५७॥

वृत्ति दी। पदवी दी। दुख और भय को दूर कर दिया और गंगा के किनारे वास करने करने की अनुमति दी।

इति श्री मिश्र केशव दास विरचितायां चिदानन्दमग्नायाँ विज्ञानगीतायां एक विंशः प्रभावः ॥२१॥

दोहा—अंक[९] व्योमं वसु[८] भू[१] वरष पौष पक्ष उजियार।
तिथि त्रयोदशी पूर्ण भा, शुभ गीता बुध वार ॥१॥
विदित देशका रूप[१] में, छुट हारि अवनीश।
लेखत भयो वसंत ऋतु आयसु लय निज शीश ॥

इतिविज्ञान गीता समाप्तः